प्रतापनारायण मिश्र

ग्रंथावली

संपादक

डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

प्रतापनारायण मिश्र रचनावली : 4

मिश्र जी ने बहुत लिखा। 'ब्राह्मण' पत्र का वे सम्पादन करते ही थे, साथ ही गद्य भी उच्चकोटि का लिखते थे। पद-रचना में तो वे जन्मजात कवि ही प्रतीत होते थे। जिस प्रकार का मस्तानापन, कल्पना-प्रवणता, सजीवता तथा भावुकता एक कवि में होनी चाहिए, वैसी सबकी सब प्रभूत मात्रा में स्वर्गीय मिश्र जी के अन्दर विद्यमान थी। वे गुणी और गुण-ग्राहक दोनों ही थे।

खड़ीबोली का वह प्रारम्भिक युग कैसे हँसते-खेलते रूप में आविर्भूत हुआ और स्वर्गीय मिश्र जी ने अपनी विनोदप्रियता, व्यंग्यपूर्ण वक्रता, लोकोक्ति-निबन्धता तथा भाव-प्रवणता द्वारा उसे किस प्रकार आगे बढ़ाया, इसे हिन्दी-साहित्य का अध्येता भली-भाँति जानता है। उस युग का साहित्यिक हिन्दी, फारसी, बँगला, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं का ज्ञान रखता था। वह नवीन और प्राचीन का संधि-युग था। उसमें प्राचीन रूढ़ियाँ त्याज्य समझी जाने लगी थीं और नवीन भावनाओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो रहा था। पं० प्रतापनारायण मिश्र प्राचीन और नवीन दोनों को साथ लेकर चले।

—डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम'

ISBN—81-88122-01-7 (Set)
ISBN—81-88122-05-X (Vol. 4)

मूल्य : रु० 1,050.00 (चार खंड)

प्रतापनारायण मिश्र रचनावली

4

प्रतापनारायण मिश्र रचनावली

चतुर्थ खण्ड

संपादक

डॉ० चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

ISBN—81-88122-01-7 (Set)
ISBN—81-88122-05-X (Vol. 4)

प्रकाशक
भारतीय प्रकाशन संस्थान
24/4855, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002

प्रथम संस्करण
2001

आवरण
रवि शर्मा

मूल्य
एक हजार पचास रुपये (चार खण्ड)

मुद्रक
एस०एन० प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032

PRATAP NARAYAN MISHRA RACHANAVALI : 4 (Hindi)
Ed. by Dr. Chandrika Prasad Sharma
Price : Rs. 1,050.00 (Four Volumes)

क्रम

ब्रह्मघाती

हमने 'ब्राह्मण' के चौथे खंड में कभी इस नाम की पुस्तक का नोटिश दिया था। इस पर हमारे मित्रों ने उसके देखने की इच्छा प्रकाश की है। पर हम उसे कई कारणों से अलग नहीं छपवा सकते अतः 'ब्राह्मण' ही में उनके थोड़े 2 नाम प्रकाश किया करेंगे। दूसरे पत्रों के संपादक तथा ग्रंथकार तथा हमारे ग्राहकों को चाहिए कि इनके साथ व्यवहार करने में सावधान रहें। ईश्वर किसी युक्ति-विशेष से ब्राह्मण को चिरंजीव रक्खे या कोई समर्थ व्यक्ति सहायक हो जाय तो और बात है नहीं तो इन बेईमानों ने 'ब्राह्मण' के प्राण लेने में कोई कसर नहीं रक्खी। जिन के हम देनदार हैं उन्हें कौड़ी 2 देंगे। पर हम झूठे वादे इन्हीं पापियों की बदौलत करते रहे हैं। हमने बहुत से सज्जनों का शील तोड़ के वेल्यू पेएबल पोस्ट द्वारा दाम लिए हैं। यह भी इन्हीं जमामार नादिहन्दों की दया से। हम नम्रता के साथ 'ब्राह्मण' के लहनदारों और सच्चे रसिकों से क्षमा मांगते हैं और सबको पुनः सावधान करते हैं कि बचो इन दो चार रुपए के लिए बेईमानी करने वालों से। यह हम नहीं कह सकते कि यह स्वयं 'ब्राह्मण' का धन हजम कर बैठे या इन बेचारों के नाम से दूसरे किसी ने जमा मारी।

खण्ड 5, सं० 2 (15 सितम्बर, ह० सं० 4)

हमारा नमन

हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान के पुज़ारी
युग तुम को करता प्रणाम
न्योछावर कर दिया तुमने
तन - मन - धन सब !

स्वतंत्रता के अमर पुजारी
राष्ट्रभाषा के ध्वजवाहक
'ब्राह्मण' की ललकारों ने
कँपा दिया फिरंगियों को !

हिन्दी की सेवा में
रात - दिन जुटे रहे
कभी हार नहीं मानी
बने रहे अथक सेनानी !

कैसे उऋण हों हम
कुछ सूझता नहीं
सपना अधूरा है
हिन्दी ढेर-ढेर आँसू भरे है !

—जीवनानन्द आरोही

तुम्हें प्रणाम

तुम्हें चाह नहीं थी अभिनंदन की
न मान की, न सम्मान की
न प्रशंसा की, न पुरस्कार की
केवल हिन्दी की उन्नति की कामना
मन में बसाए थे ।

हिन्दी, हिन्दी, हिन्दी
बस और कुछ नहीं
जिए भी हिन्दी के लिए
मरे भी हिन्दी के लिए !

तन में हिन्दी
मन में हिन्दी
रग-रग में हिन्दी
केवल हिन्दी
और कुछ नहीं ।

हिन्दी के लिए
राजा से रंक हो गए
कण-कण गल गए
पर प्रण नहीं छोड़ा ।

—अमर बटोही

।।श्री।।

भारतदुर्दशा रूपक ।

BOMBAY

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम प्रेस—बंबई

रूपक के पात्र

भारत—रूपक का नायक
विद्या—भारत की स्त्री
लाज—विद्या की सखी
कलियुग—एक राजा
कलियुग की स्त्री—
कुमत—कलियुग का मंत्री
आलस्य—कलियुग का सेवक सरदार
कुपथ्य—कलियुग का सेवक सरदार
रोगराज—कलियुग का सेवक सरदार
मदिरा—कलियुग की सेना की सिपाहिन
चौपटसिंह—कलियुग की सेना का एक सिपाही

इनके अतिरिक्त पंडित, एडीटर, ब्रह्मसमाजी बंगाली, आर्यसमाजी, महाराष्ट्री, पंजाबी, मुसलमान व लड़के इत्यादि ।

स्थान—भारत, जंगल ।

॥ श्रीः ॥

भारतदुर्दशा रूपक

दोहा—जय भारत आरत हरन, नाशन दनुज अपार ।
दीनबन्धु भवभय हरन, नमो काल करतार ॥

अंक 1

(पहला दृश्य : भारत का प्रासाद)

भारत सोता है, भारत की स्त्री विद्या उसको जगाती है । विद्या की आशा और लाज नामक दो सखियें इधर-उधर खड़ी हैं ।

विद्या—

राग भैरव

बीती निशि भोरभयो जागो पी प्यारे ।
कीन्हों तम पुंजनाश, दिनकर करि निज प्रकाश ॥
तव मुख पंकजविकाश, चहत दृग हमारे ॥ बीती०1 ॥
चलि 2 शीतल समीर, हरत त्रिविध जगत पीर ॥
विन तब रस बात वीर, चित न धीर धारे ॥ बीती०2 ॥
अचर सचर मलिन अमल, लागे निज काज सकल ।
अंतरिक्ष जलहू थल, नव छबि बिस्तारे ॥ बीती०3 ॥
एहि अवसर राज राज, है कहा विलम्ब काज ॥
देखहिं नवरीत आज, प्रेमजन तुम्हारे ॥ बीती०4 ॥

प्राणनाथ—बड़े आश्चर्य, शोक और पश्चात्ताप का विषय है कि आज आपने धर्म के एक बड़े भारी अंग का खंडन किया ! कहाँ तो सूर्य के उदय होते 2 सब प्रकार के शौच से निश्ंिचत होकर भगवत् भजन में मग्न हो जाते थे और कहाँ यह आलस्य कि आप जगाए जगाए जागे, सारसंसार का शिरोमणित्व केवल धर्मनिरालसित्व ऐक्य और विद्या ही के प्रभाव से आपको जगदीश्वर ने दिया है; यदि आप ही ऐसा करने लगे तो सांसारिक और आत्मिक उन्नति को फिर किसका आश्रय मिलेगा ?

भारत—(आप ही आप) हाँ, अब निश्चय मंगल की संभावना नहीं है । हाय, आज मैं ऐसा हो

गया कि मृतक की भाँति पड़ा रहा ! **(कुछ देर पीछे चौंककर)** यह मेरे मुँह से क्या निकल गया ? परन्तु क्या—"गतन्नशोचामिकृतन्नमन्ये" आगे से देखा जायगा **(स्त्री के गले में हाथ डालकर)** प्रिये ! क्षमा करना, बड़ा ही अपराध हुआ; पर मैं तो अपने आपे में ही न था; करूँ क्या, मैं तो एक स्वप्न देख रहा था जिसे स्मरण करने से अभी तक हृदय विदीर्ण होता है ।

विद्या—भगवन् ! ऐसा क्या स्वप्न देखा है, मैं भी सुनूँ ।

भारत—प्यारी ! श्रवण करने से तुम्हें भी शोक होगा ।

विद्या—प्राणनाथ ! यदि आपकी इच्छा न हो तो न बतलाइये; पर यह तो समझिये कि जब दक्षिणाङ्ग को शोक है तो वामाङ्ग उससे पृथक् क्योंकर हो सकता है ?

भारत—**(आप ही आप)** यद्यपि इनसे कोई बात छिपी नहीं है, पर ऐसा विषय प्रगट करके क्यों वृथा अपनी प्राणेश्वरी को शोकसागर में निमग्न करूँ ? क्योंकि इनका स्वभाव है कि छोटी 2 बातों में बहुत सी शाखा-प्रशाखा निकालकर बात का बतंगड़ कर लेती हैं तो अवश्य ही स्वप्नजनित शोक को भी मेरे कारण सह्य न कर सकेंगी **(प्रगट)** वत्सले ! शोक का कारण पूछने से उत्तम यह होगा कि तुम इस दुःस्वप्नजनित अमंगल की शान्ति का कोई उपाय करो; अभी से स्वप्न का वृत्तान्त सुन लोगी तो भगवदाराधन में व्यर्थ कालविलम्ब होगा ।

विद्या—जो इच्छा ! तो मैं जाऊँ और सावित्रीजी के पूजन का आयोजन करूँ । **(जाती है ।)**

लाज—**(हाथ जोड़कर)** महाराज ! आपका मुखचंद्र मलीन देखकर इस दासी का चित्त दुःखित होता है यदि कोई हानि न हो तो मुझ ही से स्वप्न का वृत्तान्त कह दीजिये । क्या मैं स्वामी के मंगलार्थ कुछ उपाय कर सकती हूँ ?

भारत—भद्रे ! तुम सब कुछ कर सकती हो, और मैं तुमसे बतलाने में कोई हानि भी नहीं सोचता और निश्चय है कि तुम महारानी से भी प्रगट नहीं करोगी ।

लाज—स्वामिन् ! आप तो मेरा स्वभाव जानते ही हैं कि मैं अपने चित्त का भाव किसी से नहीं कहती । आप निस्संदेह होकर बतलाइये ।

भारत—अच्छा तो सुनो ।

कज्जल वरन कुरूप, पुरुष लोहित दृगवारो ।
अति निलज्ज अति क्रूर, निर्दयी मदमतवारो ॥
कर धरि नग्न कृपाण, संगसेना बहुलीन्हे ।
आवत पुहिमि कँपात, अंग भयदायक कीन्हे ॥
गल रुंडन की माल, भाल चरबी लिपटाये ।
लै सँग श्वान अपार, लखत मोतन मुँह बाये ॥
पकर भुजनि में दाबि, चढ़यो छाती पै मेरी ।
राम राम मैं जपत तऊ, छाँडत नहिं वैरी ॥
चल्यौ बाँधले मोहि, विजय निजनाम पुकारत ।
ममजन सब बिलखाँय, कहैं हा ! भारत !! भारत !!!

लाज—**(घबड़ाकर)** महाराज ! फिर क्या हुआ ?

भारत—

मोहि बाँधिले चल्यो दुष्ट, वह अंधकार जग छायो ।
नगर नारि नर विलखत सारे, करुणा शब्द सुनायो ॥
वेद अभेद दुरे गिरिकंदर, शास्त्र लुके सरितन में ।
पाखंडिन के जालविस्तरे मत, पलटत छिनछिन में ॥
सबही कुलाचार को विसरे, लोक लाज तज दीन्हीं ।
मन माने मारग चलदीन्हे, पितर बिदाई कीन्हीं ॥
विप्र वेद पढिवो तजि निन्दित, कम करें चितलाई ।
झूठ ज्ञान उपदेशत डोलैं, बने समाजी भाई ॥
करैं रसोई नोकरह्वैकै द्वारवान बन जावें ।
ब्रह्मवंश की लखत दशा, यह आँशू भर 2 आवें ॥
छत्रिन की करनी दुखदाई, भई लजावनहारी ।
अस्त्रशस्त्ररखव्यसनव्यथितभये, सबकीसुरतविसारी ॥
प्रजापाल को ख्याल लपेटो, लखत नृत्य मनलाई ।
खेलत वल्हागेंद मुदित ह्वै, धिक धिक करत सवाई ॥
भये विधर्मी अभक्ष्य लैके, पियें सुरा दिनराती ।
देख अगति जग भूपालन की, काकी फटै न छाती ॥
चार चक्र से धन लावत, नित, वैश्य वंश जहँ केरे ।
टिक्कस अदा करनहित तहँ, सब झींखत साँझ सबेरे ॥
जहाँ शूद्र निष्कपट करै हैं तीन वरण की सेवा ।
तहँ बाबू बन अरु पढ़ पोथिन, निन्दहिं नित द्विजदेवा ॥
जहँ पति प्रेम निबाहन के हित, तियजीवत जरजाहीं ।
तहँ नित पति कर गोत उचारहिं, रमिवैरागिन माहीं ॥
अगले दिन सुधिकर दुख उपजत, जतन न दीसत कोई ।
हाय ! घोर कलियुग प्रभावलखि, रहियत मनमहँ रोई ॥

(वर्णन करता हुआ मूर्छित होता है और परदा गिरता है ।)

अंक 2

(दूसरा दृश्य : कलिराज का स्थान)

कलियुग—शेर

मैं हूँ राजा कलियुग मेरा नाम है ।
जमाने की ख्वारी मेरा काम है ॥ 1 ॥

है वेदो धरम से मुझे दुश्मनी ।
मुझे सिर्फ भाता है कि ब्रमनी ॥ 2 ॥
दगा ओ फरे बोदरोगौ निफाक ।
इन्ही सबसे है बस मुझे इत्तफाक ॥ 3 ॥
सदां ख्वार नेकों को करता हूँ मैं ।
सरे जिश्त पर ताज धरता हूँ मैं ॥ 4 ॥
चलो जब जहाँ पर मेरा अख़तयार ।
बस दही ला उसको किया मैंने ख्वार ॥ 5 ॥
पर अब तो जमाने में मेरे सिवा ।
न सतयुग, न द्वापर, न त्रेता रहा ॥ 6 ॥
सदाइँ मैं रखता हूँ भारत से वैर ।
नहीं मेरे हाथों से उसकी है खैर ॥ 7 ॥
निकालूँ न ऐसे मैं गर होंसिला ।
तो हरसिमन होवेगा मेरा गिला ॥ 8 ॥
अभी फौज अपनी को देता हूँ हुक्म ।
कि कर देवो सब मुल्क को सुमों वुक्म ॥ 9 ॥
सुनेता न कोई बुजुरगों की पन्द ।
जबाँना सिंहोकी भी हो जाय बन्द ॥ 10 ॥
न हमदर्द कोई किसी का रहै ।
हिमाक़त के दरिया में हरयक बहै ॥ 11 ॥
यही ख्वार करने की तदबीर है ।
न तदबीर बलके यह अक़सीर है ॥ 12 ॥
अगर कारगर हो बरूए ज़मी ।
तो फिर क्या हमीं हैं हमी हैं हमीं ॥ 13 ॥

[कुमत मंत्री आनकर दंडवत करता है ।]

अहाहा ! "जो रोगी ने औषधी चाही वो ही वैद बताई ।" आप तो आज याद करते ही आसमान से टपक पड़े, कहिये ! कुछ कार्रवाई शूरू हुई ?

कुमत—"शुरू हुई शुरू हुई" चे मानी दारद, जनाबे आली ! शुरू तो सतयुग ही के जमाने से थी । शायद आपको खयाल होगा कि मुलतान के राजा हिरनाकुश (**हिरण्यकश्यप**) और उसके बेटे प्रह्लाद में बाहम जूता उछलउसल किसके बदौलत हुआ करती थी । वह सब कार्रवाई बंदे ही के यादगार मौलाना मज़हब की थी । बादहू त्रेता में रानी केकयी और फ़रज़ंद दिलमंद महाराजा भरत में यहाँ तक खुसूमत हो गई थी कि लड़का अपनी मा का मुँह देखना नापसंद करता था ।

कलियुग—हाँ हाँ ! मगर यह किसकी कार्रवाई थी ।

कुमत—(**हँसकर**) आपको शराब के नशे में कुछ याद तो रहती ही नहीं । क्या आप अपनी

ख़ादिम ये नमकख़्वार बीखुदग़रजी को भूल गए ? यह सब उन्हीं की कार्रवाई थी । और सुनिये, जिद अलैहुस्सलागने तो द्वापर में कौरव पाण्डेव के दरम्यान वह तेग़रानी करवाई कि कोई भी नहीं बचा, सब आपस में कट मरे । बहुत से आलिमों बहादुर अपने बुजुरगों के लिये आज तक रो रहे हैं । फिर अभी कल की बात है कि जयचंद व पिरथीराज भी 'हमचुनादीगरैनस्तहो' के मसले पर खतम हो गए । आप समझते हैं कि जिस ज़माने में हुजूर के बंदगाने दरै दौलत बिलकुल बच्चे थे तब तो यह सितम करते थे और अब तौ नामेखुदा से जवान हुए हैं, अबकी कार्रवाइयों का क्या पूछना है ?

[हलकारे का आकर कुमत के हाथ में खत देना]

कुमत–(खत पढ़ता है)

"बाद आदाए आदाब के अरज़ दस्तवरताय है कि बन्दा अपना काम बखूबी अंजाम दिया । यह तो हुजूर पूरनूर को मुद्दत से मालूम है कि मुझे बात की बात में जूता उछल उछल करनी आती है । दूरी चला एक नया गुल यह खिलाया है कि महराज भारत के घर में जिसको देखिये वही, कशीदः खातिर है । कनीजब लाज की मुहब्बत के सबब महारानी विद्या, लक्ष्मी और वीरता यह तीनों नाराज़ हो रही हैं और आपको यह भी बख़ूबी मालूम है कि बिचारा भारत है ही क्या चीज ? वह तो एक नाम का राजा है हमारे यहाँ की सी चालाकी तो कभी सीखी ही नहीं । अब क्या कर सकता है ? हुजूर के फौजकशी करने की देर है कि मुल्क हाथ में आना कुछ बड़ी बात नहीं ।"

कलियुग–वाह ! क्या मज़े की बात सुनने में आई, ले अब आपका काम है जो बात हमारी बेहतरी की देखिये उसका बंदोबस्त कीजिये ।

कुमत–(गाता है)

गीत

मैं तो हूँगा दास आपका, करूँ आपका काम ।
अनेक मत फैलाऊँ जाकर, तभी कुमत मेरा नाम ।।
कूडा पंथी सखी भाव, और आर्य करूँ जरूँ ।
होटल गमन कराऊँ गऊ, और वामन की करूँ ख्वारी ।
जैन, बौद्ध और मुसलमान, ईसाई फैलाऊँ ।
कनौजिये हों आठ जहाँ, नौ चूल्हे बनवाऊँ ।।
मेचर और थियोसोफी को, दूँ मैं सरदारी ।
सर्व नास्तिक को मैं सबका, करूँ अगुआकारी ।।
ब्रह्म को अज्ञानी बनवा, मूरतपूजा छुड़वाऊँ ।।
करके भ्रष्ट सभी के मत को, मैं मंदिर तुड़वाऊँ ।।
लध झबइया इन दोनों, मत को भी करूँ मशहूर ।
जाता हूँ मैं भारत पर, अब दीजे हुकम हुजूर ।।

कलियुग–अज़ी ये बेहतर ! नेकी का पूछना ही क्या है ? अब देर करने से कुछ फायदा नहीं । **(कुमत मंत्री जाता है ।) (कलियुग की बीबी आती है)** आओ जानेमन ! तुम्हारा ही इन्तजार था "गर वर सरोच शमन शीनी । नाजता विकशन की नाजनीनी" ।।

बीबी—वाह वाह ! बैठती हूँ । पहिले यह फरमाइये कि आज क्या है जो कई एक हुजूर के दरबार दार मेरे कमरे के नीचे से आते जाते दिखाई दिए थे ।

कलियुग—वाह ! आपको खबर ही नहीं हिन्दोस्तान पर चढ़ाई नहै ?

बीबी—चढ़ाई की क्या ज़रूरत है, वह तो मुद्दत से मेरा गुलाम है । जब विरहमनों के शिवा दूसरी जाति के मज़हबी ख़यालात के पढ़ने की मुमानियत हुई तब ही से मैं उसे अपनी सल्तनत समझती हूँ ख़ैर ! आपका इरादा यूँही है तो मैं भी अपनी जलीसों के साथ जाना चाहती हूँ ।

कलियुग—तो क्या मेरे साथ न चलोगी ?

बीबी—अय लो ! तुम जाही के क्या करोगे । खुदा की मार तुम्हारा काम ही क्या है, देखिये तो मैं जाकर क्या 2 करती हूँ । **(गाती है)**

ग़ज़ल

मेरा हिन्दोस्ताँ की सिम्तजाना ।
हक़ीक़त में क़यामत का है आना ॥ 1 ॥
बनेंगे लोग इंगलिश पढ़के मिस्टर ।
हँसे हर ढंग पर चाहे ज़माना ॥ 2 ॥
गुलामी गैर की मख़तूरे ख़ातिर ।
बले दुश्मन से बदतर है यगाना ॥ 3 ॥
जहाँ हो पेट भरने से फ़क़त काम ।
कहाँ बीबी तरक्की का ठिकाना ॥ 4 ॥
भलाई क्यों न होवे लाख उसमें ।
मगर मतरूफ है फैशन पुराना ॥ 5 ॥
मियाँ खुद इल्म के पुतले बने हैं ।
कहाँ रहता है बीबी का पढ़ाना ॥ 6 ॥
जो कोई राहे बहबूदी दिखाए ।
बने तीरऽतम्सख़र का निशाना ॥ 7 ॥

ले अब बंदी तो रुखसत होती है । उरदू बुआ को साथ लेकर सीधा हिन्दोस्तान का रास्ता लूँगी ।

कलियुग—मेरी राय में तो यही बेहतर था कि आप हमराह चलतीं ।

बीबी—साहब ! मुझे बार-बार का रोकना पसंद नहीं आता । मैं जाती हूँ आप आइये या न आइये ।

[एक ओर को जाती है । दूसरी ओर से आलस्य आता है ।]

कलियुग—अहा ! आलस्य जी आए । कहो क्या ख़बर है ?

आलस्य—ख़बर क्या है ? हज़रत आज नौ महीने बाद तो घर से निकलने का इत्तिफ़ाक़ हुआ है । यही खबर है कि आज आपके आदमी ने नाहक जगाकर यहाँ आने की तक़लीफ दी । कहिये क्या हुक्म है ।

कलियुग—हुक्म क्या है, भारत पर फौजकशी करने का इरादा है, तुमको भी जाना होगा ।

आलस्य—हुजूर का हुक्म वशरोचश्म क़बूल है लेकिन यह तो फरमाइये कि जब सारे लोग जाते ही हैं तो अकेले मेरे ना जाने में कोई हरज है !

कलियुग—हाँ हरज है कि तुम्हारे बग़ैर दुश्मन के लोगों को सुस्ती और ग़फ़लत क्यों कर आएगी ? और इसके बगैर दूसरे सिपाहियों का इन पर पूरा ज़ोर चलना दुश्वार है ।

आलस्य—अगर हुजूर की फतहयाबी खुदा को मंजूर है तो खुद ही सबके सब कुम्भकरन के पैरों हो जायँगे । मैं क्या करूँगा ?

कलियुग—मालिक के काम में तो ग़फ़लत न करना चाहिये ।

आलस्य—**(आप ही आप)** कहाँ कि आफ़त आई, अब इनके साथ बक 2 कौन करे ? हालाँकि अपनी 2 तबियत के सब मालिक हैं, लेकिन इनका नमक खाया है **(प्रगट)** ख़ैर साहब, जो किसमत में लिखा है सो होगा, अब तो चलते हैं । **(ग़ज़ल गाता हुआ जाता है ।)**

दुनियाँ के कारोबार में पड़ना नहीं अच्छा ।
हर एक से लड़ना व झगड़ना नहीं अच्छा ।।
मजहूल पड़े रहना सदाँ घर में है बेहतर ।
घर से निकलके बाहर अकड़ना नहीं अच्छा ।।
आराम से सोना न हाथ पैर हिलाना ।
कुत्ते की तरह हड्डी पै लड़ना नहीं अच्छा ।।
भारत को पड़ा जाना न मारो कभी मुरगी ।
ऐसी जगह में जाके बिगड़ना नहीं अच्छा ।।
बेहतर यही है सबको करूँ वश में मैं अपने ।
तलवारों तोप फ़ौज से लड़ना नहीं अच्छा ।।
आँखें लड़ें जवानें लड़ें औ लड़े फक्कड़ ।
इस राज में हथियार से लड़ना नहीं अच्छा ।।

[दरबार के मुसाहिब मुबारकबाद गाते हैं ।]

ग़ज़ल

मुसाहब—
महाराज ! कलिराज ! हज़रत सलामत !
मुबारक मुबारक, सलामत सलामत ।।
बदों के लिये खुशनसीबी मुबारक !
पये नेक तीनत सलामत सलामत ।।
खुशामद दग़ाबाजी ओ तोताचश्मी ।
वहमकीनओ क़त्लो ग़ारत सलामत ।।
न रहियो कहीं नाम हुब्बुल वतन का ।
न रहियो दिलों में मुहब्बत सलामत ।।

जहालत में ऋषियों की औलाद ग़ारत ।
पए राजगाँ हो नज़ाकत सलामत ।।
रहै अहले पेशा के घर में न कौड़ी ।
वकालत सलामत अदालत सलामत ।।
जहाँ में लड़कपन की शादी के हाथों ।
न दौलत सलामत न ताक़त सलामत ।।
ज़िहे कफ़स बरदारिए अहले यूरुप ।
कि जिससे ख़िताबे फ़ज़ीलत सलामत ।।
हर एक तरह से अहले हिन्दोस्ताँ को ।
जदी को दो नफ़रीनो लानत सलामत ।।

कलियुग—अरे कोई है ? रोगराज को लाओ ।
रोगराज (आकर) है रोग हमारा नाम, यही हमारा काम ।
कर दें जहाँ को आँख, उठाते ही हम तमाम ।।
खाऊँ मैं सबको यार, क़जा का है बहाना ।
अच्छी तरह यह बात है, मशहूरे ख़ासो आम ।।
अक़लीम हफ्त पर, मैं बादशाह हूँ ।
मरते हैं सब तबीव भी, मेरा ही पीके जाम ।।
सोते हैं ज़ेरेखाक, हाथों से वो मेरे ।
बातें फ़लक़ से करते थे, जिनके के कस्नो बाम ।।
जिस्मो दिलो दिमाग़, सबके करूँगा ख्वार ।
ज्यूँही करूँगा हिन्द में, जाकर के मैं मुक़ाम ।।
फंदे से मेरे कोई, निकलने नहीं पाता ।
सइयाद बनके फाँसता हूँ, मुरग को बेदाम ।।

(कलियुग से) जहाँपनाह ! बंदा हाज़िर है, इरशाद ?

कलियुग—इरशाद क्या है ! जाओ, और भारतवालों को ग़ारत करो ।

रोगराज—हजूर के इकबाल से अब मेरे जाने का काम ही क्या है ? मैंने जो नए सिपाही भरती किए हैं, उनमें से एक का चला जाना काफ़ी है । आप जानते हैं कि फ़लाने फ़लाने उनके मुक़ाबिले की ताब किसको है ? हज़ार हकीम, वैद, डाक्टर वग़ैरह सर पटका करें लेकिन घर की जायज़रूरें सड़क की गंदीनें लिये; मिल की कलों का धुँआँ, आतिशबाजी की आग, कब्रस्तान की ज़मी की फूट वग़ैरह, मजंटा वग़ैरह रंगों की रंगत, अत्तारों की बेइमानी, वैदराजों की हेचमदानी को कौन हटा सकता है ? बल्लाह ! ये वह किले हैं कि जहाँ वग़ैरह 2 सिपाहियों के सामने एक 2 धन्वन्तर या ईसा भी चले आवें तो शायद पिछी बोल जाँय ।

कलियुग—ख़ैर तो अब आप अपने मंत्री कुपथ्य के साथ इन सबको जल्द रवाना करें ।

रोगराज—जो हुक्म **(गाता हुआ जाता है ।)**

गीत

हे कुपथ्य, तुम मित्र हमारे,
शाह का ये ही है फरमान ।
बातों का अब काम नहीं है,
जलदी करिये भाई जान ।।
पूरब पश्चिम उत्तर दक्खिन,
घेरो जाकर हिन्दुस्तान ।
बेशक अपने भी दिल में यह,
बहुत दिनों से है अरमान ।।
घुइयाँ, बंडा ककड़ी खीरा,
इनकी जब करना पहिचान ।
बेहतर है हयजा बदहजमीं,
खूब मँचावेंगे घमसान ।।
ऐसी देना अक्ल कि लावे,
अन पढ़ने पर वह ईमान ।
अच्छा होगा लंघन करकर,
मरेंगे बुड्ढे और जवान ।।
खूब छुटाना आतिशबाजी,
बदकामों को करे जहान ।
ब्रांडी बिसकुट बियर पिलाना,
ओलटाम विस्कीहर आन ।
घर घर फूट बीज गड़वाकर,
जग का करवाना सामान ।
तब होगा यह भारत ग़ारत,
आरत हो, यह मन ली ठान ।।

[मदिरा आती है ।]

मदिरा—(गाती है) **रागिनी**

मदिरा मद में भरि आई रे,
कह नहिं जग मेरी फिरत दुहाई रे ।। 1 ।।
स्वर्गहु में मेरी चर्चा है,
वेदहु में मेरी विदित बड़ाई रे ।। 2 ।।
यज्ञहु में धारत मोहिं पण्डित,
पूजत मोहिं कहि भगवति माई रे ।। 3 ।।
तन धन धर्म कर्म सब वारत,
जिनके मन मेरी सुरत समाई रे ।। 4 ।।

जो मूरख मेरो स्वाद न जानत,
जीवन नाहक देत गँवाई रे ॥ 5 ॥
कछुन हानि पशु करत जो निंदा,
वीर जनन के मैं मन भाई रे ॥ 6 ॥

कलियुग—आइये राहते जान, तशरीफ लाइये ।

मदिरा—मैं तो ख़बर पाकर आप ही हाजिर हुई, कहिए कूच का किस रोज इरादा है ?

कलियुग—जब आपके तबअ मुबारक में आवे ।

मदिरा—मुझसे आप क्या पूछते हैं, मेरे तो वह लोग सदा से गुलाम हैं, ख़ास करके इस अंग्रेजी ज़माने में कौन ऐसा है जो मेरी बंदगी न बजावे; गोया ए, बी, सी, डी के माने ही यह है कि "ए" से **(क्ष)** "डी" से **(डेनिस मोनी)** वग़ैरह । अगर वैसे नहीं तो दवाई के बहाने से तो ज़रूर ही पीते हैं । मसलन् "पोटे" जिसका नाम डाक्टरों ने "बाईनम रूबरम" रक्खा है । वैष्णवों को पर्हेज़गारी का बड़ा दावा होता है इनके यहाँ भी भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के बड़े भाई बलदेवजी ने कादम्बरी को क़बूल करके रास्ता खोल दिया । जहाँ बड़े 2 पण्डित "हालाहलं पिवति दीक्षितमंदिरेपु" वग़ैरा को वेदवचन समझते हैं वहाँ दूसरों का क्या जिक्र ?

कलियुग—अजी आपकी तारीफ़ तो मुँह पर करना ही फ़जूल है, जब कि आलिमो का यह क़ौल है "अय चिगानी वादए गुलगूँ मुसफ़्फ़ा जौहरे । हुस्नरापरवर्दिगारे इश्क़रा पैग़म्बरे" पूरा भरोसा तो आप ही पर है ।

मदिरा—तो मुझे आपसे कब इनकार है, आप देखेंगे कि मैं जाते ही जाते कैसे 2 पाँव फैलाती हूँ । **(जाती है)**

कलियुग—अरे कोई है ? चौपटसिंह को जल्द बुलाओ ।

चौपटसिंह—(आकर) **गीत**

नाम हमारा चौपटसिंह है, ग़ारत करैं जमाना हम ।
डाह, वैर अरु फूट से रखते हैं, गहरा याराना हम ।
महाराज कलियुगजी के हैं, सच्चे दिल से तावेदार,
वेद वचन से बढ़कर गिनते हैं, उनका फ़र्माना हम ।
खुदा हमारा रुपया है, अरु अपना दीन खुशामद है,
खूब जानते हैं अहमक, जरदारों का फुसलाना हम ।
बाम्हनछत्रीवैश्य के लड़कों को, सिखलाकर मयख्वारी,
होटल वालों का भरते रहते हैं, सदा ख़जाना हम ।
भले मानसों के लड़कों को कर देते हैं सत्यानाश,
बी मुग़लानी का दिखला कर झूठा इश्क जताना हम ।

कहिये हुजूर, क्या हुक्म है ।

कलियुग—हुक्म यह है कि तुम्हारे और साथी हिन्दुस्तान की तरफ गए हैं तुम भी अपनी फ़ौज के साथ जल्द रवाना हो ।

चौपटसिंह—हुज़ूर फूट जो मेरा महबूबा है उसको तो मैं पहिले से भेज चुका हूँ और उसका ख़त भी शायद आपके पास आया हो ।

कलियुग—हाँ हाँ ठीक, आया तो है । अब तुम बाकी लोगों को लेकर जाओ ।

चौपटसिंह—जो इरशाद ।

[दूसरा दृश्य : जंगल का मार्ग]

[चौपटसिंह का अपनी फ़ौज को आज्ञा देना]

गीत

साथ चलो मेरे सब, चलकर भारत को घेरो अब ।
मारो सबो को करके ढब, पूछो न हसबो न सब ॥ 1 ॥
ऐसी मचाओ जंग, सब हों वहाँ के तंग ।
बढ़ाऊँगा सबकी तलब ॥ 2 ॥
चलकर फतह करो, किसी से मत डरो ।
शमशीर खींच पुर गजब ॥ 3 ॥
मूछों पै देव ताव, और आस्ती चढ़ाव ।
डाढ़ी दबा के ज़ेर लब ॥ 4 ॥
हिंदू है कँछढिले, आपस नहीं मिले ।
जीतेगा तुमसे कोई कब ॥ 5 ॥

कुपथ्य—**(सेना को आज्ञा देता है)**

गीत

चलो चलो चलो, भारत को सब चलो,
फरमां हमारे राजा का, है उसको जा छलो ।
आगे रखो कदम सब, मिलके अब वहम्,
इक दम से पहुँच के वहाँ, सबको दलो मलो ।
सिक्के को चलाओ, दुश्मन को भगाओ,
मारो चाहे मर जाओ, मगर पीछे ना टलो ।
तुम सब हो बहादर, रावन से भी बढ़कर ।
तलवार खींच म्यान से, दुश्मन की खबर लो ।

[फौज के साथ सब जाते हैं । कुछ लड़कों के साथ अविद्या आती है ।]

लड़के— **गीत**

फाड़ो फाड़ो किताब पढ़े लिखे फिरते हैं लाखों खराब,
पढ़-लिखकर अरु पण्डित बनकर माँगेंगे क्या भीख ।

दूसरा लड़का– नहीं नहीं ये झगड़े सब हैं,
निरे खयालो ख्वाब ।

तीसरा लड़का– उसी मुहल्ले में चलिये,
जहँ रहती है वह हूर ।

चौथा लड़का– अजी नहीं होटल में चलकर,
पहिले पियो शराब ।

पाँचवाँ लड़का– हम हैं जंटिलमैन के लड़के,
हमको किसका शर्म ।

छठा लड़का– कहेगा कोई क्या एव्रीबन ।
(Every one) दिल का है नबाब ।

सातवाँ लड़का– यही ज़िंदगी की लज्जत है ।
मेरी तो ईटएण्डड्रिंक (Eat & drink)

आठवाँ लड़का– बाप की दौलत का लालच है ।
नाहक़ अजी जनाब ।।

[सब जाते हैं और आलस्य आता है ।]

ग़ज़ल

आलस्य– दुनिया में नक्शपा की तरह अपना हाल है ।
बैठे जहाँ वहाँ से फिर उठना मुहाल है ।।
घर में लगे गर आग तो भागें न हम कभी ।
पानी के लाने की तो अवसकी लोक़ाल है ।।
बनिये नहीं कि फ़िक्र करें रोज़गार की ।
जब तक कि बाप दादे का क़ब्जे में माल है ।।
किस्मत का लिखा मिटता है टलती है या कि मौत ।
यह तालिबाने इल्म से अपना सवाल है ।।
परदेश जाकर अपना धरम क्यों गँवाइये ।
माँगे भी मिलती जब तक हमें रोटी दाल है ।।
दुनियाँ के दाम फ़िक्र में फसना तो दरकिनार ।
सौदाय जुल्फयार भी हमको बबाल है ।।
मरखप के क्या हुआ जो कोई नामवर हुआ ।
आख़िर तो हदकमाल को होता ज़वाल है ।।
थूथू हो ज़िंदगी में पसे मर्ग होशकर ।
हमको न इसका फ़िक्र न उसका मलाल है ।।
अय मुर्दा चार दिन के लिये हम करेंगे क्या ।
सब कुछ खुदा ही करता है अपनी यह ढाल है ।।

अंक 3

(पहला दृश्य : जंगल)

[भारत मूर्च्छित पड़ा है । पंडित, एडीटर, ब्रह्मी बंगाली, आर्यसमाजी, महाराष्ट्री, पंजाबी, ईसाई, मुसलमान बैठे हुए भारत को चैतन्य करने का उपाय कर रहे हैं ।]

एडीटर–प्रिय भ्रातृगण ! आज परमेश्वर ने वह दुर्दिन दिखलाया है कि जिन महामान्य परमपिता भारत की गोद में हम और हमारे पूर्वज लालित पालित हुए हैं, उनको हम इस दीन हीन क्षीण मन मलीन अवस्था में देखते हैं । यद्यपि हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, पर क्या कीजिये ? दुःख की दशा में बहुत सा घबड़ाना कातरता का चिह्न है । अतः हमारा परमधर्म यही है कि हम सब कटिबद्ध होकर एकचित्तता से इनके दुःख दूर करने का उपाय करें । होगा तो वही जो परमेश्वर की इच्छा है, परन्तु यत्न में त्रुटि होना ठीक नहीं । मैं समझता हूँ कि हमारे प्रिय मित्र पंडित विद्याधर महाशय आयुर्वेद विद्या में परम कुशल हैं; इनकी चिकित्सा और हम लोगों की सेवा से अवश्य ही उत्तम फल होगा ।

पंडित–(नाड़ी देखकर) रोग तो इनका बड़ा ही कठिन है, ऊपर से यह घाव भी महाभयानक है परन्तु औषधि के लिये इतना धन मेरे पास कहाँ से आवै ?

महाराष्ट्री–(1) उंः रुपयां करितां काळजी करूँ नये मलातर असें वाटतेंकीं, आह्मी हिंदुस्थानची चौबीसकोटी प्रजा जर एक एक रुपया देऊं तर सर्वकांही होऊन जाईल । पैसा जवळ असल्यास सर्व कांहीं होतें, तो नसल्यास कांहीं एक होत नाहीं ।[1]

सेठ–पैसो कठैशै आवेगो ? फरंगिया तो सगड़ा धंधा ले गया ।

महाराष्ट्री–(2) अरे रोजगार बंदकेल्यानें तर काहीं एक होत नाहीं आपले हातपाँय सबल असल्यास मातीपासून ही पैसा व्लूंशकतो विलायतेहून कापड़ाचें यंत्र मागऊं देशीकापड़ा वापरूँ । देशदेशान्तर करूँ आणि सर्व तहेचा रोजगार धंद करूँ । द्रव्य जर कांही दुसऱ्या देशचें आणुं शकणार नाही आपल्या तरी कडलेंही जाऊँ देणार नाहीं ।[2]

बंगाली–(1) आराकै योरूपे जाइबो, सिविलसर्विस उत्तीर्ण हवो, बैरीस्टर होवो ताहा हो हइलें एई तुच्छ टाका अवश्य प्राप्त हइवे । आमादिगेर जन्य केवल भारतेर प्रसन्नताई सब किछु होवे ।[3]

एडीटर–अरे भाई ! प्रसन्न होना तो कठिन है । नहीं अभी हम पर कौन वस्तु नहीं है ? कठिनता तो यही है कि आप ऐसे थोड़े से सत्पुरुषों को छोड़कर सर्वसाधारण को यह भी ज्ञान नहीं है कि हमारे और इन वृद्ध महाशय के बीच में कौन-सा सम्बन्ध है ।

आर्यसमाजी–महाशय ! यह न कहिये स्वामी दयानंद सरस्वती की दया से अब वह दिन नहीं रहा कि कोई आर्य भारत को न पहिचानें यदि हमारी सामाजिक उन्नति यूँही होती गई, प्रतिमा पूजन

---

1. वाह रुपये के वास्ते चिंता नहीं करना । मेरे को तो ऐसा मालूम होता है कि हम चौबीस कोटि भारत सन्तान जो एक 2 मुद्रा दें तो सब कुछ हो जायगा । पैसा होना तो सब कुछ होना पैसा नहीं होना तो कुछ भी नहीं होना ।
2. अरे धंधा ले जाने से तो कुछ भी नहीं होता अपना हाथ-पाँव साबत होना तो मट्टी से पैसा पैदा करना विलायत से कपड़े को कल मँगावेंगे देशी कपड़ा प्रयोग करेंगे । देश-विदेश जायँगे । और सब भाँति का रोजगार करेंगे । धन जो दूसरे देश का न ला सकेंगे तो अपने यहाँ का भी नहीं जाने देंगे ।
3. और क्या, विलायत जायँगे, सिविलसर्विस पास करेंगे, बैरिस्टर होंगे, तब यह तुच्छ रुपया अवश्य ही प्राप्त होगा । हमको तो भारत का प्रसन्न होना ही सब कुछ है ।

वगैरह वेदविरुद्ध काम उठते गये और पोपजी के तै दाँत अच्छी तरह खट्टे होते गये तो वह दिन अवश्य आवेगा कि समस्त भारतवासी भारत के लिये अपना सर्वस्व छोड़ने को तैयार हो जायँगे ।

बंगाली–(2) आमार प्रिय मित्र जे कहिलन ताहाते आमार किछु वक्तव्य आछे । आमी आशा कोरि यदि वक्तव्य विषय मध्ये किछु अनुचित हय, ताहोले मित्रगण क्षमाकरि देन । भ्रातृगण ! आपनि जे पापादि शब्द आपनार व्याख्यान मध्ये बलिया छेन, इहाउचितनय । जखन पर्यन्त समस्त रागद्वेष छांड़िया समस्त भ्रातृगण एवं भगिनीगण एकशंगे साउआ दाउआ न करिबेन, तथा जखन पर्यन्त समस्त जाति एक् हईया विवाह इत्यादि सम्बन्ध परस्पर न करिबेन तखन पर्यन्त कोनउ प्रकारे भारते रे उद्धार हइते पारेना ।[1]

ईसाई–O yes I second it ऐसा न होने से इंडिया का Progress I mean (उन्नति मैं समझता हूँ) भलाई कभी नहीं होगा ।

मुसलमान–दरीवेशक, किबलः हम निवाला व हम प्याला होने से तो इत्तफ़ाक़ बाहम नाकी पकड़ता है ।

ईसाई–हाँ इसका साथ में W.M. & J.L. भी होना जरूर है ।

मुसलमान–जनाब यह तो होना ग़ैरमुमकिन है । औरतों की बेपरदगी तो हिंद ऐसे मुहजिब मुल्क को क्योंकर ज़ेब हो सकती है ?

बंगाली–(1) (झुंझलाकर) ता आपनि कि अब लागण के पाखीर गत पिंजरारमध्ये बद्ध करिते इच्छा करते छेन ?[2]

एडीटर–इन व्यर्थ की बातों का अभी क्या काम है पहिले तो वर्तमान कष्टों के दूर होने का उपाय करना चाहिये । मेरी समझ में यदि पंडितजी की भी सम्मति हो तो आज भारत के लिये प्रेम-आसुव अत्यन्त गुणकारक होगा । इस्से दाह की शान्ति होकर बल की वृद्धि होगी ।

बंगाली–(1) आर एई क्षतटाके कि करते हवे ? इहाके सारिवार जन्य शीघ्र यत्न करा उचित ।[3]

पंडित–घाव तो व्यापार रूपी तैल से शीघ्र ही भर जायगा ।

मुसलमान–रौगने मौसूफ के वास्ते वलायत से कलेमगानी चाहिये वरनः निकलेगा किस तरह ?

एडीटर–(आप ही आप) हाय कला कौशल का यहाँ इतना अभाव हो गया कि छोटी 2 बातों के लिये भी इंग्लैण्ड का मुह देखना पड़ता है ।

ईसाई–हमारा Opinion **(सम्मति)** में कल मँगाने के वास्ते लेटर (Letter चिट्ठी) भेजा जाय तो साथ ही लेसंस फायल में इनका थोड़ा सा ब्लड (Blood रुधिर) भी भेजना चाहिये । शायद वहाँ का कोई डाक्टर और भी कोई तजबीज करे क्योंकि अभी इण्डिया का लोग इन बातों में पूरा नहीं हैं ।

मुसलमान–इन विचारों के जिस्म में लहूँ बाकी कहाँ है ? बल्कि मेरी राय में तो बकरा जिवह करके इनके जख्मों में भरना चाहिये ।

---

1. मेरे प्रिय मित्र ने जो कहा, इसमें मुझे कुछ कहना है । मैं आशा करता हूँ कि यदि इस कहने में कुछ अनुचित हो तो मित्रगण क्षमा करेंगे भाई । आप जो पोपादि शब्द अपने व्याख्यान में कहा करते हैं सो ठीक नहीं । जब तक कि, समस्त झगड़ा झंझट छोड़कर सारे भाई और समस्त बहनें एक संग न खाँय-पियेंगे तथा जब तक समस्त जाति एकाकार होकर परस्पर विवाह इत्यादि सम्बन्ध न करेंगी तब तक किसी भाँति भारत का उद्धार नहीं हो सकता ।
2. तो क्या आप औरतों को पक्षी के समान पींजरे में बन्द करने की इच्छा करते हैं ।
3. और इस घाव के विषय में क्या करना चाहिए ? इसको आरोग्य करने के लिये शीघ्र यत्न करना उचित है ।

पंडित—अरे राम ! ऐसा, अधम यत्न करने से जीवन रहा ही तो क्या ? क्या भगवान् भारत इस यत्न से प्रसन्न होंगे ।

भारत—ऐसे उपचार से मृत्यु शतगुण श्रेय है ।

मुसलमान—अज़ी हज़रत इसमें बुराई क्या है ?

पंडित—बुराई क्यों नहीं है । दूसरे के प्राण लेकर अपनी रक्षा करना यह हम लोगों का धरम नहीं है ।

ईसाई—जब तक एक आदमी के वास्ते दुनिया भर का सब जानवर मर जाँय तब तक तो कोई बुराई नहीं है, क्योंकि आदमी के वास्ते सब जानवर बनाया है ।

मुसलमान—बजा है, इन्सान अशरफुल मखलूकात है ।

एडीटर—तो क्या यह अशराफत है कि अपने से छोटे जीवों को मार खाना ।

बंगाली—(1) (झुंझलाकर) विवादेर एई शमय नहि, उचित कर्तव्य शीघ्र ही निर्द्धारण करा उचित । एकटा छागेर बध अपेक्षा कि मनुष्येर जीवन मूल्यवान नय ?[1]

मुसलमान—बेशक बाबूसाहब वजा फरमाते हैं ।

पंडित—आपके लिये किसी का वध करना उचित हो सकता है, परन्तु हम हिन्दू लोग ऐसा करने से दूर रहते हैं । अब किसी का प्राण लेने की चरचा न कीजिये ।

मुसलमान—आप भागे पार हैं लेकिन हम तो इनके लिये जो मुनासिब होगा वह जरूर ही करेंगे ।

ईसाई—सरटेनली (Certainly अवश्य ही) लेकिन अब इस बात के लिये कि भारत में कुछ ताकत आ जाय, इसको थोड़ा-सा अंगूरी शराब पिलाना इस वक्त बहुत ही जरूर है ।

बंगाली—(1) एइ उपाय आमारउ अनुमोदित ।[2]

पंजाबी—मेरी राय नाकिस में तो यह आता है कि भारत की तफ़रीह तबा के लिए यहाँ पर किसी तायफे का नाच होना चाहिये ।

पंडित—तुम सब ही की सम्मति ठीक नहीं । ज्ञात होता है कि तुम भारत के आन्तरिक शत्रु हो ।

मुसलमान—बस पंडित साहब ! रहने दीजिये अपना पोथी पत्तरा, अगर अबकी बार जबान निकाली तो जमीन पर पटक दूँगा ।

महाराष्ट्री—(2) मियासाहेब ! चुपचाप बसा काय आपण एहांशीच दक्षिणीलोकांचे बाहूबल विसरलेत ?[3]

बंगाली—(3) (धोती सम्हालता हुआ भागता है) क्षमा करून, क्षमा करून ! महाशय ! एई पंडित व्यटा वोड़ मूर्ख ।[4]

[कलियुग की सेना का चारों ओर से आकर सबको घेर लेना ।]

---

1. झगड़े का यह समय नहीं है । कर्तव्य बात का विचार करना चाहिये । एक छारबध की अपेक्षा क्या मनुष्य का जीवन मूल्यवान नहीं है ।
2. मैं भी उसका अनुमोदन करता हूँ ।
3. मियाँ साहब, चुपके बैठे रहिये । क्या आप अभी से दक्षिणी लोगों के बाहुबल को भूल गए ?
4. क्षमा कीजिये, क्षमा कीजिये महाशय ! यह पण्डित बड़ा मूर्ख है ।

सेनापतिगण— **गीत अंगरेजी वजन**

मार मार मार अभी पकड़ के ।
सबके सर को धड़ से लो उतार ॥ 1 ॥
करते हैं बड़ा शोर, यह सारे सीने जोर ।
इस ही आन लेलो जान, मार के तलवार ॥ 2 ॥
जलदी हो तयार, सब ही एकबार ।
करें नयाम अपनी 2 तेग आबदार ॥ 3 ॥

मुसलमान— **लावनी की धुन**

सुनिये खुदारा वाकए सारा हूँ मैं बहुत लाचार ।
सौदा लेंनें आया था ह्याँ पकड़ गया सरकार ।
अब छोड़ो तो कभी न आऊँगा मैं ह्याँ जिनहार ।
बहरे खुदा तुम बख्शो खता सब मेरी अयसरदार ।

बंगाली— **गीत**

दीन बंधु दीना नाथ, करिये शहाई हो ।
एखन तुमार विनेकेह, न दिखाई हो ॥ 1 ॥
आमि एइ खाने मित्र ! आशि लाम बेडाइते ।
कि कारिणे जानि नाई, कष्ट एत पाई हो ॥ 2 ॥
क्षमाकोरो निजगुणे, निराकार गुणमणे ।
साकार निर्मित रूप, हनो खल आई हो ॥ 3 ॥

[बंगाली, मुसलमान और पंजाबी को कलियुग की सेना साथ ले आती है । वृक्ष की ओट में छिपने के कारण भारत, पंडित और एडीटर वहीं खड़े रहते हैं ।]

एडीटर—(सेना के चले जाने पर उदास होकर) अहो ! कहाँ तो भारत को चैतन्य करने के लिये आये थे, कहाँ परस्पर यह विरोध फैला और कलियुग की सेना अपने मित्रों को पकड़ ले गई और फिर सत्य भी तो है कि जहाँ तनक 2 बात पर कान भौहें चढ़ जाती हैं वहाँ आगे किस बात की आशा की जाय ? हा विधाता ! देश भर को हम अकेले कहाँ तक रोवैं यदि कुछ दिनों यही अवस्था रही तो पृथ्वी रसातल को चली जायगी । नहीं अब इससे अधिक क्या होना है । कहाँ वह सार्वभौमराज्य ? कहाँ यह दुर्दशा ? कहाँ एक दिन यह था कि इन्हीं पूज्यपाद प्रातःस्मर्णीय को भूमंडल मात्र के मनुष्य अपना शिरोमुकुट समझते थे और हाय ? एक दिन आज है कि इन्हीं की सन्तान आज इनसे सर्वथा विरक्त हो रही है । हाय परमेश्वर ! क्या हम इस ही लिये उत्पन्न हुए हैं कि अपने परमपिता का दुःख देखकर भी कुछ सहायता नहीं कर सकते । थोड़े से लोग क्या कर सकते हैं ? सारा देश तो कलिराज का गुलाम हो रहा है । हिन्दूपन की तो कहीं गंध भी नहीं आती । केवल स्वार्थपरता का बल है ! हठधर्मी पराधीनता का चारों ओर विस्तार है । हाय ! हम कहाँ जायँ ? क्या करैं ? अपना दुःख किससे कहें ? कोई श्रवण करने वाला नहीं । **(हाथ जोड़कर)** भगवान् ! भारत यह देह तुम्हारी पवित्ररज में मिल जाने को प्रस्तुत है और हम किस योग्य हैं ? **(कुछ सोचकर)** ! यदि सच पूछो तो अभी भारत में किसी वस्तु का सर्वथा

अभाव नहीं है विद्वान्, बलवान्, धनवान, सैकड़ों हैं पर कोई किसी के काम का नहीं । अपने रंगमाते सब हैं । हाय ! दुष्टे अनैक्यते पिशाचिनि ? तैंने ही हमारा सर्वनाश किया । हाय ? हम किस प्रकार से धैर्य धारण करें ? तीरों से छिदे हुए हृदय पर कहीं पत्थर रक्खा जाता है ? हे ईश ! इससे तो हमको निरामूर्ख ही बनाते, वही अच्छा था । वर्तमान दुर्दशा देखकर और भविष्यत का विचार करके कलेजा फटा जाता है, हा परमेश्वर ! यह जीवन तो एक दिन जाने को ही था । यों ही सही । निरी असमर्थता ही सही, पर आगे से भारत की गति तुम्हारे ही हाथ है । अब हम तुच्छ जीवन को रखके क्या करेंगे ? हरे कृष्ण गोविन्द नारायण ।

हरिगीतिका छंद ।

अति घोर तम छायो चराचर झारि नहिं सूझतमही ।
जगरुंड मुंड पिशाच युत है दुर्दशा न परे कही ।।
जहँ नित्य वेद पुरान ध्वनि को घोष नभ पहुँचत रह्यो ।
तहँ निलज गीत अपार गाये जात सुन धधक तहियो ।।
जहँ नारिनर नित धर्मकर्म अनेक व्रत चित धारते ।
तहँ आज लम्पट दुष्ट बाढे झुकत महितिन भारते ।।
जहँ शिव दधीचि, बलीबलीक्षितिनाथ लीला कर रहे ।
तहँ दुष्ट नादिरशाह अरु अवरंग अति पापी भये ।।
अब सबहि निज 2 धर्म छोड़ स्वतंत्र मारग में चले ।
तेहि पाप बारम्बार होत अकाल भारत दलमले ।।
प्राचीन कीर्ति मलीन ह्वैके छिन्न भिन्न विराजही ।
सोलखत छाती फटे भारत की, न हम मन लाजहीं ।।
"जग रंग भूमि समान क्षणभर क्यों वृथा ही जीजिये ।
परजायजबतोजबनिका जीवन में क्या मुख लीजिए ।।"

इति भारतदुर्दशा रूपक समाप्त ।

मानसबिनोद

अर्थात्

श्रीमत्कविकुलशिरोमणि तुलसीदास

गोस्वामी महानुभाव कृत रामायण

अनेकानेक उत्तमोत्तम विषय विभूषित

चुने-चुने वाक्य रत्न

जिन्हें

स्वदेश भाइयों के हितार्थ ईश्वरावलंबित

प्रतापनारायण मिश्र ने एकत्र किया

और जिसे

भारत जीवन सम्पादक बाबू रामकृष्ण

ने छापा ।

समर्पण

मेरे हृदयाभिराम !

यद्यपि इस के समर्पण करने का अधिकार हम को नहीं है पर तुम जानते ही हो कि हमारे लेखे त्रिकाल और त्रिलोक में जो कुछ है तुम्हारा ही है ! तुम्हीं को समर्पणीय है !! तुम्हीं पर वारने योग्य है !!! विशेषतः जिस ग्रन्थ का यह सार है वह हमारी जाति मात्र के मानस के विनोद का हेतु है। अतः एक रीति से सभी भारत संतान का इसपर अधिकार है, फिर कहिए भारतीय नाते हम भी कोई हैं कि नहीं ? और हमारे मन को किसी बात में विनोद कहाँ जब तक वह तुम से संबंध न रक्खे ! अतएव इसे अपनाओगे तभी यह हमारा सच्चा मानसबिनोद होगा !

केवल तुम्हारा
ईश्वरावलंबित मिश्र—कानपुर

श्रीमानसबिनोद

श्रीमत् कविकुलकुमुदकलानिधि भगवान् तुलसीदास गोस्वामी महानुभाव की रामायण को ऐसा ही कोई गया बीता होगा जिसने (क ख ग घ तक सीखा हो) न देखा हो, देखना कैसा क्या मूर्ख क्या विद्वान् कदाचित सौ पीछे दो ही एक होंगे जिन्हें 'पर अधीन सपने सुख नाहीं' 'विधि का लिखा को मेटन हारा' 'ह्वैहै सोइ जो राम रचि राखा' 'मैं बैरी सुग्रीव पियारा' इत्यादि वाक्य कंठस्थ न हों ! इस व्यापकता का कारण हम तो मुक्तकंठ से यही कहैंगे कि उस अद्वितीय कवि की जादू भरी कविताशक्ति है, जिस्में बड़े 2 पांडित्याभिमानी स्वर्ग पताल देखा करते हैं पर शंका की निवृत्ति नहीं होती ! और सीधे सादे ग्रामीण भी समझ ही लेते हैं कि 'चले राम धरि सीस रजाई' रामचन्द्र मूड़े माँ रजाई धरि कै चलत भे ! जिन्होंने इस रामायण को कामधेनु कहा है निश्चय ठीक कहा है ! ऐसी कोई बात नहीं है जो एतद्वारा न प्राप्त हो पर समझने वाला चाहिये, इस्का नाम "रामचरित मानस है" पर सब लोग रामचरित ही मात्र पढ़ते सुनते हैं, मानस का तत्त्वज्ञान 'राम कृपा विन सुलभ न सोई' कही दिया है, ! वह 'गुप्त जहं जो जेहि खानिक' चरित्र तो हमी ऐसे तदीय 'जानहिं कोउ कोऊ, पाठकगण ! गोस्वामी जी के गुप्त तात्पर्यों को जानैंगे तो निस्संदेह 'ब्राह्मण'[1] को अपना गुरू घंटाल समझेंगे ! अब हम उस में की अखंडनीय बातें एकत्र करते हैं जो त्रिकाल में सत्य हैं, विशेषतः वर्तमान समय के लिए तो 'भेषजं भेषजतायाः' समझिए ! विश्वास न हो तो कुछ दिन स्वयं परीक्षा कर देखो । हम यह तो नहीं कह सकते कि सब रत्न हमने निकाल लिए पर इस विषय में दूसरों को हम सहायक होंगे ! यदि किसी भारतीय भाई का इस ग्रन्थ से कुछ भी उपकार हो तो हमारा थोड़ा सा श्रम और बड़ी सी आशा सफल है ।

प्रताप मिश्र

जिन के लेख वा वचन में मनोहारिणी लालित्यता तो नहीं होती पर उद्देश्य हितकारी होता है उन ग्रन्थकारों, पत्रसंपादकों तथा व्याख्यान दाताओं के विषय श्रीगोस्वामीजी की आज्ञा—साधु चरित शुभसरिस कपासू । निरस विषद गुण मय फल जासू ।। जो सहि दुख[2] पर[3] छिद्र दुरावा । बंदनीय जिहिं जग जस पावा ।। 1 ।।

बिना ऐक्य कुछ नहीं होना—मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहि जतन जहाँ जिहिं पाई ।। सो जानेहु सत[4] संग प्रभाऊ । लोकहु वेद न आन उपाऊ ।। 2 ।।

सच्चे देशभक्त का लक्षण (अपने निज का सुख दुःख न गिनैंगे)—बंदों संत समानचित हित

1. प्र० ना० मि० का उरदू में उपनाम (तख़ल्लुस) भी ब्राह्मण (बरहमन) है और जिस्से यह लेख थोड़ा सा उद्धृत है वह पत्र भी 'ब्राह्मण' है । अतः यहाँ वही नाम रहना योग्य समझा गया है ।
2. यह किसी एडीटर से पूछो जो नादिहंद ग्राहकों तथा ज़िले के हाकिमों की आँखें देखे हो ।
3. पर = श्रेष्ठ = आर्य्यजाति ।।
4. सत (शत) सौ अर्थात् बहुत जोग ।

अनहित नहिं कोउ । अंजुलि गत शुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोउ ॥ 3 ॥

हज़रतों का लक्षण—पर हित हानि लाभ जिन केरे । उजरे हर्ष विषाद बसेरे ॥ 4 ॥

बाजे 2 अंगरेजी पत्रसम्पादक हमारे देशी राजाओं के हक़ में !—जे पर दोष लखहिं सहसाखी । पर हित धृत जिन के मन माखी ॥ 5 ॥

कुपढ़ अमीर (केवल वेश्या और खुशामदियों कनेहीं)—उदय केतु सम हित सवही के । कुंभकरण सम सोवत नीके ॥ 6 ॥

किसी मत के कदर पक्षपाती—वचन बज्र जेहिं सदा पियारा । सहस नैन पर दोष निहारा ॥ 7 ॥

दुष्ट प्रकृति नहीं जाती—बायस पालिय अति अनुरागा । होहिं निरामिष कबहुं कि कागा ॥ 8 ॥

प्रेमी और बाजे 2 एंग्लो इंडियन—विछुरत एक प्रान हरि लेहीं । मिलत एक दारुण दुख देहीं ॥ 9 ॥

इस में क्या संदेह है ! चोर भी चोरी को अच्छा नहीं कहते--भल अनभल जानै सब कोई । जो जिहिं भाव नीक तेहिं सोई ॥ 10 ॥

बैरागी, संन्यासी, गोसाईं (अधिकांश)—लखि सुबेष जग बचक जेऊ । भेष प्रताप पूजियत तेऊ ॥ 11 ॥

कहीं बिरले ठौर ऐसा होता होगा । नहीं तो लोग देख सुन के जान बूझ के जीती मक्खी खाते हैं—उधरे अंत न होय निबाहू । कालनेमि जिमि रावण राहू ॥ 12 ॥

श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु, श्रीयुत मास्टर सुखदावलम्बित, श्रीयुत बालकृष्णभट्ट, श्रीयुत पं० बद्रीदीन जी शुक्ल, श्री भाई गजराजप्रसाद (और भी होंगे पर हमें अनुभव नहीं है)—किये कुबेष साधु सबमानू । जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥ 13 ॥

देशहितैषिता के मरीज़—सूझ न एकौ अंग उपाऊ । मन मति रंक मनोरथ राऊ ॥ 14 ॥

सत्काव्य कठिन है, यों तो—निज कवित्त केहि लाग न नीका । सरस होउ अथवा अति फीका ॥ 15 ॥

सच्चे देशहितैषी—सज्जन सुकृति सिंधु सम कोई । देखि पूर विधु बाढ़ैं जोई ॥ 16 ॥

सच्चे उद्योगी (केवल मन में)—खल उपहास होय हित मोरा । काक कहहिं पिक कंठ कठोरा ॥ 17 ॥

सच्चे धर्म्मिष्ठ—हरि हर पद रति मति न कुतरकी । तिन कहं मधुर कथा रघुबर की ॥ 18 ॥

सच्चा कवि सकल सद्‌गुण संपन्न होने पर भी ऐसा कहने में अपनी शोभा समझेगा—कवित विबेक एक नहिं मोरे । सत्य कहौं लिखि कागद कोरे ॥ 19 ॥

प्रेम बिना सब सद्‌गुण—विधुबदनी सब भाँति सँवारी । सोह न वसन बिना वर नारी ॥ 20 ॥

और सुनिए—ऊँच नीच गुण अगुण सब भले प्रेम के संग । 'दारु बिचार कि करै कोउ बंदिय मलय प्रसंग' ॥ 21 ॥

वेद में लिखा है नेति, कुरआन में लिखा है (लाओ हसी) फिर न जाने इन पुस्तकों के मानने वाले क्यों ईश्वर के विषय में लड़ मरते हैं, क्या नहीं जानते !—जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहौ तूल केहि लेखे माहीं ॥ 22 ॥

अखंडनीय सिद्धांत—जो प्रसंग बुध नहिं आदरहीं । सो श्रम बादि बाल कवि करहीं ॥ 23 ॥

उत्तम कविता का लक्षण—सरल कवित कीरति बिमल'* सो आदरहिं सुजान । सहज बैर बिसराय रिपु जो सुनि करहिं बखान ॥ 24 ॥

हमारी समझ में तो—'अनमिल आखर अर्थ न जापू' मिथ्या मंत्र न हरिहैं तापू ॥ प्रेम किए होइहिं सुख आपू । 'प्रगट प्रभाव महेश प्रतापू' ॥ 25 ॥

सच्चे भारतभक्तों के लिए मूल मंत्र—सकल विघ्न ज्यापहिं नहिं ताही । राम कृपा करि चितवहिं जाही ॥ 26 ॥

आगे होते होंगे ! अब तो किस ने देखा हो सो बतावै !—तापस सम दम दयानिधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ॥ 27 ॥

निश्चय ! निस्संदेह !! बेशक !!!—संत कहहिं अस नीति प्रभु ! श्रुति पुराण जो गाव । होय न बिमल बिबेक उर गुरसन किए दुराव ॥ 28 ॥

सच्चे प्रेमिक जाहिर में पागल से इस कारण रहते हैं—भए भगन छबि तास (प्रेम पात्र की) विलोकी । अज हुं प्रीति उर रहति न रोकी ॥ 29 ॥

सब के लिए उपयुक्तोपदेश—जैसे जाय मोह भ्रम भारी । करहु सो जतन बिबेक बिचारी ॥ 30 ॥

पुराने ढंग के बुड्ढों का सिद्धांत—होइ है सोइ जो राम रचि राखा । को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥ 31 ॥

निहायत सच !—जल पय सरिस बिकाय देखहु प्रीति कि रीति यह । बिलग होय रस जाय कपट खटाई परत ही ॥ 32 ॥

हिन्दू, जयन, मुसलमान, अंगरेज, सब का इतिहास देख डाला—नहिं अस कोउ जनम्यो जग माहीं । प्रभुता पाय जाहि मद नाहीं ॥ 33 ॥

(पर बिगड़ते समय) नीति ! नीति !! नीति !!!—यदपि मित्र गुरु पितु प्रभु गेहा । जाइय बिन बोले न संदेहा ॥ तदपि बिरोध मान जहं कोई । तहाँ गए कल्याण न होई ॥ 34 ॥

परमेश्वर करे अगरवाले निम्नोक्त बचन को सिड़ी की बात समझ कर व्याह की अपव्यय जनित हानियों से बचें ! और कनवजिया भाई इसे ब्रह्म वाक्य मान कर अनेक कुकर्मों से छूटें !—यद्यपि जग दारुण दुख नाना । सब ते कठिन जाति अपमाना ॥ 35 ॥

बहुत सहनशीलता शास्त्र विरुद्ध है ! अन्य लोग कभी इतना व्याप्त न होते यदि यह आज्ञा मानी जाती कि—संत शंभु ब्यौपति अपवादा । सुनिय जहाँ तहं असि मरजादा । काटिब तासु जीभ जु बसाई । (अर्थात् जो अधर्म के शब्दों से दुर्गन्ध करती है वह जीभ) कान मूँदि नहिं चलिय पराई । (कान मूँद के भागिये नहीं) ॥ 36 ॥

खुशामदी उबाच (स्वतंत्राचारी अमीर विषये)—समरथ को नहिं दोष गुसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं ॥ 37 ॥

निस्संदेह विश्वनाथ ऐसे हैं ही—वरदायक प्रणतारति भंजन । कृपासिंधु सेवक मन रंजन ॥ 38 ॥

सातौ विद्या निधान देशी हाकिम बिलायती हाकिमों से बडांजुलि हो के कहते हैं—गिर धरि आयशु करिय तुम्हारा । परम धर्म यह नाथ हमारा ॥ 39 ॥

---

* वि०—बिगत, मल=खुशामद बनावट इत्यादि ।

निस्संदेह ! पर कहने और करने में भेद होता है—पर हित लागि तजै जो तेही । संतत संत प्रसंसैं तेही ॥ 40 ॥

कनवजियों के व्याह में (लड़की वालों के हक में)—कहिय कहा कहि जाय न बाता । जम के धार कि घोर बराता ॥ 41 ॥

बाबा लम्पटदास की चेलियाँ काहे को मानैंगी—बृथा मुचंडदास कै पूजा । 'नारि धर्म पति देव न दूजा' ॥ 42 ॥

कान्यकुब्ज कन्या का वाक्य—कत विधि रची नारि जग माहीं । पर अधीन सपने सुख नाहीं ॥ 43 ॥

मान्य पुरुषों से बिनय का क्या अच्छा नमूना है—जासु भवन सुर तरु तर होई । सह कि दरिद्र जनित दुख सोई ॥ 44 ॥

हमारे पंडित जी इस वाक्य को सुनैं तो क्यों विद्या का लोप हो—गूढ़ौ तत्व न साधु दुरावैं । भारत अधिकारी जहं पावैं ॥ 45 ॥

धर्म और मत—झूठौ सत्य जाहि बिनु जाने । जिमि भुजंग विन रजु पहिचाने ॥ 46 ॥

सच है ! सच है !! निश्चय सच है !!! जिन हरि भक्ति हृदय नहिं आनी । जीवत शव समान ते पानी ॥¨कुलिश कठोर निठुर सो छाती । सुनिहरि चरित न जो हरखाती ॥ 47 ॥

प्रेमशून्य जीव—अज्ञ अकोबिद अंध अभागी । कोई विषय मुकुर मन लागी ॥ 48 ॥

पंडित, पादरी, मौलबी (सब न सही)—वातुल भूत बिबस मतवारे । ये नहिं बोलहिं वचन सँभारे ॥ 49 ॥

स्वजातिहित साधनार्थ सब कर्तव्य है—'छल करि टारेउ तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह' । करहु जाति हित जस बनै यहि मिश्र यह सिख दीन्ह ॥ 50 ॥

अनुभूत वाक्य—जे कामी लोलुप जग माहीं । कुटिल कागइव सबहि डराहीं ॥ 51 ॥

हे इलवर्टबिल बिनाशकारी महाराज !—पर संपदा सकहु नहिं देखी । तुम्हारे इरषा कपट विशेषी ॥ 52 ॥

हे यूरोपियन प्रभो ! (बाजे 2)—परम स्वतंत्र न शिर पर कोई । भावै मनहिं करौ तुम सोई ॥ 53 ॥

ईश्वरीय विषय में मानवीय बुद्धि नहीं चलती क्योंकि—सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोहमाया प्रबल । अस विचार मन माहिं भजिय महामाया पतिहि ॥ 54 ॥

नीतिज्ञ को यों भी निर्वाह करना चाहिए—रिसि उर मारि रंक जिमि राजा । बसै बिपिन तापस के साजा ॥ 55 ॥

क्या ही सच है—तुलसी देखि सुवेष भूलैं मूढ़ न चतुर नर । सुंदर केकौ पेख बचन सुधासम अस न अहि ॥ 56 ॥

माला, कंठी, दाढ़ी इत्यादि के आग्रही इस वाक्य को सुनैं—प्रभु जानत सत विनहि जनाए । कहहु कौन सिधि लोक रिझाए ॥ 57 ॥

सच्चे नीतिज्ञ के लिए मूलमंत्र—रिपु तेजसी अकेल अपि वधु करि गनियन ताहु । अजहु देत दुख रवि ससिहि सिर अवशेषित राहु ॥ 58 ॥

आलसी अथवा कलजुगी ब्रह्मज्ञानी (जिन्के हक में 'कलौ वेदांतिनः संति फाल्गुने बालका इत' कहा है) उन्का वचन—परिहरि सोच रहहु अब सोई । बिन औषधिहि व्याधि बिधि खोई ।। 59 ।।

प्रत्येक मांसाहारी के विषय में हास्यप्रिय की उक्ति—जो यह खल नित करिहिं अहारा । होइहि सब उजारि संसारा ।। 60 ।।

परमेश्वर ही कुशल करे ! इधर हमारे भारतीय तो सीधे साधे 'हित अनहित पशु पंछी जाना' पै ये जानत नाहिं उधर विदेशी लोग—काम रूप जानहिं सब माया । सपनेहुं जिन के धर्म न दाया ।। 61 ।।

भारतभूमि का बचन—गिरि सरि सिंधु भार नहि मोहीं । जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही ।। 62 ।।

और यहाँ के मेवे ही फूट बैर ठहरे, शिक्षा कमिशन की सताई हुई देवनागरी—निज संताप सुनाइसि रोई । काहू ते कछु काज न होई ।। 63 ।।

प्रेम की महिमा सर्वत्र है—हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना । देश काल दिशि विदिशहु माहीं । कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं ।। 64 ।।

सज्जन का भीतर बाहर एक सा होता है—हृदय अनुगृह इन्दु प्रकासा । सूचत किरन मनोहर हासा ।। 65 ।।

शास्त्रार्थ के ललिहल काहे को समझेंगे कि—मन क्रम बचन छांड़ि चतुराई । भजत कृपा करि है रघुराई ।। 66 ।।

सच है ! होनहार बिरवा के चिकने 2 पात—विद्या बिनय निपुण गुणशीला । खेलहिं खेल सकल नृप लीला ।। 67 ।।

भारतभाग्य परमेश्वर से कहता है—असुर समूह सतावैं मोहीं । मैं जाचन आयौं नृप तोहीं ।। 68 ।।

अंगरेजी तमाशों के उत्सुक हियो कपार के अंधे हिंदू—धाए धाम काम सब त्यागी । मनहुं रंक निधि लूटन लागी ।। 69 ।।

वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, गाणपत्य, जैन, शीआ और सुन्नी सब बातें किए जाँय, पर परमेश्वर करे कि इतना भली भाँति समझ लें कि हम हिंदुस्थानी हैं !—जो विधि वश अस बनै संयोगू । तौ कृतकृत्य होय सब लोगू ।। 70 ।।

सरलचित्त और सर्बप्रिय राजा की तस्वीर देखो—पुर बालक कहि 2 मृदु वचना । सादर प्रभुहि दिखावैं रचना ।। 71 ।। हमारे यहाँ तो लड़के अंगरेज को देखकै सूख जाते हैं !

प्रेमी की दृष्टि में परमात्मा की छबि—स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनैन नैन बिन बानी ।। सुंदरता कहं सुंदर करई । छबि गृह दीपसिखा जनु करई ।। 72 ।।

सच है !—जिन के लहैं न रिपु रन पीठी । नहिं लावहिं परतिय मन दीठी ।। मंगन लहैं न जिन के नाहीं ।। ते नर वर थोरे जग माहीं ।। 73 ।। बीस कोटि हिंदू में शायद दो एक ।

'न तस्य प्रतिमा अस्ति, यह वेदवाक्य भी ठीक है पर सच्चे प्रेमियों ने निस्संदेह—परम प्रेम मय मृदु मशि कीन्ही । चारु चित्त भीतर लिखि लीन्ही ।। 74 ।।

रामपरीक्षा बनाने वाला यह चौपाई देखता तो हमारे परम धार्मिक भगवान् को कभी कामी न कहता । पर मत तो मत ! ईसूपरीक्षा क्यों बनती—राम कहा सद कौशिक पाहीं । सहज सुभाव छुवा छल नाहीं ।। 75 ।।

(बाग का हाल)

सच है ! 'हरि जैसे को तैसा है'—जिन के रही भावना जैसी । प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥ 76 ॥

हिंदी दफतर, गोबध निवारण ! और सब कुछ आज होता है जो 100 जन भी इस मंत्र को लें—एक बार कालहु किन होई । सिय हित समर जितब हम सोई ॥ 77 ॥

नहीं तो सब यही कहैंगे—बृथा मरहु जनि गाल बजाई । मन मोदक नहिं भूख बुझाई ॥ 78 ॥

जिस ने प्रेमतत्व कुछ भी जाना है वह मतबादियों से सदा कहैगा—करहु जाय जेहि कहँ जो भावा । हम तौ आजु जन्म फल पावा ॥ 79 ॥

स्वधर्माभिमानी अपने विषय में कुरानी किरानी से कहता है यहाँ—डगै न संभु सरासन कैसे । कामी बचन सती मन जैसे ॥ 80 ॥

भारतमाता हिन्दुओं से कहती है—अब जनि कोउ मारबै । बीर विहीन मही मैं जानी ॥ 81 ॥

हँसना मत !—जब लेक्चरर सभा महँ बोले । डगमगानि महि दिग्गज डोले ॥ 82 ॥

मातृभाषा हिंदुओं की दशा पर शिक्षा कमिशन के मेंबरों की ओर—कोउ न बुझाय कहै नृप पाहीं । ये बालक अस हठ भल नाहीं ॥ 83 ॥

पुनः नागरी से संस्कृत का वचन—भूप सयानप सकल सिरानी । सखि विधि गति कछु जाति न जानी ॥ 84 ॥

भारतभूमि न्यायकारी परमेश्वर से—अहह ! तात ! दारुण हठ ठानी । ससुझत नहिं कछु लाभ न हानी ॥ 85 ॥

स्लाटर हाउस जाती हुई गाय की दशा (राह में हिंदुओं को देख कर)—लोचन जल रह लोचन कोना । जैसे परम कृपिण कर सोना ॥ 86 ॥

इस में किंचितमात्र संदेह नहीं (पर होना कठिन)—जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥ 87 ॥

भारतभूमि कहती है (हे करुणाकर दीनबंधु ! तुम्हारी दया में संदेह नहीं ! पर)—तृषित बारि बिन जो तन त्यागा । सुए करिहि का सुधा तड़ागा ॥ 88 ॥

जिन्हें पुनर्जन्म पर हठ ही है, वे दूसरी बार के माथे न बैठे रहें इस बचन पर ध्यान दें !—का वरषा जब कृषी सुखाने । समय चूक फिर का पछिताने ॥ 89 ॥

अहा हा ! एक तरह का प्रेमी का फोटोग्राफ ! चित्त की आँख से दृष्टव्य !—तन सकोच मन परम उछाहू । गूढ़ प्रेम लखि परै न काहू ॥ 90 ॥

हाय शब्दवेधी पृथ्वीराज चौहान के साथ ही क्या सभी हिन्दुओं की—बल प्रताप वीरता बड़ाई । नाक पिनाकहि संग सिधाई ॥ 91 ॥ (पिनाक अर्थात् धनुष विद्या)

कोई 2 अपने रंग के अभिमानी अंगरेज अथवा किरानी यद्यपि शांतप्रिय होने का दावा करते हैं पर—जेहि सुभाव चितवहिं हित जानी । सो जानै जनु आयु खुरानी ॥ 92 ॥

सच्चे देशहितैषियों को बिदेशियों की बंदरघुड़की पर कहना चाहिये—यहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जो तर्जनि देखत मरि जाहीं ॥ 93 ॥

ऐ हज़रत पायोनियर (हिन्दी अमीर कहते हैं)—बीर बृत्ति तुम धीर अछोभा । गारी देत न पावहु शोभा ॥ 94 ॥

मिशन स्कूल के लौंडे धुंधडू पंडित से कहते हैं—मिले न कबहुं सुभट रन गाढ़े । हिज देवता घरहि

के बाढ़े ।। 95 ।।

बाजे 2 पादरी साहब—मन मजीन तन सुंदर कैसे । बिष रस भरे कनक घट जैसे ।। 96 ।।

सदा सर्वदा !—टेढ़ जानि शंका सब काहू । बक्र चंद्रमा ग्रसै न राहू ।। 97 ।।

बुड्ढे कनवजिया समधी से कहते हैं—मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे । बोलसि निदरि बिप्र के भोरे ।। 98 ।।

शायद हमारे नाजुकसिंह ने यह बचन नहीं सुना—छत्री तन धरि समर सकाना । कुल कलंक तेहिं पामर जाना ।। 99 ।।

स्वाभाविक गौरव नहीं छिपता—जिन के जस प्रताप के आगे । शशि मलीन रवि शीतल लागे । तिन कहँ कहिय नाथ ! किमि चीन्हे । देखिय रविहि कि दीपक लीन्हे ।। 100 ।।

निस्संदेह !!!—जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं । यद्यपि ताहि कामना नाहीं ।। तिमि सुख संपति बिनहिं बुलाए । धर्मशील पहँ जाहिं सुभाए ।। 101 ।।

उलटी समझ वाले कनौजियों के लड़के सास से ऐ कहैं तो कलजुगहा कहावैं—मातु सुदित मनु आयसु देहू । बालक जानि करेहु नित नेहू ।। 102 ।।

कट्टर कनवजिया स्त्री से ऐसा कहे तो शायद पाप हो !—वधू लरिकिनी पर घर आई । राखेहु पलक नैन कीं नाई ।। 103 ।।

सर्बोपरि उपदेश—मन हरि पद अनुराग, करहु त्याग नाना कपट । महा मोह निशि जाग सोवत बीतेउ काल बहु ।। 104 ।।

।। इति बाल कांड बिनोद ।।

अयोध्या कांड

श्रीगोस्वामी जी कवियों में शिरोमणि हैं ! और अयोध्या कांड उनकी कविता का शिरोमुकुट है, मंगलाचरण ही में देखिए भगवान् रामचन्द्र के स्वभाव में क्या अनुकरणीय गुण दिखाते हैं ॥

प्रसन्नता यों न गतो भिषेकतस्तया न मम्लौ बनबास दुःखतः । सुखाम्बुजः श्रीरघुनन्दनस्य मे सदास्तु तन्मंजुल मंगलप्रदं ॥ 1 ॥

भावार्थ—खिल्यो न जो नैकहु राज्य सुख ते । मलीन नाहीं बनबास दुःख ते ॥ मुखाब्ज सो श्रीयुत रामचंद्र को । सदैव मेरे हित मोद हेतु हो ॥ 1 ॥

यवनागमन के पहिले भारत की शोभा—कहि न जाय कछु नगर विभूती जनु इतनिहि बिरञ्चि करतूती ॥ 2 ॥

जो राजा पहरियासिंह ! आज परदेशियों की गुड़िया बनै हैं, इन्ही के पूर्बज ऐसे थे जिन की—नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे । लोकप रहहिं प्रीति रुख राखे ॥ 3 ॥

सुन रक्खो, ठाकुर गुड़िया सिंह ! लाला पचकौड़ी मल !! मुंशी मक्काबख्श !!!—जे गुरु चरण रेणु शिर धरहीं । ते जनु सकल बिभव बश करहीं ॥ 4 ॥ पर गुरु भी टकादास न हों !

आज कल के राजा म्लेच्छों को मंत्री बनाते हैं और हिन्दी का सस्ता पत्र लेते खिसियाते हैं पर अगले राजेंद्र ब्राह्मणों से ऐसा कहते थे—मोहिं समान अरु भयो न दूजे । सब पायों प्रभु पद रज पूजे ॥ 5 ॥

देशहितैषियों को अपने प्रत्येक अनुष्ठान में यह मन्त्र स्मरणीय है 'इतना मात्र हो जाय'—पुनि न सोच तनु रहौ कि जाऊ । जेहि न होय पाछे पछिताऊ ॥ 6 ॥

और सुनो प्रेमिकगण !—राम पुनीत प्रेम अनुगामी । दूसर पंथ अकिल कै खामी ॥ 7 ॥

जब कोई नया टैक्स लगने को होता है, तब हमारे हाँहजूरी, सतबचनी, म्यूनीसिपल कमिश्नर, पीछे चाहे जो बीतै पर इतना जरूर कह लेंगे—जग मंगल भल काज बिचारा । बेगहि नाथ न लाइय बारा ॥ 8 ॥

भारतोन्नत्ति का मूल यही है—जेहि मनीश अस आयसु दीन्हा । सो जनु काज प्रथम तेहिं कीन्हा ॥ 9 ॥ मुनि मनु, व्यास, पराशरादि ॥

उत्कण्ठा के समय प्रेमप्रमत्त का बिचार—भए बहुत दिन अति अवसेरी । सगुण प्रतीति भेंट प्रिय केरी ॥ 10 ॥

अच्छे लोग सदा इस्का अनुकरण करते हैं—गुरु आगमन सुनत रघुनाथा । हार आय पद नावौ माथा ॥ 11 ॥

प्रेमी का बचन प्रियतम से और खुशामदी का अमीर से—सेवक सदन स्वामि आगमनू । मंगल मूल अमंगल दमनू ॥ 12 ॥

प्रुनस्तदेव–प्रभुता तजि प्रभु कीन सुनेहू। भयो पुनीत आज मम गेहू ॥ 13 ॥

देशी हाकिम अंगरेज मात्र से–आयसु होय सुकरिय गुसांई। सेवक लहै स्वामि सेवकाई ॥ 14 ॥

आज कल के राज्यलोलुप, भाइयों पर पुरश्चरण कराने वाले इस वाक्य को क्या समझेंगे–बिमल बंश यह अनुचित एका। अनुज बिहाय बड़ेहि अभिषेका ॥ 15 ॥

नव्वाबी के लक्ष्मणपुरस्य यवन–तिनहि सुहाय न अवध बचावा। चोरहि चाँदनि रात न भावा ॥ 16 ॥

कोई 2 अक्षरारि अमीर–ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकैं पराइ विभूती ॥ 17 ॥

परैश्वर्य्यलोलुप विदेशी–देखि लाग मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती ॥ 18 ॥

कलजुगही स्त्री बिघरा कराने के बिचार में पति से–उतर न देइसु लेइ उसासू। नारि चरित करि डारै आँसू ॥ 19 ॥

भारतमाता इंग्लैण्ड जननी से–कत सिख देइ हमैं कोउ माई। गाल करब केहि कर बल पाई ॥ 20 ॥

हे प्यारी आर्यजनते !–नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखौ न भूप ! कपट चतुराई ॥ 21 ॥

आर्य्य कुलांगना भगतिन दाई से–पुनि अस कबहुं कहसि घर फोरी। तौ धरि जीभ कढ़ाऊँ तोरी ॥ 22 ॥

सुशिक्षकी का बाक्य शिष्या से–प्रियबादिनी ! सिख दीन्हेउं तोहीं। सपनेहुं तो पर कोप न मोहीं ॥ 23 ॥

मुमुक्षु का वाक्य प्रेमोपदेशक से–सुदिन सुमंगल दायक सोई। तोर कहा फुर जा दिन होई ॥ 24 ॥

मतवाले तो कहा ही करते हैं कि क्या ईश्वर पक्षपाती है, पर प्रत्येक भक्त को विश्वास यही होता है कि–मो पर करहिं सनेह विशेषी ! मैं करि प्रीति परिक्षा देखी ॥ 25 ॥

बाचकधर्म लुप्तोपमा (जैसे चन्द्रवत् सुंदर बदन के बदले चन्द्रबदन) की रीति से कुलस्त्रियों के लिए क्या उत्तम प्रार्थना है !–जो विधि जन्म देइ करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू ॥ 26 ॥

विघ्ननिहत कचढिल्ला सत्यबादी उबाच–एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥ 27 ॥

निराश स्पष्टवक्ता वदति–फोरै जोग कपार अभागा। भलौ कहत दुख रौरेहि लागा ॥ 28 ॥

सुयोग्य सम्पादकों की लेखनी स्वनगर जनता से–कहै झूठ फुर बात बनाई। सो प्रिय तुम्हैं करुई मैं माई ॥ 29 ॥

कलयुगी प्रोहित का बाक्य–हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहित मौन रहब दिन राती ॥ 30 ॥

भारतीय शक्ति गौरंड शक्ति से–करि कुरूप बिधि पर बश कीन्हा। बबा सु लुनिय लहिय जो दीन्हा ॥ 31 ॥

हिन्दुओं का सिद्धांत–कोउ नृप होय हमैं का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥ 32 ॥

सच्चा हितैषी सदा यही कहैगा–जारै जोग सुभाव हमारा। अनभल देखि न जाय तुम्हारा ॥ 33 ॥

पढ़ाने वाली विधरमिनी से सीधी सादी हिन्दुनी इस्त्रील की बातें–सादर पुनि 2 पूँछति ओही।

शवरी गान मृगी जनु मोही ॥ 34 ॥

छँटी कुटनी भोली गँवारिन से—तुम पूछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ ॥ 35 ॥

सुन रक्खो ! दबैल हिंदुओ !—रहे प्रथम अब सो दिन बीते । समय पाय रिपु होंहि पिरीते ॥ भानु कमलकुल पोषन हारा । बिन जल जारि करै सो छारा ॥ 36 ॥

तनक ध्यान दे के—सुनि राखहु प्रिय भारत भाई । 'चतुर कपट नहिं परत लखाई' ॥ 37 ॥

हे भगवान् !—जो भारत अनहित रत होही । 'देहु दैव फिर सो फल ओही' ॥ 38 ॥

हे हिन्दुओ !—तुम नर ह्वै कस भए अजाना । 'हित अनहित निज पशु पहिचाना' ॥ 39 ॥

हे हिन्द के राजाओ ! हम ब्राह्मण लोग—खाइय पहिरिय राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोष हमारे ॥ 40 ॥

सब को बिश्वास चाहिए—जो असत्य कछु कहब बनाई । तौ विधि देइहि हमैं सजाई ॥ 41 ॥

हे आर्य्य सन्तान !—तुम निज कर सब अनरथ ठयऊ । 'तुम कहँ बिपति बीज बिधि बयऊ ॥ 42 ॥

हे परमेश्वर ! कभी हम उरदू से कह सकेंगे—रेखा खैंचि कहौं बल भाखी । भामिनि ! भयू दूध की माखी ॥ 43 ॥

भगवति भारतजननि ! आज यही दिन है कि विदेशियों की—जो सुत सहित करौ सेवकाई । तौ घर रहौ न आन उपाइं ॥ 44 ॥

अविद्या ने बुड्ढे खबीसों को—कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू । नवै न ज्यों फिर उकठा काठू ॥ 45 ॥

कान्यकुब्ज गृहेश्वरी बदति—काह कहौं सखि सूध सुभाऊ । दाहिन बाम न जानौं काऊ ॥ 46 ॥

स्त्री मात्र का सिद्धान्त—नैहर जन्म भरब बरु जाई । जियत न करब सौति सेवकाई ॥ 47 ॥

सच तो यही है !!!—अरि बश दैव जियावै जाही । मरन नीक तेहि जियब न चाही ॥ 48 ॥

नउनी बरिनी इत्यादि हताशिनी कुलांगना से—अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुख सुहाग तुमकहँ दिन दूना ॥ 49 ॥

हिन्दू कैसे ही हों पर हमारा धर्म्म यही कहने का है—जो राउर कछु अनभल ताका । सो पाइहि निज फल परिपाका ॥ 50 ॥

सच्ची हितैषिणी का वक्तव्य और कर्तव्य—जब ते कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि ॥ 51 ॥

भकुई मेहरिया का परमपुरुषार्थ—परौं कूप तब बचन लगि सकौं पूत पति त्यागि । कहसि मोर दुख देखि बड़ कस न करब चित लागि ॥ 52 ॥

पादरियों की पट सानी बानी पर स्वधर्म से अज्ञानी हिन्दू की बुद्धि—लखै न रानि निकट दुख कैसे । चरै हरित तृण बलि पशु जैसे ॥ 53 ॥

सुनो समझ रक्खो !—एहो देशहितैषिगण चहहु जु जीवन लाहु । 'काज सँवारहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु' ॥ 54 ॥

सच्चा समझदार उपदेशक से—तुहिं समहितु न मोर संसारा । बहे जात कहं जयसि अधारा ॥ 55 ॥

क्या सच्चा उपदेश है यदि इस चौपाई को यों पढ़ो—कोप समाज साज सज सोई । राज करत जेहि कुमति बिगोई ।। 56 ।।

इस में किंचित संदेह नहीं—को न कुसंगति पाय नसाई । रहै न नीच मते गरुआई ।। 57 ।।

प्रिय पाठक ! हम तुम तो किस खेत की मूली हैं—सरपति बसै बाहु बल जाके । नरपति रहैं सकल रुख ताके ।। सो सुनि तिय रिस गयो सुखाई । देखहु काम प्रताप बड़ाई ।। 58 ।।

हहः ! 'कंदर्पदर्प दलने बिरला मनुष्याः' !—शूल कुलिश असि अंगवन हारे । ते रतिनाथ कुसुम सर मारे ।। 59 ।।

अ हा हा ! कविता इसे कहते हैं—कुमतिहि कस कुरूपता फाबी । अन अहिवात सूच जनु भावी ।। 60 ।।

कामी की बड़—अनहित तोर प्रिया केहिं कीन्हा । केहिं दुइ गिर केहिं जम चह लीन्हा ।। 61 ।।

खुशामदी का वाक्य चित्त से—कहु केहिं रंकहि करौं नरेशू । कहु केहि नृपहि निकारौं देशू ।। 62 ।।

मिस्टर या मौलाना भार्य्यादास का लेकचर—सकौं तोर अरि अमरहु मारी । कहा कीट बपुरे नर नारी ।। जानसि मोर सुभाव बरोरू ! तव मुख मम दृग चंद चकोरू । प्राणप्रिया सुत सर्बसु मोरे । पुरजन प्रजा मकल वश तोरे ।। जो कछु कहौं कपट करि तोहीं । भामिनि राम शपथ शत मोहीं ।। विहँसि मांगु मन भावति बाता । भूषण माजु मनोहर गाता ।। घरी कुघरी समुझि जिय देखू । बेगि प्रिया परिहरिय कुबेखू ।। 63 ।।

असमर्थता के समय नीतिमान् का धर्म ही है—ऐसी पीर बिहँसि उर गोई । चोरनारि जिमि प्रगट न रोई ।

पुरुष सिंह का लक्षण—जन धन तन की कौन चलाई । 'प्राण जाय पर बचन न जाई' ।। 64 ।।

सच तो योंही है—नहिं असत्य सम पातक पुंजा । गिरि सम होहिं कि कोटिहु गुंजा ।। 65 ।।

कन्या जन्म समये कान्यकुब्ज—माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तन धरि तोइ लाग जनु सोचन ।। 66 ।।

स्त्री जाति के बचन का नमूना—सत्य सराहि कहेउ बर देना । आनेहु लेइहि माँगि चबेना ।। 67 ।।

सच्चे प्रेमी का वाक्य—जियै मीन बरु बारि बिहीना । मणि बिन फणिक जियै दुख दीना । कहौं सुभाव न छल मन माहीं । जीवन मोर राम बिन नाहीं ।। 68 ।।

नवशिक्षितों से बुढ़ऊ बाबा कहते हैं—कहौ करौ किन कोटि उपाया । यहाँ न व्यापिहि राउरि माया ।। 69 ।।

देशहित और स्वार्थ—दुइ कि होहिं इक संग भुआला । हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ।। 70 ।।

सच है—तन तिय तनय धाम धन धरणी । सत्यसंध कहँ तृण सम बरणी ।। 71 ।।

भारतमाता भेड़राज से कहती है—तोर कलंक मोर पछिताऊ । सुएहु मेटि नहिं जाइहि काऊ ।। 72 ।।

इस राम वाक्य को हम तो बेद वाक्य ही कहेंगे—सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।। 73 ।।

यह दृष्टांत भी गोस्वामी जी की निराली तबियत का परिचय देता है—नगर व्यापि गइ बात सु

तीछी । छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी ॥ 74 ॥

सच है !—निज प्रतिबिम्ब मुकुर गहि जाई । जानि न जाय नारि गति भाई ॥ 75 ॥

प्रियतम के जाने की इच्छा पर आज्ञाकारी प्रेमिक—राखि न सकै न कहि सक जाहू । दुहू भाँति उर दारुन दाहू ॥ 76 ॥

सच है ! कुलांगना के लिए—इहि ते अधिक धर्म नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ॥ 77 ॥

इस को वही खूब जानता है जिस पर पड़ी है—प्रिय वियोग सम दुख जग नाहीं ॥ 78 ॥

सच्चा प्रेम वाक्य—प्राणनाथ तुम बिन जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुं कोउ नाहीं ॥ 79 ॥

इस में शक नहीं पर अनुभव सब को नहीं—खग मृग परिजन नगर बन बलकल बिमल दुकूल । नाथ साथ सुर सदन सम पर्णशाल सुखमूल ॥ 80 ॥

प्रतिष्ठित स्त्रियों के आशिर्वाद का क्या अच्छा मुहाविरा है—अचल होहु अहिबात तुम्हारा । जब लग गंग जमुन जल धारा ॥ 81 ॥

सुनो हज़रत ! लार्ड ! और बचे खुचे श्रीमान् !—जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवशि नर्क अधिकारी ॥ 82 ॥

हे जगदीश !—मन क्रम बचन चरण रत होई । कृपा सिंधु परिहरिय कि सोई ॥ 83 ॥

सच ! सच !! सच !!!—पुत्रवती जुवती जग सोई । रघुबर भक्त जासु सुत होई । न तरु बाँझ भलि बादि बियानी । राम बिमुख सुत ते हित हानी ॥ 84 ॥

क्या अच्छा उपदेश है—राग रोष ईर्षा मद मोहू । जनि सपनेहु इन के वश होहू ॥ 85 ॥

सच तो यों है—वृथा बाद महँ बबस निज बितवहिं लघु मति लोग । 'अति विचित्र भगवंत गति को जग जानै जोग ॥ 86 ॥

इस्में क्या सन्देह !—रामचरण पंकज प्रिय जिनहीं । विषय भोग बस करै कि तिनहीं ॥ 87 ॥

हाय ! हाय !! अहह कष्टमपण्डिततता विधे !—जो पै प्रिय वियोग विधि कीन्हा । तौ कस मरन न माँगे दीन्हा ॥ 88 ॥

इस में किसे शक होगा—रामहि केवल प्रेम पियारा । जानि लेहु जो जानन हारा ॥ 89 ॥

जो लोग सिर्फ अन्धेरी मजिस्ट्रेट ही होने पर देश भाइयों को तुच्छ गिनने लगते हैं वे यदि हिन्दू हैं तो यह वाक्य गृहण करें कि—'नीति न तजिय राज पद पाये ।' नित के हेतु न तुम द्वै आये ॥ 90 ॥

बाल विधवाओं का—सुनि विलाप दुखहू दुख लागा । धीरजहू कर धीरज भागा । 91 ॥

विपत्ति पड़ने पर—धीरज धरिए तौ पाइय पारू । नाहित बूड़िहि सब परिवारू ॥ 92 ॥

जो प्रेमतत्त्व के विरुद्ध है पर देशोद्धार चाहता है उस से कहो—पेड़ काटि ते पल्लव सीचा । मीन जियन हित वारि उलीचा ॥ 93 ॥

कुछ झूठ नहीं—बाद बिवादी बाद महँ पटकि मरहिं जिन माथ । 'हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ' ॥ 94 ॥

सच है—सब विधि सोचिय पर अपकारी । निज तन पोषक निरदय भारी ॥ सोचनीय सब ही विधि सोई । जो न छाँड़ि छल हरि जन होई ॥ 95 ॥

धर्म ही है—दुखित दोख गुण गनहिं न साधू ॥ 96 ॥

मनस्वीकार्यार्थी का विचार—डर न मोहि जग कहिहि कि पोचू । परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥ 97 ॥

नौकरों के लिए उपदेश—करै स्वामि हित सेवक सोई । दूषण कोटि देइ किन कोई ॥ 98 ॥

बहुधा— 'नहिं विषबेलि अमिय फल फरहीं ।' सुकरम नीच कुलज कब करहीं ॥ 99 ॥

सत्य है !—साधु समाज न जाकर लेखा । राम भक्त महँ जासु न रेखा । जनमि जियत जग सो महि भारू । जननी जोबन बिटप कुठारू ॥ 100 ॥

हाय भारत में वे बीर फिर जन्मेंगे ? जो—जियत पाँय नहिं पाछे धरहीं । रुण्ड मुण्ड मय मेदिनि करहीं ॥ 101 ॥

यह वाक्य प्रेमी तो सच ही मानेंगे पर बकुलाभक्त क्या ही बंटाधार कर रहे हैं—राम 2 कहि जे जसुहाहीं । तिनहिं न पाप पुंज समुहाहीं ॥ 102 ॥

सच है— 'आरत काह न करै कुकर्मू ।' दुख महँ सूझ न धर्म अधर्मू ॥ 103 ॥

संसारी लोगों को अवश्य मन्तव्य है कि—कर्म प्रधान विश्व करि राखा । जो जस करै सो तस फल चाखा ॥ 104 ॥

बिन सोचे कुछ न करना चाहिये—सहसा करि पाछे पछिताहीं । कहहिं वेदबुध ते बुध नाहीं ॥ 105 ॥

निश्चय—कविहि अर्थ आखर बल साँचा । अनुहरि ताल गतिहि नट नाचा ॥ 106 ॥

अहाहा !—क्या प्रेम समाज का आंतरिक छायाचित्र है !!—कोउ कछु कहै न कोउ कछु पूँछा । प्रेम भरा मन निज गति छूँछा ॥ 107 ॥

कान्यकुब्जकन्या, औ ब्रिटिश साशिता नागरी—परौबधिक बश मनहुं मराली । काह कीन्ह करतार कुचाली ॥ 108 ॥

बड़ों को कोई वस्तु भेंट कर के वक्तव्य—देब काह हम तुमहिं गुसाईं । ईंधन पात किरात मिताई ॥ 109 ॥

बाजे 2 अढ़तिया—पाप करत निशि बासर जाहीं । नहिं पट कटि नहिं पेट अघाहीं ॥ 110 ॥

हमारा दृढ़ सिद्धांत—करि विचार जिय देखहु नीके । राम रजाय सीस सबही के ॥ 111 ॥

क्या अच्छी नीति है—बहुत लोभ नित नीक न ताता 'अर्ध तजहिं बुध सर्वसु जाता ॥ 112 ॥

सदा से अनुभूत वाक्य—भारत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहि आप न दाऊ ॥ 113 ॥

मतवादी कुछ कहैं पर भक्तों का अनुभव है—मैं जानौं निज नाथ सुभाऊ । अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥ 114 ॥

मत पक्ष में भलाई की आशा ?—फरे कि कोदव बालि सुशाली । मुक्का श्रवै कि संबुक ताली ॥ 115 ॥

हे प्रेमस्वरूप परमात्मन्—मिटहिं पाप परपंच सब अखिल अमंगल भार । लोक सुजस परलोक सुख सुमिरत नाम तुम्हार ॥ 116 ॥

सर्वोपरि प्रार्थना—जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई । करुणासागर ! कीजिय सोई ॥ 117 ॥

हम तो गोस्वामी जी के इस वाक्य को महा बेद ही मानैंगे—सोह न राम प्रेम बिन ज्ञाना । कर्णधार बिन जिमि जलजाना ॥ 118 ॥

हमारे प्रेम देव की महिमा ऐसी ही है—कहत सारदहु कै मति हीचे । सागर सीप कि जाहिं उलीचे ॥ 119 ॥

निस्संदेह ! यों तो सभी भले हैं पर—कसे कनक, मणि पारिख पाए । पुरुष परखिए समय सुभाए ॥ 120 ॥

इस्में क्या संदेह ! हमारे—प्रभु अपने नीचहु आदरहीं । अग्नि धम गिरि शिर तृण धरहीं ॥ 121 ॥

और सुनो—योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू । जहाँ न राम प्रेम परधानू ॥ 122 ।

सदा, सर्वत्र, सब की—शोक कनक लोचन मति छीनी । हरी विमल गुण गण जग जीनी ॥ 123 ॥

परमोत्तम वाक्य—मातु पिता गुरु स्वामि निदेशू । सकल धर्म धरणीधर सेशू ॥ 124 ॥

अनुभूत वाक्य !—होहिं कुठावं सुबंधु ! सुहाए । ओड़िय हाथ असिहु के धाए ॥ 125 ॥

क्या अच्छी नीति है—सुखिया सुख मो चाहिए खान पान को एक । पालै पोषै सकल अंग तुलसी सहित बिबेक ॥ 126 ॥

॥ इत्ययोध्या कांड बिनोदः ॥

अथारण्यम्

इस रस के तो गोस्वामी समुद्र ही हैं, अप्रेमिक की दशा दिखाते हैं—सब जग ताहि अनल ते ताता । जो रघुवीर बिमुख सुनु भ्राता ॥ 1 ॥

परमोत्तम नीति—धीरज धरम मित्र अरु नारी । आपत काल परखिए चारी ॥ 2 ॥

कुलकामिनि गण ! सुन रक्खो !—एकै धर्म एक ब्रत नेमा । काय बचन मन पति पद प्रेमा । पति बंचक पर पति रति करई । रौरव नर्क कल्प शत परई ॥ बिन श्रम नारि परम गति लहई । पतिब्रत धर्म छांड़ि छल गहई ॥ 3 ॥

निस्संदेह ! अनन्यता परम धर्म है—एक वानि करुणानिधान की । सो प्रिय जाके गति न आन की ॥ 4 ॥

ईश्वर की आज्ञा है तो यह है—गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा । सब मो कहं जानै दृढ़ सेवा ॥ 5 ॥

अंगरेजी स्वयम्बरे मेम साहिब उबाच—तुम सम पुरुष न मम सम नारी । यह संयोग बिधि रचा बिचारी ॥ 6 ॥

सच है ! सच है !!—सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सु भक्ति व्यभिचारी ॥ लोभी जस चह चाह गुमानी । नभ दुहि दुध चहते ते प्रानी ॥ 7 ॥

राजधर्म—रन चढ़ि करिय कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥ 8 ॥

भला चाहौ तौ—रिपु रुज पावक पाप, प्रभु अहि गनिय न छोट करि ॥ 9 ॥

हाय भारत भूमि !—चाहिय जहाँ रिषिन कर वासा । तहाँ निसाचर करहिं निवासा !!! ॥ 10 ॥

बेशक ! यह तो सज्जनों ही का धर्म है !—नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥ 11 ॥

नीति !! नीति !—सुनि मन गुनि राखहु मतिमाना 'नवहि बिरोधे नहिं' कल्याना ॥ शस्त्री 1 मर्मी 2 प्रभु 3 शठ 4 धनी 5 । बैद 6 बंदि 7 कबि 8 मानसगुनी 9, 12

बेशक !—पर हित बसु जिन के मन माहीं । तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥ 13 ॥

हे संसारी भाइयो !—लखहु लिखा बहुग्रंथनि माहीं । 'युवती शस्त्र नृपति वश नाहीं ॥ 14 ॥

ईश्वर कहता है—मोरे प्रौढ़ तनय सम ज्ञानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥ 15 ॥

सदुपदेश—दीपसिखा सम जुवति जन मन मति होहि पतंग । भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥ 16 ॥

॥ इत्यारण्य कांड बिनोदः ॥

अथ किष्किन्धा

क्या अच्छा प्रगुपासना वाक्य है !—नाथ जीव तब माया मोहा । सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा ।। सेवक सुत पितृ मातु भरोसे । रहै अगोच बनै प्रभु पोसे ।। 1 ।।

सच है ! सच है !! सच है !!!—जेन मित्र दुख होहिं दुखारी । तिन्हैं विलोकत पातक भारी । निज दुख गिरि सम रज कै जाना । मित्रक दुख रज मेरु समाना ।। जिन के असि मति सहज न आई । ते शठ हठि कत करत मिताई ।। 2 ।।

सच्चे मित्र का लक्षण—कुपथ निवारि सुपंथ चलावा । गुण प्रगटै औगुणहि दुरावा ।। देत लेत मन शंक न धरहीं । बल अनुमान सदा हित करहीं ।। बिपति काल कर सब बिधि नेहा । श्रुति कह सत्य मित्र गुण एहा ।। 3 ।।

मित्राभास का लक्षण—आगे कह मृदु बात बनाई । पाछे अनहित मन कुटिलाई ।। 4 ।।

निस्संदेह !—सेवक सठनृप कृपिण कुनारी । कपटी मित्र शूल सम चारी ।। 5 ।।

सच्चे भक्त का प्रण—सुख संपति परिवार बड़ाई । सब परिहरि करिहौं सेवकाई ।। 6 ।।

सब के करने योग्य प्रार्थना—अब प्रभु ! कृपा करौ इहि भाँती । सब तजि भजन करौं दिन राती ।। 7 ।।

क्या ही सच्च कहता है—अनुज बधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ ये कन्या सम चारी ।। इन्हैं कुदृष्टि बिलोकै जोई । ताहि बधे कछु पाप न होई ।। 8 ।।

इसमें क्या संदेह ! मतवाले न मानें तो क्या होता है—उमा दारु जोषित की जाईं । सबहि नचावत राम गुसाईं ।।

एक दृष्टि से ठीक ही है—सुर नर मुनि सब की यह रीती । स्वारथ लागि करैं सब प्रीती ।। 10 ।।

याद रखने लायक बातें—दामिनि दमकि दुरहिं घन माहीं । खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं ।। वरषहिं जलद भूमि नियराये । यथा नवहिं बृध विद्या पाये ।। बृंद अघात सहैं गिरि कैसे । खल के वचन संत सह जैसे ।। छुद्र नदी भरि चलि उतराई । जस थोरे धन खल बौराई ।। महा वृष्टि भए फटि कियारी । जिमि स्वतंत्र होई बिगरै नारी । कबहु दिवस महं निविड़ तम कबहुक प्रगट पतंग । उपजै बिनसै ज्ञान जिमि पाय सुसंग कुसंग ।। सुखी मीन जहं नीर अगाधा । जिमि हरि शरण न एको बाधा । चक्रवाक मन दुख निशि पेखी । जिमि दुरजन पर सम्पति देखी ।।

।। इति किष्किन्धा कांड बिनोदः ।।

अथ सुन्दरम्

धन्य सत्संग—सात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिय तुला इक अंग । तुलै न ताहि समस्त मिलि जो सुख लव सतसंग ॥ 1 ॥

बेशक !—साधु ते होय न कारज हानी ॥ 2 ॥

इस समय के साधुप्रकृति—जिमि दशनन महं जीभ बिचारी ॥ 3 ॥

यह भी अनुभूत वाक्य है—बिन हरि कृपा मिलैं नहिं संता ॥ 4 ॥

हे प्रभो ! अथवा ऐ जानेमन् !—मैं सबही बिधि किंकर तोरा । 'एक बार बिलोकु मम ओरा' ॥ 5 ॥

यह तत्त्व प्रेमी ही जानते हैं—कहते नहिं कछु दुख घटि होई । काहि कहीं यह जान न कोई ॥ तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा । जानत प्रिया एक मन मोरा ॥ सो मन रहत सदा तुहि पाहीं । जानु प्रीति रस इतने हि माहीं ॥ 6 ॥

स्पष्टवक्ता तो सभी को होना चाहिये विशेषतः—सचिव वैद्य गुरु तीनि जो प्रिय बोलहिं भय आश । राज देह अरु धर्म को होय बेगिही नाश ॥ 7 ॥

सब जगतभाई सुन रक्खो !—जो आपन चाहौ कल्याना । सुजस सुमति शुभगति सुख नाना ॥ तौ पर नारि लिलार गुसाईं । तजौ चौथ चंदा की नाईं । चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्टै नहिं सोई ॥ गुणसागर नागर नर जोऊ । अल्प लोभ भल कहै न कोऊ ॥ 8 ॥

बेशक—जहाँ सुमति तहं सम्पति नाना । जहाँ कुमति तहं बिपति निदाना ॥ 9 ॥

सच तो यही है—उमा संत कै यहै बड़ाई । मंद करत जो करै भलाई ॥ 10 ॥

हाय महाराज हम भी ! तुम्हारे पीछे भारत में इसके समझने वाले न रहे—शरणागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि । ते नर पामर पाप मय तिनहिं बिलोकत हानि ॥ 11 ॥

ईश्वरो वदति—जो सभीत आवा शरणाई । रखिहौं ताहि प्राण की नाई ॥ 12 ॥

इसमें संदेह नहीं ! सहृदयों का सिद्धांत ही है—बरु भल बास नर्क कर ताता । दुष्ट संग जिन देहु विधाता ॥ 13 ॥

पुरुषार्थियों का सिद्धांत—कादर मन कर एक अधारा । दैव 2 आलसी पुकारा ॥ 14 ॥

सच्ची नीति—शठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती । सहज कृपण सन सुंदर नीती ॥ ममता रत सन ज्ञान कहानी । अति लोभी सन बिरति बखानी ॥ क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा । असर बीज बए फल यथा ॥ 15 ॥

फिर भी—काटे पै कदली फलै कोटि जतन कोउ सीच । बिनय न मान खगेश ! सुनु डाटेहि पै नव नीच ॥ 16 ॥

पुनश्च—ढोल गँवार शूद्र पशु नारी (विद्या विहीना नारी) । ये सब ताड़न के अधिकारी ॥ 17 ॥

॥ इति सुन्दर कांड बिनोदः ॥

अथ लंका

युद्धकांड है न ! उस्का मंगलाचरण भी क्या सच्ची स्तुति द्वारा उद्‌बोधन करता है—लव निमेष परमाण जुग वर्ष कल्प शर चंड । भजसि न नर तेहि राम कहँ काल जासु को दंड ॥ 1 ॥

अनुभूत बाक्य—बचन परम हित सुनत कठोरे । कहैं सुनैं सो नर प्रभु थोरे ॥ 2 ॥

पुनरपि—नारि सुभाव सत्य कवि कहहीं । अवगुण आठ सदा उर रहहीं ॥ साहस 1 अनृत 2 चपलता 3 माया 4 भय 5 अविवेक 6 असोच 7 अदाया 8 ॥ 3 ॥

फिर भी—फूलै फरै न बेत जदपि सुधा बरषै जलद । मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलै विरंचि सम ॥ 4 ॥

पुनश्च—लोल 1 कामबश 2 कृपण 3 विमूढा 4 । अति दरिद्र 5 अजसी 6 अति बूढ़ा 7 ॥ सदा रोग बश 8 संतत क्रोधी 9 । रामबिमुख 10 श्रुति संत बिराधी 11 ॥ तन पोषक 12 निंदक 13 अधखानी 14 । अनजीवत सम चौदह प्रानी ॥ 5 ॥

और भी—काल दंड गहि काहु न मारा । हरे धर्म बल बुड़ि बिचारा ॥ 6 ॥

क्या अधम मध्यम उत्तम पुरुषों की पहिचान है—इक कहहिं (अधम) कहहिं करहिं अपर (मध्यम) इक करहिं (उत्तम) कहत न बागही (बचन से) ॥ 7 ॥

क्या सच्चा दृष्टांत है—काटत बढ़हिं सीस समुदाई । (रावन के) जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई ॥ 8 ॥

सच है ! मृत्यु ऐसिही है ! बैभवाभिमान व्यर्थ—भुज बल जीति काल जम साईं ! आज सुपरेउ अनाथ कि नाईं ॥ 9 ॥

प्रत्येक दुराचारी अपने आचरण से आप ही नाश होता है—विश्वद्रोह रत खल अति कामी । निज अध गयो कुमारग गामी ॥ 10 ॥

मुक्ति के लिए मतबादी लड़े मरते हैं पर—सगुण उपासक (समझदार भक्त अथवा ईश्वर से जीवित संबन्ध रखने वाले) मुक्ति न लेहीं (जो कोई दे भी) । तिन कहँ राम भक्ति निज देहीं ॥ 11 ॥

॥ इति लंका कांड बिनोदः ॥

अथोत्तरम्

हे मतवाले भाइयो ! अपने धर्म कर्म का अभिमान छोड़ो ! यदि सच्ची शांति चाहते हो तो केवल ऐसा विश्वास करो !!! जो करनी समुझैं प्रभु मोरी । नहिं निस्तार कल्पशत कोरी ॥ जन अवगुण प्रभु मान न काऊ । दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ ॥ 1 ॥

और हितकारी कामों में चाहे नहीं भी ! पर मालिन की आज्ञा पाते ही हमारे देश की स्त्रियाँ चरी आदि में—जो जैसे तैसेहि उठि धावहिं । बाल बृद्ध कोउ संग न लावहिं ॥ 2 ॥

धन्य गोस्वामी जी ! बेद के मुख हमारा सिद्धांत कहा ही छोड़ा ! हम मनसा बाचा कहैंगे सत्य है, सत्य है, सत्य है !!!—जे ज्ञानमान बिमत्त तव भयहरणि भक्ति न आदरी । ते पाय सुर दुरलभ पदादपि परत हम देखत हरी । विश्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे ह्वै रहे । जपि नाम तव बिन श्रम तरहिं भवनाथ ! राम नामामहे ॥ 3 ॥

सच है !—सम मान निरादर आदर ही । सोइ संत सुखौ बिचरंत मही ॥ 4 ॥

क्या अच्छी प्रार्थना है—तुम सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो ! दीन दयाकर ! आरत बन्धो ! ॥ अशरण शरण ! विरद संभारी । मोहिं जनि तजहु भक्त भयहारी ! ॥ मोरे प्रभु तुम गुरु पितु माता । जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता ॥ बालक अबुध ज्ञान बल हीना । राखहु शरण जानि जन दीना ॥ 5 ॥

यह तत्त्व बेशक प्रेमी ही जानते हैं—कुलिशहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि । चित्त खगेश रघुनाथ कर समुझि परै कहु काहि ॥ 6 ॥

सुन रक्खो !—परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर पीड़ा सम नहिं अधमाई ॥ 7 ॥

हर सभा के सभापति को अकृतृम भाव से यों वक्तव्य है—जो अनीति कछु भाखौं भाई । तौ मुँहि बरजेहु भय बिसराई ॥ 8 ॥

सच है ! बिना कष्ट किसी सुख का मजा नहीं !—जो अति आतप व्याकुल होई । तरु छाया सुख जानै सोई ॥ 9 ॥

क्या ही सच कहा है ! निर्दोष तो एक वही है !—कीट मनोरथ दारु शरीरा । जेहि न लाग घुन को अस बीरा ॥ 10 ॥

यहाँ भी !—भक्ति हीन सब गुण सुख कैसे । लवण बिना बहु व्यंजन जैसे ॥ भक्ति हीन विरंचि किन होई । सब जीवन महँ अप्रिय सोई ॥ 11 ॥

क्या ही ठीक इस समय का चित्र है—सोइ सयान जो परधन हारी । जो कर दंभ सो बड़ आचारी । जो कछु झूठ मसखरी जाना । कलिजुग सोइ गुणवंत बखाना ॥ 12 ॥

याद रक्खो कानाकाना टू करने वालो !—हरै शिष्य धन शोक न हरई । सो गुरु घोर नर्क कहँ परई ॥ 13 ॥

सच है—जेहि ते नीच बड़ाई पावा ! सो प्रथमहि हठि ताहि नशावा ॥ 14 ॥

संसार में श्रमी के लिए असंभव कुछ नहीं है—अतिशय रगर करै जो कोई । अनल प्रगट चंदन ते होई ॥ 15 ॥

आत्मा को सच्ची शान्ति केवल सरलता के साथ तदीय होने से ही प्राप्त होती है, बहुत विचार करने से भ्रम बढ़ता ही जाएगा यद्यपि हृदयगृंथि छुटने के लिए—श्रुति पुराण बहु कहे उपाई । छूट न अधिक 2 अरुझाई ॥ 16 ॥

महारोग ! जिनके लिए प्रेमचन्द्रोदय के बिना औषधि ही नहीं—काम बात कफ लोभ अपारा । क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥ प्रीति करैं जब तीनौ भाई । उपजै सन्यपात दुखदाई ॥ 17 ॥

पर बाहरी महौषधि ! जिस का सेवन करते ही उक्त रोग भी शरीर का शरीरत्व सम्पादन करते हैं, गोस्वामी जी के इस अन्तिम वाक्य को कौन सहृदय अपनी जिह्वा का अमृत एवं अन्तःकरण का भूषण न समझेगा !—कामिहि नारि पियारि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम । तैसे ह्वै कब लागिहौ तुलसी के मन राम ॥ 18 ॥

इस मानस बिनोद की इति और अथ तो हो नहीं सक्ती पर इन थोड़े से पृष्ठों के निहोरे नेति ! नेति !! नेति !!!

श्रीरामायणतत्त्व ।
देवनागरी भाषा लँगड़ी धुन ।
लावनी ।

श्रवन मनन अनुकरण किये से सहृदय अति सुख पाते हैं ।
रामचन्द्र के, मनोहर चरित किसे नहिं भाते हैं ॥
बाल्यावस्था ही से वुह सौहार्द शुड़ दिखलाया है ।
खेलों में भी, संगियों का उत्साह बढ़ाया है ॥
कौशिक रिषि से शस्त्र शास्त्र ऐसा प्रभुवर ने पाया है ।
ताड़कादि को, बिना श्रम ही के मार गिराया है ॥
पाप शाप सन्ताप अहिल्या का सहज ही मिटाया है ।
जनक नगर में, नाथ का लोकोत्तर यश छाया है ॥ तोड़ा ॥
जिस पिनाक को बड़े 2 नहिं बीर भी सके उठा ।
छूते ही श्रीकर के मानों टूटा रक्खा था ॥
परशुराम ने दिखलाई क्रोधागिन की जब ज्वाला ।
श्रीमुख ने शीतल बाक्यों से किया उन्हें ठंढा ॥ उड़ान ॥
आज तलक सत्कवि उस पाणिग्रहण के मंगल गाते हैं ।
रामचंद्र० ॥ 1 ॥

राजतिलक से अधिक सुखद प्रभुजी ने पिता बचन माना ।
मोह छोड़ के, बड़े आनन्द से बन जाना ठाना ॥
श्री सीता ने पति सेवा हित घर से बन उत्तम जाना ।
लक्ष्मण जी को, बिना भाई क्या भाते सुख नाना ॥
महाराज दसरथ जी ने भी प्रेम का निबाहा बाना ।
प्रिय बियोग में, प्राण देते शंका ही क्या लाना ॥
भाई होंगे कहीं भरत के समान क्या कोई ।
गद्दी भातृ स्नेह के आगे निरी तुच्छ समझी ॥
माता तक स्वार्थिनी समझ कर परित्याग कर दी ।
चित्रकूट में श्री रघुबर से मिले तभी कलकी ॥
सदाचरण रत हैं वुह स्वार्थपरता यों दूर बहाते हैं ।
रामचंद्र के० ॥ 2 ॥

दंडक बन पवित्र करके फिर शोभित पंचबटी की है ।
निज भुज बल से, अखिल मुनि गण को निरभयता दी है ॥
व्यभिचारिणी समझकर कर दी सूर्पनखा कुरूपिणी है ।
उसके सहायक, खरादिक की सेना संहारी है ॥
हेमहरिण के पीछे जाकर बस यह बात दिखाई है ।
खाय न धोखा, जगत में क्या कोई ऐसा भी है ॥
जब रावण ने छल करके सीता जी को हर लिया ।
रोए क्या ! सहृदयता का उपदेश राम ने दिया ॥
जटायु का सब दुःख मिटा ऐसा आस्वासन किया ।
तुष्ट हुआ जीवन से वुह अनुरोध से भी नहिं जिया ॥
शवरी से यों मिले कि हाँ ! प्रभु नीच को भी अपनाते हैं ।
रामचंद्र के मनोहर० ॥ 3 ॥

भाई के हाथों दुःखित सुग्रीव को सुन पाया प्रभु ने ।
मित्र बनाया, उसे सब प्रकार अपनाया प्रभु ने ॥
बन्धु व धूरत बालि को छिपकर मार ही गिराया प्रभु ने ।
मित्र कार्य्य में सब है कर्तव्य यह दिखलाया प्रभु ने ॥
जग अनित्य है मरैंगे सब तारा को समझाया प्रभु ने ।
किष्किंधा का, नृपति निज मित्र को ठहराया प्रभु ने ॥
राजश्री में जब देखा उन्मत्त तो धमकाया ।
कभी न भूलो काम मित्र का सविधि यह समझाया ॥
इधर उधर फिर बड़े बीर बानरों को भिजवाया ।
श्री सीता देवी का लगाओ पता यह बतलाया ॥
सच है सर्बप्रिय पुरुषों के बनचर तक काम में आते हैं ।
रामचंद्र के मनोहर रचित० ॥ 4 ॥

बीरशिरोमणि पवन पुत्र की सकै है कौन प्रशंसा कर ।
दुःख दशा में, भि जो थे सुकंठ के हित में तत्पर ॥
गए वुह लंका में निर्भय मारे अनेक अधमय निश्चर ।
पुष्प वाटिका, उजाड़ी रावण की और फूँके घर ॥
समाचार श्री जनकनंदिनी के लाए कपिराज नगर ।
देखा बुद्धि बल, बहुत संतुष्ट हुए श्रीयुत रघुबर ॥
लेकर कपिसेना प्रभु ने की शत्रु पर चढ़ाई ।
क्षार सिंधु के निकट छावनी आकर के छाई ॥
आके राम से मिले विभीषण दशमुख के भाई ।
अभय दान पाया लंकापति की पदवी पाई ॥

अच्छों को अच्छे 2 संयोग सदा मिल जाते हैं ।
रामचंद्र के मनोहर रचित किसे० ॥ 5 ॥

सेतु बाँधकर समुद्र में निज शिल्प कुशलता दिखलाकर ।
अति दृढ़ता से, शत्रु का कठिन दुर्ग घेरा जाकर ॥
कुंभकरण रावणादि राक्षस थे जो दुष्टता के आकर ।
साधु द्रेषी, पर स्त्री गामी महा अकरुणाकर ॥
प्रभु ने सबका नाश कर दिया अस्त्र शस्त्र वहु बर्षा कर ।
किया विभीषण, वहाँ का राजा आश्रित अपनाकर ॥
निष्कलंक श्री जनकसुता को देखा सभी प्रकार ।
था ही उनका हृदय प्रेम पातिब्रत का आगार ॥
ग्रहण किया श्री जी को सुर गण बोले जै जै कार ।
हो के पुष्पकारूढ़ अवध यात्रा का किया बिचार ॥
सदा बिजय है उन्हें जो प्रभु के गुण गण ध्यान में लाते हैं ।
रामचंद्र के मनोहर चरित किसे नहि० ॥ 6 ॥

राम अयोध्या में आए तब दूर सभी के कलेश हुए ।
बियोग के जो, हृदय में दुःख थे वुह निसेष हुए ॥
सिंहासन पर शोभित श्री सीतापति राम नरेश हुए ।
विद्या वैभव, धर्म, धन प्रेम पूर्ण सब देश हुए ॥
सज्जन सुखद नीति पूरित सब श्रीयुत के आदेश हुए ।
जिनके द्वारा, आर्य्य कुल को सदैव उपदेश हुए ॥
राम राज्य का भारत में अद्यापि है विदित महत्त्व ।
रामचंद्र से सब रखते हैं आज भी अपना स्वत्व ॥
करौ राम अनुसरण सुफल होगा तभी मनुष्यत्व ।
तब समझोगे परमानन्द निधान प्रेम का तत्त्व ॥
प्रतापनरायण बचनों में प्रेमामृत बर्षाते हैं ।
रामचंद्र के मनोहर चरित किसे नहि भाते हैं ॥ 7 ॥

कुछ पत्र

ओ३म्
श्री बाबू राधाकृष्ण दास समीपेषु

प्रिय,

यथोचित प्रणाम के उपरान्त सविनय निवेदन यह है कि यहां कुशल है परमेश्वर सदैव आपको कुशल से रखे मैंने यहां का हाल केवल आपको लिख भेजा था छपा दीजिए यह आपकी कृपा है। महाशय कवि वचन सुधा जब से हमारे भारतेन्दु ने उसमें लिखना छोड़ दिया तब से मेरे मित्रों में किसी के पास नहीं आती यदि कुछ छापिए तो एक प्रति अदश्य भेजियेगा और उसके दाम भी लिखिएगा। यदि आप वा श्री युत बाबू हरिश्चन्द्र महाशय ने उसमें लिखना आरम्भ कर दिया हो तो मेरी इच्छा है कि मंगाया करें। आपकी आज्ञानुसार पं० देवकीनन्दन जी को पत्र लिखा है देखिए क्या लिखते हैं 'रणधीर' और प्रेम मोहिनी की एक प्रति है जब खेलने का विचार होगा तब और भी मंगा लूंगा।

हिसाब अपना मैं न भेज सका तो लिखएगा कि दो प्रति भारत दुर्दशा और एक सत्य हरिश्चन्द्र के क्या दाम मुझे भेजना चाहिए। और कब तक मिलेगी। मेरे लायक काम हो तो अवश्य आज्ञा कीजिएगा।

केदारनाथ और सभासदों को प्रणाम।

आपका

प्रतापनारायण

मिश्र जी को लिखा गया पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय का पत्र

श्री युत देश हितैषी भाषाचार्य, द्विजवंश भूषण श्री पं० प्रतापनारायण मिश्रजी महोदय, प्रणाम !

मैंने दो सप्ताह के समीप होता है कि एक निवेदन पत्र इस आशय का भवदीय समीप प्रेषण किया था, कि आपका ब्राह्मण नामक अनुपम पत्र प्राप्त हुआ, साथ ही एक रौप्य मुद्रा प्रदान किया, "आपका अनुपम पत्र चतुर्थ खण्ड की 4 संख्या से मेरे निकट आता है अतएव प्रार्थी हूं कि आप चतुर्थ खण्ड की प्रथम प्रकाशित 3 संस्था निजकृत प्रेम पुष्पांजलि नामक ग्रन्थ मेरे समीप भेज दीजिये मैं मूल्य शीघ्र भेजूंगा" किन्तु आश्चर्य है कि आपने अब तक कृपा नहीं की, आशा है शीघ्र कृपा कीजिएगा, अस्तु आज यह प्रेरित पत्र मैं भवदीय समीप भेजता हूं मैंने इसकी दो बार सारसुधा निधि सम्पादक एक-एक बार भारत जीवन व आर्य्यावर्त के सम्पादक समीप भेजा किन्तु परम आश्चर्य है उन लोगों ने अपने-अपने पत्रों में

स्थान न दिया अब आशक्य होकर आपको क्लेश दिया है आशा है आप मेरी काम्ना को अवश्य पूर्ण कीजिएगा । क्योंकि आप भारतेन्दु जी के परम स्नेही व विख्यात निरपेक्ष हैं । अलम्

आपका कृपापात्र

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

दिनांक : 13/5/88 निजामाबाद, आजमगढ़

श्रीधर पाठक को लिखा गया पत्र

प्रियवरेषु,

हुजूर का प्रसाद शिरोधार्य है इसका क्या कहना है यह तो अपना धर्मग्रन्थ ठहरा, ब्राह्मण के साथ बांटना चाहिए तो दो सौ प्रति भेज दीजिए श्री पं० राम प्रसाद त्रिपाठी महोदय की रुचि के अनुसार और श्री ह०चं० अष्ठक के आनन्द में मैं तो अब ख० हि० का झगड़ा नहीं किया चाहता रितु संहार विषयक लिखा लिखाया फाड़ डाला यदि आप लड़ना चाहें तो खैर ! नहीं तो कौन बैठे बिठाए झगड़ा ले ।

मेरे योग्य आज्ञा ?

भवदीय

Repld **प्रताप मिश्र**

12/7/88 कानपुर

पं० प्रतापनारायण मिश्र की 'विल'

पं० प्रतापनारायण जी ने दो विवाह किये थे, पर वे निःसंतान ही रहे । उनकी दूसरी पत्नी उनके मरने के बाद कई वर्षों तक जीवित रहीं । मिश्र जी का स्वास्थ्य सदा खराब रहा । एक आध बार वे इतने बीमार हो गए कि उनके जीवन की आशा तक न रही थी । अन्त में अपनी उम्र के 38वें वर्ष जब उनका स्वास्थ्य फिर अधिक गिर गया तो उन्होंने अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति के सम्बन्ध में एक 'विल' लिखवाकर उसे 21 जून 1894 को कानपुर के सब-रजिस्ट्रार के यहां रजिस्टर करवाया (यह विल उर्दू में लिखी गई थी और उसके मजमून के लेखक कुरसवां (कानपुर) के मुंशी रामसहाय निगम थे । (ये मुंशी जी सन् 1946 में 102 वर्ष की उम्र में परलोक सिधारे ।) इस 'विल' की कापी हमें अभी तक मिल नहीं सकी । पर इतना ज्ञात हुआ है कि इसके द्वारा मिश्र जी ने अपनी द्वितीय पत्नी को अपनी समस्त चल और अचल सम्पत्ति का उत्तराधिकारी स्वीकार किया और उन्हें इस बात का पूर्ण अधिकार दिया कि वे उसे जिस तरह चाहे बेचें, या दान करें या रक्खें । पंडित जी के पास नौघड़े में 3-4 मकान थे । उन सबकी स्वामिनी उन्हीं की पत्नी उनके निधन के उपरांत हुई । 'विल' की रजिस्ट्री होने के 15 दिन बाद ही, अर्थात् 6 जुलाई 1894 ई० को पंडित प्रतापनारायण का स्वर्गारोहण हुआ । उनकी विधवा पत्नी ने इन मकानों में से एक शिवाला अपने दिवंगत पति की पुण्य स्मृति में संवत् 1962 में बनवाया । इसकी बाहरी दीवाल पर गत वर्ष (सं० 1946 ई०) उनकी जन्मतिथि के अवसर पर हमारी "प्रतापनारायण स्मारक समिति" ने एक संगमरमर की पट्टी लगवा दी है, जिसमें मिश्र जी के स्मारक की निर्माण-तिथि अंकित् है ।

पं० प्रतापनारायण की विधवा पत्नी और मिश्र जी के भाई के लड़के के बीच उनकी 'विल' के बावत कोई 20 वर्ष हुए एक मुकदमा कानपुर की दीवानी अदालत में चला। विधवा की ओर से स्व० पं० आयोध्या नाथ तिवारी और भतीजों की ओर से बाबू सिद्धेश्वर बनर्जी वकील थे। इस मुकदमे में विजय श्रीमती जी की ही हुई और 'विल' नियमित करार दी गई।

बालमुकुन्द गुप्त जी को कानपुर आने के लिए आमंत्रण[1]

कलकत्ता की ओर आते समय गुप्तजी उन्हें अपने श्रद्धेय पं० प्रतापनारायण मिश्र जी से मिलने के लिए ही कानपुर ठहरे थे। घर से रवाना होने के पहले उन्हें मिश्र जी का मिलने की उत्सुकता से भरा हुआ पत्र प्राप्त हो चुका था। उसमें लिखा है।

प्रियवरेषु,

अहोभाग्य ! कानपुर जुरूर आइए मुहल्ला जनरल गंज नौघरा है Generalganj Naughra... मैं आठ महीने से बीमार हूँ, अब तविअत कुछ अच्छी है पर ताकत का नाम नहीं है ! ब्राह्मण के मिलने का ब्यौरा खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर के मैनेजर साहब से पूछिए या रास्ते में तो हई, पूछ लीजिएगा।

जरूर आइए ! अब मिलने को जी बहुत उछलने लगा !! जरूर एक बार मिल लो !!!

भवदीय

प्रतापनारायण मिश्र

जनरल गंज, नौघरा, कानपुर

भारत प्रताप की प्राप्ति-स्वीकृति पत्र

पं० प्रतापनारायण मिश्र जी का यह एक मनोरंजक पत्र है। इस पर भी मन के मौजी मिश्र जी मिति या तारीख लिखना भूल गए हैं, विराम चिह्नों का भी कहीं कोई ठिकाना नहीं।

प्रियवरेषु,

यह तो आप जानते ही हैं कि काहिली में ईजानिव को पदै वैजा हासिल है लेकिन आपके इरशाद के बमूजिब लिखने का इरादा किया था तब तक भारत प्रताप साहब आ ही पहुंचे—खैर, जो लिखा है इरसाले खिदमत है पसन्द आवै तो छाप डालिएगा वरना कोई पुड़िया बांधने भर को कागज भेजा है यही क्या कम इहसान है ? उर्दू के हरूफ बड़े खूबसूरत बनते हैं और नस्र लिखने का मुहावरा भी पहले सिरे का है लिहाजा संभाल-सुंभूल लीजिएगा।

कभी 2 तो जरूर ही लिखेंगे छापिए या न छापिए लेकिन यह भी याद रखिएगा एक तो काहिल

1. यह भी तिथि तारीख रहित पत्र है। डाकखाने की मोहर में भी तारीख स्पष्ट नहीं है। सन् 93 साफ है।
(बालमुकुन्द स्मारक ग्रंथ, पृ० 68)

दूसरे दायमुल मरज तीसरे '—' एक मुश्ते उस्तख्वां है लाख जंजीरों के बीच पण्डित मदन मोहन मालवीय साहब बी०ए० तशरीफ लाए थे उन्होंने भी भारत प्रताप देखा कांग्रेस की फिक्र में आए थे और कई शहरों में जाना था इससे सिर्फ एक ही दिन ठहरे थे शायद 15 या 20 दिन में राजा मेमपालसिंह भी तशरीफ लावें और बाज फरमावें देखिए अपने राम से कैसी ठहरती है क्योंकि वह राजा ठहरे और हम महाराज ! खुदा ही खैर करे ।

Yours

Pratap Misra

एक प्रति बाबू रामदीन सिंह खड्ग विलास प्रेस बाँकीपुर को भी भेजिए वह भी मण्डल के बड़े भक्त हैं और कहा है ।

जुआरी खुआरी प्रहसन के सम्बन्ध में लिखा गया एक पत्र

प्रियवरेषु,

बहुत अच्छा हुजूर बांट दूंगा[1] और लेख भी कैसा अल्लाहतआला दिया करूंगा आप ब्राह्मण को सहारा दीजिए तो जिहे किस्मत जिहे ताला जिहे बख्त··आपके कई पत्र आए पर उत्तर नहीं दे सका, क्षमा मांगते भी लाज लगती है, पर "जो पै जिय गनिहौ औगुन जनको, तौ क्यों कटै सुकृत नखते मोपै विपुल वृन्द अघ बनके"—यार कई महीने से तबीयत सख्त परेशान है इसी से कुछ नहीं होता हुवाता । अपना हाल लिखोगे ? शर्मा जी[2] हैं कहां ? कभी फकीरों की याद भी करते हैं ?

एक तकलीफ देंगे पर जल्द मदद दीजिए तो बने, नहीं तबीयत और कोठे में गई तो बस ! इन दिनों जी भी चाहता है, कई मित्रों का तकाजा भी है इससे मतलब की सुनिए—

आपके पास हिन्दोस्थान का फायल जरूर है उसमें हमारा 'जुवारी खुआरी' प्रहसन है अधूरा, यदि उसकी नकल भेज दीजिए तो पूरा करके छपवा डालें नहीं इच्छा आपकी कालेकांकर वाले कहते हैं पुरानी कापी नहीं रही, इसी से आपको कष्ट देते हैं । कबूल हो तो खैर नहीं तो अभाग्य, फिर जवाबी कार्ड ? छि:

Your

Pratap Misra

बाबू राधाकृष्ण दास को लिखे गए पत्र[3]

(1)

प्रियवर,

प्रे-पु०[4] शीघ्र भेजूंगा उसी के साथ भट्ट जी की वाणी भी, तुमने कुछ न भेजा । हम अभी चिट्ठी

---

1. मिश्र जी का यहाँ मतलब भारत प्रताप के विज्ञापनों से है, जो गुप्त जी द्वारा उनको भेजे गए थे ।
2. पंडित दीनदयाल शर्मा ।
3. 'भारत कला भवन' (हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी) में सुरक्षित ।
4. प्रेम पुष्पावली ।

भी न लिखते पर काम है कृपा करके लिखिए कि बा० मलिक चन्द्र व और कहीं आंखों की कमजोरी के लिए परीक्षत दवा मिल संकेगी ? किन दामों तक ? अत्यन्त आवश्यकता है ।

हमने देशी कपड़ा पहिनने का विचार किया है भलादु पट्टे बनारस में कम-से-कम किन दामों में मिल सकेंगे सूत भी देशी ही हो ?

दोनों बातों का उत्तर यदि आज मिल जाए तो क्या कहना है ।

प्रयाग में हिन्दी के विषय सभा होने वाली है जावोगे ? आना तो हमको भी लिखना अवश्य आने का इरादा है बुढ़वा मंगले तो··क्या कहैं कुछ काम-काज ?

भवदीय

20-3-1882 **ईश्वरावलम्बित मिश्र**

कानपुर

खैरियत है। छप के अभी नहीं आई देखिए !! सत्य हरिश्चन्द्र न आया। भट्ट जी की बानी भेज दें और कुछ मिलेगा ? श्री ललित किशोरी जी का ग्रन्थ देखोगे ? महात्मा नागरू दास का कोई ग्रन्थ है ?

भवदीय

ईश्वरावलम्बित मिश्र

20-3-84 कानपुर

(ओ३म्)

श्रीयुत् राधाकृष्ण दास जी

(2)

प्रियवर,

नमस्ते यहां प्रसन्नता है आपको परमेश्वर प्रसन्न रखें। पुस्तकें और कृपा पत्र दोनों से अतीव आनन्द हुआ ऐसे ही सदैव अनुग्रहीत करते रहिए तो क्यों उलझने तक बात पहुंचे। क्षमा कीजिएगा लज्जित होने की कोई बात न थी ।

(मेमोरंयडम) तो हम लोगों ने भी अनुमान 700 हस्ताक्षरों के शिमले में भेज दिया है देखिए ईश्वर कब तक मनोकामना पूरी करता है आप आज्ञा करें तो और भी किया जाए । आपके द्वारा हमारा भी श्री भारतेन्दु से निवेदन है कि जहां तक हो सके हिन्दी के प्रचारार्थ उद्योग अवश्यमेव करेंगे । हम सच्चे जी से कहते हैं कि आज इस गिरे समय में आर्य वंश के आधार आप ही हैं । (भारतभूषणजी) और हों तो दो ही चार और होंगे और लोग तो नाम ही मात्र के राजा बाबू इत्यादि हौं ।

विज्ञेषु किम्बहुना ।।

कृपा करके एक प्रति अन्धेर नगरी और एक स्तोत्र पंचरत्न भेज दीजिएगा और लिखिएगा कि मान-सोपायन किस विषय का ग्रन्थ है नाम से तो कई एक विषय समझे जाते हैं ! कृपा पत्र से सदैव अनुगृहीत करते रहिए और हमारे योग्य कामों के आज्ञा भी ।

आपका अत्यन्त निष्कपट

प्रतापनारायण

(3)

प्रियवर,

अभी तक तो मैं अस्वस्थता के कारण आपको पत्र नहीं लिख सका न कुछ कर ही सका अब ईश्वर ने कृपा की है आज्ञा कीजिए । इस पत्र का उत्तर कृपा करके बहुत ही शीघ्र दीजिएगा ।

1. आप इसी महीने में कानपुर आ सकेंगे वैसा हम नोटिस इत्यादि का प्रबन्ध कर रक्खे ।

2. हमारा विचार था कि भारत दुर्दशा और 'जयनार सिंह' भी आप लोगों को दिखाते पर कई एक लोग ऐसे कचियाते हैं कि कुछ न पूछिए अतएव कृपा करके श्रीयुत् भारतेन्दु जी से सम्मति लेके लिखिएगा कि भारत दुर्दशा खेलने से Government को तो कुछ अप्रसन्नता न होगी । यदि खेलना उचित है तो 1934 के वर्ष का 29 नं० क०ब० सुधा (जिस्में उस नाटक की समाप्ति है) । वा उसका आशय पत्र ही में शीघ्र भेजिए । और जो खेलना अनुचित हो तो और ही कोई छोटा-सा नाटक भेजिए हम अधिक-से-अधिक एक सप्ताह में खेल सकेंगे । इन दोनों बातों का उत्तर यदि आज ही दे दीजिए तो बड़ी कृपा हो । आगे अत्र कुशलंतत्रास्तु ।

कानपुर
7-9-1939 श्री वि
आइएगा जुरूर

आपका
अतीव निष्कपट
प्रतापनारायण शर्मा

खैरियत है । छप के अभी नहीं आई । देखिए !!! सत्य हरिश्चन्द्र न आया भट्ट जी की बानी भेज दें और कुछ मिलेगा ? श्री ललित किशोरी जी का ग्रन्थ देखोगे ! महात्मा नागरू दास का कोई ग्रन्थ है ?

भवदीय
ईश्वरावलम्बित मिश्र
3 फरवरी

(4)

प्रियवर,

लीजिए इस बहाने से कुछ रुपया स्वाहा ह-ह-ह-ह सौतिया डाह चिमअनी दारद ? प्रे० पु० छपने गई ।

भट्ट जी की बानी—अरे यार इसके अधिकारी कहां ? कौन ? कै जने ? प० व० लिखि ही सही भला देखने को मिलेगी !!

बुढ़वा मंगल पर बनेगा तो बिन बुलाए यार लोग हाजिर हैं पर इंशा अल्लाह कभी तो आप जानिब भी झोपड़ी की रौनक बखशने का कष्ट फर्मावें तुम्हारे ढंग का तो यह शहर नहीं है पर दो चार के लिए तो पृथ्वी निरबीज नहीं है ।

पं०प्र०ना० मिश्र
ल०ना०

पं० प्रतापनारायण मिश्र की पुस्तकों के समर्पण

'लोकोक्ति-शतक' का समर्पण

मेरे सब कुछ !

यह तौ 'सोलौ आने' विश्वास है कि यह तुम्हारी भेंट के योग्य नहीं है । 'सूरज को दिया दिखाने से क्या ?' पर हमारी 'मोटी समझ' में यह सौ गोलियाँ तुम्हारे भारतीय प्रजागण के मानसिक रोगों के दूर करने में कुछ काम आवें तो आश्चर्य नहीं ! इन पर यदि तुम्हारी सुधामयी दृष्टि पड़ेगी तो 'सोने में सुगन्ध है ।' इसी से अनुरोध है कि इस 'ईंधन पात किरात मिताई ।' को भी अपनाओ ।

कानपुर
श्री रामनौमी ह०सं० 3

तुम्हारा ही भला बुरा
प्रेमदास मिश्र

'मन की लहर' का समर्पण

प्रियतम !

यह लेव 'मन की लहर' तुम्हारे चरण कमल से संलग्न होकर कृतार्थ होती है । बहने न देना नहीं तो तुम्हारी अद्‌भुत लीला से कच्चे लोग भ्रम की भँवर में पड़ जायेंगे । यह सन्देह न करना कि मन मानस के तो हम आपही स्वामी हैं यह लहर कैसी ? हाँ यह लहर ऐसी कि गंगा जी को गंगाजल ही से तो अर्घ दिया जाता है न' ! बस । 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पित' हहा ! 'इस पागलपन से लाभ ! की खूब कही ! हाँ लहर को यह लाभ कि इसके कारण अनेकानेक भाव भरित सुन्दर मुख का कुछ देर दरशन !' तुम्हारी तुम जानो, हमें पागल तो बना ही चुके हो । नहीं तो तुमको हानि लाभ से क्या ! अपने लोगों की नाना तरंगें देखना ही मात्र प्रयोजन है सो देखो । बहुत बातें व्यर्थ हैं हमारी भाँति इसे भी अपनाना पड़ेगा ।

केवल तुम्हारा—लहरी
प्रतापनारायण मिश्र, कानपुर

'प्रेम पुष्पावली' का समर्पण

प्यारे !

यह तो सच है कि जब सब कुछ तुम्हारा ही है तब समर्पण कैसा ? पर आज गुरु पूजा है यह त्यौहार भी तो तुम्हें छोड़ दूसरे के साथ मनाने को जी नहीं चाहता, फिर क्या तुम नहीं जानते कि हमारा

धर्म, कर्म, पूजा, पाठ, धन, प्रतिष्ठा, स्वर्ग, मुक्ति सब केवल यही है कि सबके सब सम्बन्ध केवल तुमसे रहे । किसी न किसी बहाने नित्यमेव हमें तुमसे मिलना चाहिये आज इस ही के बहाने सही ।

हे विश्ववाटिका के स्वाभी ! हमें यह निश्चय है कि यह तुच्छ पुष्पावली तुम्हारे रीझने का कारण किसी भाँति नहीं हो सकती पर इसे तुम्हारे पास देख के हम निस्संदेह बड़े प्रसन्न होंगे । अतएव जैसे हमें अंगीकार किया है तैसे हमारी प्रसन्नतार्थ हमारी पहली भेंट भी अंगीकार करनी पड़ेगी ।

कानपुर

सदा तुम्हारा
प्रतापनारायण

'प्रेम पुष्पावली' पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रशंसापत्र

पूज्यपाद हरिश्चन्द्र भारतेन्दु जी ने इस पुस्तिका को शुद्ध किया है और निम्नलिखित समालोचना से मेरा उत्साह वर्धित किया है इस बात के बदले में मैं उनको सच्चे जी से अनेक धन्यवाद देता हूँ ।

(प्र० ना० मि०)

"हमने पंडित प्रतापनारायण मिश्र जी की बनाई हुई 'प्रेम पुष्पावली' देखी । इसके विषय में कुछ विशेष लिखना नहीं चाहता केवल इतना ही लिख देता हूँ कि इसमें वह सुगन्ध है जो औरों में स्वप्न में भी नहीं पाई जाती और जो मेरे ऐसे चित्त वालों को लुभाती है अन्य को चाहे रुचे या न रुचै । इस भूमिका के अधिकारियों को यह एक अमूल्य रत्न होगी ।"

हरिश्चन्द्र

'ब्राह्मण' पत्र के प्रथम अंक के मुख पृष्ठ की प्रतिकृति

ब्राह्मण
मासिक पत्र

नीति निपुण नर धीर वीर कं छु सुजसु कहो किन, अथवा निन्दा कोटि करौ दुर्जन छिन ही छिन॥
सम्पतिहू चलि जाहु रहो अथवा अगणित धँन। अबहि मृत्यु किन होहु होहु अथवा निश्चल तन॥
पर न्याय वृत्ति को तजत नहि जो विवेक गुण ज्ञान निध।
यह संग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिध॥

खण्ड १	१५ मार्च सन १८८३ ई०	संख्या १

विज्ञापन

१ यह पत्र प्रति अंगरेजी मास की १५ ता० को प्रकाशित होगा॥
२ अग्रिम देने वालों से वार्षिक मूल्य १) रु० पश्चात् २) रु० लिया जायगा॥
३ एक प्रति का मू० =) डाक व्यय ग्राहकों से न लिया जायगा जो वर्ष से कम के ग्राहक होंगे उनसे =) प्रति के दाम लिये जायगे जो सज्जन इसकी एक प्रति को कृपा करके स्वीकार करेंगे वे ग्राहकों में जाने और उन्हें मूल्य देना होगा॥
४ तीन महीने तक मूल्य भेज देंगे वे महाशय अग्रिम मू० दाता समझे जायँगे॥
५ जो महाशय सच्चे समाचार सदैव भेजेंगे उनको एक पत्र विना मू० भी दिया जायगा॥
६ जो लेख सर्वसाधारण के हित कारी होंगे वुह विना मूल्य छाप दिये जाँयगे और निज के हित के लेख का प्रति पंक्ति लिया जायगा॥
७ जिन भाइयों को अपना कोई दुःख निवेदन हमारी नीति वली सर्कार से इस पत्र द्वारा सूचित करना हो वुह सच्चाई के साथ यदि हमको अपना लेख देंगे और इस पत्र सम्बन्धी कमेटी उसे छापने योग्य समझेगी तो वुह लेख इस पत्र में छाप दिया जायगा॥ यदि वुह इस पत्र में अपना नाम प्रकट न किया चाहेंगे तो उनका नाम प्रकट न किया जायगा॥

—गोपीनाथ खन्ना मैनेजर ब्रा० पं० सवाई सिंह का हाता
कानपुर

'ब्राह्मण' मासिक पत्र खंड १, संख्या ३ के मुख पृष्ठ की प्रतिकृति

शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि ॥

THE BRAHMANA.

ब्राह्मण

मासिकपत्र

नीति निपुण नर धीर बीर कछु सुजस करौ किन ।
अथवा निन्दा कोटि कहौ दुर्बचन छिनहु छिन ॥
सम्पतिहू चलि जाहु रहौ अथवा अगणित धन ।
अबहि मृत्यु किन होहु होहु अथवा निश्चल तन ॥
पर न्याय पंथ को तजत नहिं जे बिवेक गुण ज्ञान निधि ।
यह संग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिधि ॥
राजर्षि भर्तृहरि जी का सिद्धान्त ।

VOL. 1 } CAWNPORE, 15 MAY 1883 { NO. 3
खण्ड १ } कानपूर, १५ मई सन १८८३ ईस्वी { सङ्ख्या ३

विज्ञापन ।

१ इस पत्र का अग्रिम वार्षिक मूल्य १) पश्चात २) और एक पत्र का =) है डाक व्यय किसी ग्राहक से न लिया जायगा ।

२ ग्राहक होने से तीन महीने तक मूल्य भेज देने वाले अग्रिम मूल्यदाता समझे जायँगे ।

३ निज हित के लेख की छपाई का ब्योरा मैनेजर से पूछने पर मालूम

प्रस्तावना

[15 मार्च, 1883 को 'ब्राह्मण' के प्रथम अंक में प्रकाशित 'प्रस्तावना']

हम ब्राह्मण हैं । हमारे पूर्व पुरुष अपने गुणों के कारण किसी समय सर्व प्रतिष्ठा के पात्र थे । उन्हीं के नाते आज तक हमारे बहुत-से भाई काला अक्षर भैंस बराबर होने पर भी जगत गुरु, महाकुकर्म करने पर भी देवता और भीख मांगने पर भी महाराज कहलाते हैं । हम गुणी हैं वा अवगुणी यह तो आप लोग कुछ दिन में आप ही जान लेंगे, क्योंकि हमारी आपकी आज पहिली भेंट है । पर यह तो जान रखिये कि भारतवासियों के लिये क्या लौकिक क्या पारलौकिक मार्ग में एकमात्र अगुवा हम और हमारे थोड़े से हिन्दी समाचार पत्र भाई ही बन सकते हैं । हम क्यों आये हैं ? यह न पूछिये । कानपुर इतना बड़ा नगर ! सहस्रावधि मनुष्य की बस्ती !! पर नागरी पत्र, जो हिन्दी रसिकों को एकमात्र मनबहलाव, देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय, शिक्षक और सभ्यता दर्शक अत्युच्च ध्वजा यहां एक भी नहीं । भला यह हमसे कब देखी जाती है ? हम तो बहुत शीघ्र आप लोगों की सेवा में आते और अपना कर्तव्य पूरा करते परन्तु अभी अल्पसामर्थी अल्पवयस्क हैं, इसलिए महीने में एक ही बार आ सकते हैं । हमारा आना आपके लिए कुछ हानिकारक न होगा, वरंच कभी न कभी कोई न कोई लाभ ही पहुँचावेगा । क्योंकि हम वह ब्राह्मण नहीं हैं कि केवल दक्षिणा के लिये निरी ठकुरसुहाती बातें करें । अपने काम से काम । कोई बने वा बिगड़े, प्रसन्न रहे वा अप्रसन्न । नहीं, अन्तःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा । हम निरे मत मतान्तर के झगड़े की बातें कभी न करेंगे कि एक की प्रशंसा दूसरे की निन्दा हो । वरंच वुह उपदेश करेंगे जो हर प्रकार के मनुष्यों को मान्य, सब देश, सब काल में साध्य हो, जो किसी के भी विरुद्ध न हो । वुह चाल-ढाल व्यवहार बतावेंगे जिनसे धन, बल, मान, प्रतिष्ठा में कोई भी बाधा न हो । कभी राज्य सम्बन्धी, कभी व्यापार सम्बन्धी विषय भी सुनावेंगे, कभी 2 गद्य-पद्य-मय काव्य नाटक से भी रिझावेंगे । इधर उधर के समाचार तो सदा देहींगे । सारांश यह कि आगे की तो परमेश्वर जानता है, पर आज हम आपके दर्शन की खुशी के मारे उमंग रोक नहीं सकते इससे कहे डालते हैं–हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा, 'जिस तरह सब जहान में कुछ हैं हम भी अपने गुमान में हैं ।' इसके सिवा हमारी दक्षिणा भी बहुत ही न्यून है । फिर यदि निर्वाह मात्र भी होता रहेगा तो हम चाहे जो हो, अपने वचन निबाहे जायेंगे आश्चर्य है जो इतने पर भी कोई कसर मसर करे !

हां, एक बात रही जाती है कि हम में कुछ औगुण भी हैं, सो सुनिए । जन्म हमारा फागुन में हुवा है, और होली की पैदाइश प्रसिद्ध है । कभी कोई हंसी कर बैठें तो क्षमा कीजिएगा । सभ्यता के विरुद्ध न होने पावेगी । वास्तविक बैर हमको किसी से भी नहीं है, पर अपने करम लेख से लाचार हैं । सच 2 कह देने में हमको कुछ संकोच न होगा । इससे जो महाशय हम पर अप्रसन्न होना चाहें पहिले उन्हें

अपनी भूल पर अप्रसन्न होना चाहिये । अच्छा लो, हमको कहना था सो कह चुके । आशिरवाद है–

"सुखी रहौ शुभ मति गहौ, जीवहु कोटि बरीष ।
धन बल की बढ़ती रहै ब्राह्मण देत अशीष ।।"

खण्ड 1, संख्या 1 (15 मार्च, सन् 1883 ई०)

जरा सुनो तो सही

कानपुर इतना बड़ा शहर है कि बाहर वाले इसे छोटा कलकत्ता कहते हैं । इस पर भी यहाँ हिन्दू ही अधिक सम्पन्न हैं । पर कैसे अफसोस की बात थी कि इस जिले भर में हिन्दी का पत्र एक भी नहीं । हिन्दी के पत्र से क्या लाभ होता है सो फिर कभी लिखेंगे । बुद्धिमान लोग आप विचार देखें कि हमेशा नई 2 दिल बहलाने की बातें, अपनी मातृभाषा को अच्छे से अच्छे मुहावरे, देश सुधारने के उपाय इत्यादि उन्हीं अखबारों का काम है । हम अपने मुँह मियाँ मिट्ठू नहीं बनते पर इतना कहना अनुचित नहीं समझते कि यह ब्राह्मण गुण सम्पन्न नहीं है तो निरा शंख भी नहीं है । पढ़ने वाले आप इंसाफ कर सकते हैं । कुछ न सही तो भी इस जिले की इस पत्र से कुछ शोभा ही है, कलंक नहीं । साल पूरा होने आया, कुछ न कुछ इस से सब लोगों को लाभ ही हुवा होगा, हानि किसी तरह की नहीं । इस पर भी जो इस के मूल्य पर ध्यान दिया जाय तो एक रुपया साल के हिसाब से महीने में सिर्फ पाँच पैसे और एक पाई होती है । गँवई गाँव के लोग गंगापुत्र को कम से कम पाँच टका की बछिया पुण्य करते हैं, क्या हिन्दुस्तानी रईस लोग इस विद्यानुरागी 'ब्राह्मण' को महीने भर में बछिया के भी आधे दाम नहीं दे सकते ? रईसों की कौन कहे इस का दाम तो लड़के भी दे सकते हैं । यदि समझें कि यह ब्राह्मण हमारा है, हमारे देश का है, हमारी भाषा का है, हमारी भलाई चाहता है, तो पाँच पैसा एक पाई महीने के हिसाब से आधी पाई रोज कंगाल से कंगाल के लड़के तक दे सकते हैं और अपने देश का हितसाधन कर सकते हैं । हम तो समझते हैं कि लोग इसकी अधिक सहायता करेंगे । दूसरे वर्ष से जो एक हजार ग्राहक हो गये तो इसे 15 दिन में प्रकाश करने का विचार है । पर अफसोस, बहुतेरे सज्जनों ने इसका मूल्य आज तक नहीं भेजा । अरे भाई, हमने इस पत्र को अपने लाभ की गरज से नहीं निकाला । लै दै बराबर हो जाय यही गनीमत है । यदि बढ़ेगा तो दूसरी पुस्तकें भी आप लोगों को भेंट किया करेंगे पर हमारे ग्राहकगण समझें तो सही । हमने तो जिन 2 को नादिहिंद समझा था उन के पास पत्र भेजना पहिले से ही बंद कर दिया है । अब जो हैं उन्हीं से आसरा है किं हमारा हौसिला न तोड़ैंगे । हमारी सहायता से किसी प्रकार मुँह न मोड़ैंगे । थोड़ी सी बात के लिए ब्राह्मण से भटई न करावैंगे, वरंच दिन दूना हौसिला बढ़ावैंगे । अकलमंद को इशारा काफी है । इतने पर भी न समझें तो हम क्या कहें । हमारी इस देशहितैषिता और निरलज्जता पर धिक्कार है ।

खण्ड 1, संख्या 11 (15 जनवरी, सन् 1884)

श्री अलवराधिपति का 'ब्राह्मण न लेने के विषय' में 'उर्दू' में खत

'इनायत व करम फरमायमन जनाब पंडित साहब बाद दंडवत के बाजः हो कि परचः अखबार हिन्दी व उर्दू अखबार यहाँ बकसरत आते हैं कि उनके देखने की फुरसत नहीं मिलती। मिहरबानी फरमा कर अपना परचा एकुम फरवरी सन् 1884 ई० से भेजना बन्द फरमाइयेगा और परचा माह जनवरी का वापिस इर साल खिदमत है।

बंदा, मूलचंद नायब मीर मुंशी

2 फरवरी, सन् 1884 ई० — अलमरकूम रियासत अलवर।'

हाय ! यह अभागिन हिन्दी अब किसकी सरण गहे ! क्योंकि जब हिन्दू राजा ही इसका तिरस्कार करते हैं तो यह किस की सरण गहे ? क्या इस के आदर करने वाले कहीं बिलायत से आवेंगे ? या जिन की मातृभाषा ही नहीं वे आदर करेंगे ? यह तो संभव ही नहीं है, तो यह भारतवासियों को छोड़ किस की सरण गहे ? फिर जब राजा लोगों को इस अभागिन भाषा के समाचार पत्र पढ़ने की फुरसत नहीं तो यह किस की सरण गहे ? उस से भी यह 'ब्राह्मण' जो वर्ष भर अनूठे समाचार दे और एक रुपया 1) मात्र दक्षिणा ले, भला जब इस सस्ते पत्र के पढ़ने की फुरसत नहीं तो यह किस की सरण गहे ? हाँ ! शोक ! सहस्रशः शोक ! कि अभागिन हिन्दी अब किस की सरण गहे ?

खण्ड 1, संख्या 12 (15 फरवरी, सन् 1884)

हरिगंगा

आठ मास बीते जजमान ।
अब तो करौ दच्छिना दान ।। हरि गंगा
आजु काल्हि जो रुपया देव ।
मानौ कोटि यज्ञ करि लेव ।। हरि०
मांगत हमका लागै लाज ।
पै रुपया बिन चलै न काज ।। हरि०
तुम अधीन ब्राह्मन के प्रान ।
ज्यादा कौन बकै जजमान ।। हरि०
जो कहुँ दैहौ बहुत खिझाय ।
यह कौनिउं भलमंसी आय ।। हरि०
सेवा दान अकारथ होय ।
हिंदू जानत हैं सब कोय ।। हरि०
हँसी खुसी ते रुपया देव ।
दूध पूत सब हमते लेव ।। हरि०
कासी पुन्नि गया मा पुंनि ।
बाबा बैजनाथ मा पुन्नि ।। हरि०

खण्ड 3, सं० 8 (15 अक्टूबर, ह० सं० 1)

सूचना

हम तीन मास से ऐसे रोगग्रस्त हो रहे हैं कि जिस का वर्णन नहीं । पाठक यदि देखते तो त्राहि 2 करते । नित्य के मिलने वाले मित्रों से कोई पूछे जिन्हें किसी 2 दिन हमारी दशा पर रोना आता था । फिर आप जानिये अकेला मनुष्य पत्र संपादन करता कि रोग जातना भोगता । अतः हम क्षमा पात्र हैं ।

हमारे पत्र की भी हमारी ही सी दशा है, और हमारे पाठकों में से बहुतों को ज्ञात है कि हम कोई लखपती नहीं हैं, आजकल नौकरी भी छोड़े बैठे हैं, और यह तो सभी जानते हैं कि हिंदी पत्र कुछ कमाई के लिये नहीं होते, खर्च भर निकलना भी गनीमत है ।

विशेष हमारे 'ब्राह्मण' से खुशामद हो नहीं सकती कि कोई सहायक हो । हां अपने सहायकों का अहसान जरूर मानेंगे पर देव (यह शब्द कहते ऐसा ही डर लगता है जैसा फारसी के देव अर्थात् राक्षस से कोई डरे) अपनी तरफ से तो बहुतेरे एक रु॰ 1 असली भी नहीं दे सकते, आगे क्या आशा है। अतः जिन समर्थकों को इस पत्र में मजा आता है, जिन्होंने बहुधा ब्राह्मण के बचन सराहे हैं, वे कुछ न कुछ कर सकें तो बेहतर है । और जिन के नीचे अभी तक रु० बाकी हैं वे भी यदि निरे कंगाल न हो गए हों तो इस पत्र के पाते ही जी कड़ा करके दे डालें, नहीं तो हम कुछ दिन के लिए असमर्थ हो जायेंगे, कहाँ तक रिण वा भार उठावैं । यदि हमारे ग्राहकगण ध्यान देंगे तो हम तीन मास की कसर बहुत शीघ्र निकाल डालैंगे । देर तो हुई ही है और अब की बार कोई रोचक लेख भी नहीं है पर हमारी दशा पर ध्यान दे के क्षमा कीजिए । यदि पत्र की दशा सुधर गई तो देखना क्या मजे दिखाता है । समझदार को इतना बहुत है ।

खण्ड 3, सं० 12 (15 फरवरी, ह० सं० 2)

आपबीती

वर्ष भर से बीमारियां रांड़ें पीछा ही नहीं छोड़ती । यदि एक ने कुछ मुँह मोड़ा तो दूसरी ने आ दबाया । हम यों ही बड़े बली थे, तिस पर आजकल तो ताकत के मारे कोई हड्डी नहीं है जो मांस को अपने ऊपर आने दे । यह पत्र हमने रुपया जोड़ने को न चलाया था पर तो भी उसका खर्च तो निभना ही चाहिए । लेकिन जमामार ग्राहक नहीं समझते कि संपादक लक्षाधीश नहीं है । इधर छापने वालों की घिस 2 जुदा ही हैरान करती है । पहिले तो लिखते हैं—हम तुम्हारे मित्र हैं, हमारे प्रेस को सहायता दो, पीछे चिट्ठी पर चिट्ठी भेजो जवाब नदारद । इन्हीं कारणों से विलंब होता है । एक बार हो तो क्षमा मांगे, रोज का झगड़ा कहां तक चले ? इससे निरलज्ज हो के साफ 2 लिखते हैं, यदि शीघ्र सहाय मिली तौ तो हमने जितनी देरी की है उसकी संती पाठकों को प्रसन्न भी करते रहेंगे और जो ऐसी ही सहाय मिली जैसी कानपुर के लोग, विशेषतः चौक के अमीर, प्रत्येक देशहितकारी काम में दिया करते हैं तो हम लाचारी से अपने सहयोगियों में हास्यास्पद बन जायंगे । आरंभशूर कहवाय लेंगे, पुस्तकें बना के हाथों की खुजली मिटाय लेंगे, पर इतना रुपया कहां से लावैंगे कि घटी खाय के अखबार चलावैं । सहायता हम केवल इतनी ही चाहते हैं कि संपादकगण तो कृपा करके अपने 2 पत्र में 'ब्राह्मण' के विषय में अपनी 2 निष्पक्ष राय दे दें और ग्राहक महोदय, जिनको सचमुच इस पत्र से कुछ मजा मिलता होवै, कृपा करके एक मास के भीतर मूल्य भेज दें । ग्राहक बढ़ाने में भी सब सज्जन कोशिश करें । बस हम रिणहत्या से मुक्त हो जायंगे, सबको जावज्जीवन असीसैंगे, नहीं तो जो होगा वह तो देखना ही पड़ेगा । पर यह समझ लेंगे कि हिंदुस्तान में देशहित का नाम ही नहीं हैं, कोई किसी का नहीं ।

खण्ड 4, सं० 1 (15 अगस्त, ह० सं० 3)

जरा सुनो

पांच महीने हो गए, आप लोग दक्षिणा शीघ्र भेजिए, ब्राह्मण की दशा अच्छी नहीं है । यदि सहाय दाम में बिलम्ब हुवा तो चलना कठिन होगा, अधिक क्या लिखें । अभी पिछली ही रिणहत्या नहीं छूटी, अधिक कुढ़ना अब असह्य है, रुपया भेजिए तो काम चले ।

इस पत्र के सम्पादक नेशनल कांग्रेस मदरास को जाते हैं इस कारण इतना ही प्रकाशित हो सका, अतएव ग्राहक लोगों से प्रार्थना है इसे क्षमा करेंगे ।

ख० 4, सं० 5 (15 दिसम्बर, ह० सं० 3)

हमारे उत्साहवर्द्धक

हम वास्तव में न विद्वान हैं न धनवान, न बलवान; पर हमारा सिद्धान्त है कि अपने जीवन को तुच्छ न समझना चाहिए, क्योंकि इसका बनाने वाला सर्वशक्तिमान् सर्वोपरि परमात्मा है। इसी से कभी 2 हमारे मुख से मुसहफी का यह वचन उमंग के साथ निकल जाता है कि–

जिस तरह सब जहान में कुछ हैं
हम भी अपने गुमान में कुछ हैं

कुछ न सही, पर कानपुर में कुछ एक बातें केवल हमीं पर परमेश्वर ने निरभर की हैं, जिसकी कदर इस जमाने वाले नहीं जानते, पर हम न होंगे तब शोक करेंगे। यदि लोग हमको भूल भी जायंगे तो यहां की धरती अवश्य कहेगी कि हममें कभी कोई खास हमारा था।

पर आज यहां हमको यह सोच है कि हाय, कानपुर के हम कौन हैं, इतना भी कानपुर नहीं जानता ! वहां इस बात का हर्ष भी है कि बाहर वालों की दृष्टि में हम निरे ऐसे ही वैसे नहीं हैं। बाजे 2 लोग हमें श्री हरिश्चन्द्र का स्मारक समझते हैं। बाजों का खयाल है कि उनके बाद उनका सा रंग ढंग कुछ इसी में है। हमको स्वयं इस बात॰ का घमंड है कि जिस मदिरा का पूर्ण कुम्भ उनके अधिकार में था उसी का एक प्याला हमें भी दिया गया है, और उसी के प्रभाव से बहुतेरे हमारे दर्शन की, देवताओं के दर्शन की भांति, इच्छा करते हैं। बहुतेरे हमारे बचनों को रिषिवाक्य सदृश मान्य समझते हैं। बहुतेरे बड़े 2 प्रतिष्ठित शब्दों से नाम लेते हैं ! बहुतेरे हमें पत्र लिखते हैं तो गद्यपद्यमय लेखों से अलंकृत करके लिखते हैं। इस ढंग के पत्रों में एक यह है, जिसके प्रेषक महाशय को हम जानते भी नहीं हैं।

"श्रीयुत कविकुल मुकुटमणि, पंडितवर, हिंदी भाषा भूषण, प्रतिभारतेन्दु, रसिकराज, श्री प्रताप नारायण मिश्र समीपेषु निवेदनमिदं–

हे भाषाचार्य !

आपसे हिन्दी भाषा वृहस्पति की स्तुति मुझ सा मंदमति क्या कर सकेगा ? नहीं ! नहीं !! नहीं !!! फिर बस !!! उस परम हृदयंगम विषय की इतिश्री यही सही !!!

आपकी चमत्कृत कृति आपकी केवल एक ही पुस्तक 'प्रेम पुष्पावली' में देख पड़ी; पर उसके पढ़ने से मेरी प्रेमतृष्णा शतगुणित बढ़ी अर्थात् आपके अनेक रसमय लेख देखने की अत्युत्कट इच्छा प्रगट हुई है; सो तृप्त करना आपही से महाशयों का काम है।

अब मेरी आपसे इतनी ही बिनती है कि आपके समग्र लेख जो 'ब्राह्मण' पुस्तक में अथवा अन्यत्र प्रकाशित हुए हों सो सब इस पत्र के देखते ही 'वेल्यूपेएबिल पोस्ट' द्वारा इस पते पर भेजिए, और अपना अद्वितीय पत्र 'ब्राह्मण' भी सदैव भेजा कीजिए।

कोल्हापुर
26-3-88

आपका दासानुदास,
रायसिंह देव वर्म्मा

पता–राव साहब रायसिंह राव, स्टेट सरबेयर कोल्हापुर,

हम ऋषि नहीं हैं कि अपनी स्तुति से प्रसन्न न हों, हम ऐसे बौड़म, उजड्ड, असभ्य नहीं हैं कि अपने दयालुओं को धन्यवाद आशीर्वाद न दें। हमारा उत्साह बढ़ता है और चित्त चाव होता है कि हमारे गुणग्राहक भी हैं ! और साधारण लोग नहीं, बड़े सतुरुष हम पर अनुग्रह करते हैं ! बहुत थोड़े से, पर बड़े 2, लोग हमें नीचा दिखाने की भी फिकर में रहते हैं। हम पर डाह भी करते हैं। पर हमारे हृदयबिहारी की दया से आज तक कुछ कर नहीं सके ! यद्यपि हमको दैव ने इतनी सामर्थ नहीं दी कि हम अपने मनोर्थ को ठीक ठीक पा सकें, पर इस दीन हीन दशा में हम कुछ हैं ! इसका कारण जहां तक सोचते हैं यही पाते हैं कि प्रेम के दो अक्षर ! अ कुछ नहीं !! अहह !!!

क्या क्या करूं मैं शुक्र खुदाये कदीर का।
बख्शा है मुझ फकीर को रुतबा अमीर का॥

धन्यो३सि प्रभो !! प्रेमदेव !!

खण्ड 4, सं० 9

जिन राय साहब का कृपापत्र हमने अप्रैल में छापा था उन्हीं का यह दूसरा पत्र है। परमेश्वर ऐसे सज्जनों का भला करे। हम खुशामदी नहीं हैं कि किसी की झूठी प्रशंसा करके कुछ ऐंठा चाहें, पर हम कृतघ्न भी नहीं है जो अपने हितैषियों को धन्यवाद न दें। इन पत्रों से लोग समझ सकते हैं कि सहृदय, प्रेमी, उदार और सच्चे सज्जन 'ब्राह्मण' को कैसा समझते हैं।

'स्वस्ति श्री कवि कुल गौरव, भाषाचार्य, प्रतिभारतेंदु, रसिकमंडलीमंडन श्री प्रतापनारायण मिश्र समीपेषु निवेदनमिदम्—

हे प्रेमदेव भक्तशिरोमणे !

अहा हा ! आनंद ! आनंद !! आनंद !!! सहृदयों ने काव्यानंद को परमानंद सहोदर कहा है, सो सत्य है ! धन्य आज का दिन ! धन्य आज की घड़ी !! कि जिसमें ब्राह्मण की बंगी (पारसल) आन पहुंची !!! खोल के देखते ही उसके चतुर्थ खंड की द्वितीय संख्या हाथ लगी। प्रथम पृष्ठ ही पर 'द' देखकर पढ़ना आरम्भ किया। क्या कहूँ उसकी लिखावट को ! कुछ कहते बनता ही नहीं ! ऐसी अनूठी हिन्दी-पद्मिनी मैने (अर्थात् महाराष्ट्र रूपी हफसान-बासी हतभागी ने की जो सदा सर्वदा काली कलूटी कुरूपा हिंदुस्तानी, जो न हिंदी मुसलमानी, मुँह से खाने की निशानी देखता भालता और बोलता है) काहे को कभी देखी थी।*

महाशय आपको तो 'द' की दास्तान दुस्सह जान पड़ी, पर मुझको तो उसने ऐसे रूप रंग, राव चाव, हाव भाव दिखलाए कि मेरा मन भ्रमर सब सुध भूल गया। उसकी प्रत्यक्षर मधुपान करते 2 छक गया ! यहाँ तो ऐसी उलटी गति चल निकली कि 'या कांटे मो पायं लगि लीन्हीं मरत जिआय'।

'द' की जादूभरी दास्तान दूर होते ही उर्दू बीबी की पूँजी देख पड़ी ! उस सड़ी बेसवा की अंदर की (भीतरी पोल) जान पड़ी ! और उसी के साथ नागरी देवी की प्रभा खुल पड़ी। द्वितीय संख्या

* हाय एक यह सज्जन हैं जो इतनी दूर बैठे नागरी की इतनी प्रतिष्ठा करते हैं ! और एक यहाँ वाले हिंदू जाति के कलंक हैं जो उर्दू और अंगरेजी अखबारों की गालियाँ भी खाते हैं तौ भी उर्दू ही अंगरेजी पर मरे धरे हैं (सं०ब्रा०)

अधूरी छोड़ तृतीया को हाथ में लिया। प्रथम पत्र के उलटते ही नागरी की 'भौं' पर दृष्टि पड़ी ! फिर क्या पूछना ! नागरी गुण आगरी की मनमोहकता खबर पड़ी ! बस ! अब तो प्रेमबंधन में बंध गए। अब न इससे छुटकारा है न कुछ चारा है।[1]

मेरी प्रेमेच्छा इस प्रेमाधिकारी 'ब्राह्मण' के गले पड़ी। मैं हक्का बक्का हो मुँह ताकते ही रह गया। जब होश में आया तब उस (प्रेमेच्छा) से कहा—हे निर्लज्जे ! कुछ तो धीरज धरती, थोड़ा तो विचार करती। अरी गंवारी, कहां तो यह ब्राह्मणोत्तम और कहां तू 'क्षत्रात्मजा लघुत्तमा' कहां राजा भोज कहां भोजवा तेली' ! उसने (अर्थात् प्रेमेच्छा ने) उत्तर दिया कि क्यों कलिकाल के फेरे में पड़कर प्रेमरस में विष मिलाते हो ? ब्रम्ह क्षत्र का मूल तो एक है न ! आज तक कितनी क्षत्र कन्याएं ब्रम्हार्द्धांगिनियां होती आई हैं। तिस पर इस प्रेमपंथ में जात पांत का बखेड़ा क्या !'

इसके सुनते ही मैं निरुत्तर तो हुवा सही, इस पर दुबले पतले ब्राह्मण का डील डौल देख के और उसके दुखोद्गार सुनके सशंक हो के मैंने कहा—'अरी लड़की इस परदेशी द्विजवर का कुम्हलाया हुवा कमल वदन भी देखती है ? कि उसके प्रेम ही पर लट्टू हो अपना सर्वस्व खोती है ? यह तो अब तब का हो रहा है ! क्यों नाहक सौभाग्य के साथ ही वैधव्य को बुलाती है ? तेरे लिलार ही में पति का सुख नहीं लिखा, सो तुमको कैसे प्राप्त होगा। इससे तो सदा कुमारी ही रहना बेहतर है'। बालिका बोल उठी—'क्यों ऐसे कुतर्क करते हो ? सावित्री के पति प्रेम-पुनीत्व ने ही उसके प्राण-प्यारे को जम-जाल से छुड़ाया था ! वरन् दीर्घायु कर छोड़ा था। फिर मेरे भाग्य का लिखा तुमने कैसे बांचा ? प्रेमदेव की कृपा से मेरा भी अहिवात अवश्य ही अचल होगा[2], बस ! हो चुका !! टंटा मिटा !!!

हे प्रेम सर्वस्व प्रताप मिश्र जी ! लीजिए, यह मेरी लाली पाली हुई बालिका आपकी सेवा में आती है ! यद्यपि आप कनौजिया हैं तौ भी दहेज की आशा छोड़ इस प्रेमविवाहिता पतोहू को प्रेमपुरस्सर स्वीकार कीजिए ! अब आप हमारे समधी ठहरे, इसलिए इस बार प्रथम भेंट आपके लिए पांच रुपया भेजता हूँ और अपने दामाद (अर्थात् 'ब्राह्मण') के वास्ते हर साल पांच से पचास तक दिया करूंगा[3], क्योंकि अपनी बालिका आपके हवाले की है। अब आपको भी यही उचित है कि अपने पुत्र का पूर्णोत्साह से प्रतिपालन करें, नहीं तो आपके माथे ब्रह्महत्या तथा पुत्रहत्या का पातक चढ़ेगा।[4] जन्म देना सहज है, पर उस जन्मे हुए का भरणपोषण प्रतिपालन करना परम कठिन है।

---

1. परम धन्य है ऐसे पुरुषरत्नों के पवित्र जीवन को जो नागरी देवी के इतने चढ़े बढ़े भक्त हैं और प्रेम के इतने तत्त्वज्ञ हैं कि एक 2 लेख पर इतना शीघ्र प्रेमजाल में फँस जाते हैं ! धन्य प्रेम ! (सम्पादक ब्राह्मण)
2. यद्यपि हमें अपनी ओर से कुछ भी आशा नहीं है पर हम प्रेमी हैं इससे दृढ़ विश्वास रखते हैं कि महानुभाव रावसाहब की प्रेमेच्छा देवी के केवल आशीर्वाद से 'ब्राह्मण' के चिरायु होने की कोई सूरत निकल आना आश्चर्य नहीं है। [सं०ब्रा०]
3. पांच या पचास के लिए हाथ फैलाते हमें लज्जा आती है पर ऐसे प्रेम से कोई एक कौड़ी भी दे तो हम क्या हैं, शायद परमेश्वर भी हाथ पसार के लेंगे। दूसरा पांच हजार भी दे तो हम आज कल की सी दशा में ले तो लेते पर इस चाव से कभी न लेते, क्योंकि हम प्रेम-भिक्षुक हैं। [सं०ब्रा०]
4. ब्राह्मण को बंद करने में परमेश्वर साक्षी है कि हमें पुत्र-शोक से कम शोक न होगा, पर हत्यारे नादिहन्दों ने हमें लाचार कर दिया है। इसका सविस्तार हाल 'ब्रह्मघाती' नामक पुस्तिका में लिख रहे हैं। पर दो महीने बाद छपावेंगे। अभी इससे नहीं छपा सकते कि शायद पीछे से दो चार नाम काटने पड़ें। ब्रा० को जिस तरह आज तक चलाया है हमी जानते हैं। [सं०ब्रा०]

यद्यपि मुझको दो ढाई सौ रुपया मासिक मिलता है तथापि बड़ा परिवार रहने के कारण आय-व्यय बराबर हो जाता है[1] । नहीं तो मैं अकेला ही अपने दामाद को पोसता ।[2]

अस्तु यह प्रेम कहानी यहीं समाप्त करता हूँ । इस तुच्छतम लेख को यदि आप छापना चाहें तो शुद्ध करके छापें ।

आपका परम हितेच्छु—
प्रेमदासानुदास
रायसिंह देव वर्म्मा
कोल्हापुर (दखिन)

खण्ड 4, सं० 11 (15 जून, ह०सं० 4)

1. सहृदयों और प्रेमियों का आय-व्यय तो सदा ही बराबर हो जाता है । रुपया जोड़ने के लिए चाहिए—धर्म कर्म, लज्जा प्रतिष्ठा, आमोद प्रमोद, शील संकोच सब आले पर रख दिए जायं । सो प्रेम-सिद्धांती से हो नहीं सकता । [सं० ब्रा०]
2. हम कदापि नहीं चाहते कि कोई महाशय अकेले 'ब्राह्मण' का भार अपने माथे ले लें, पर केवल हमारे ही माथे रहना भी असह्य है । यदि कोई भी सचमुच कटी उंगली पर मूतने वाला होता तो हम क्यों झींखते । परमेश्वर राव साहब का भला करें जिन्होंने हमें इस महानिराशा और निस्सहायता में सहारा दिया ।

सूचना

हमने कई बातें सोच के ब्रह्मघाती नामक पुस्तिका छपने भेज दी। अगस्त में प्रकाश भी कर देंगे। अतः सबको विदित करते हैं कि हम धनाभाव से बिन दामों तो दे नहीं सकते पर 'ब्राह्मण' के ग्राहकों और हिंदी पत्र संपादकों को केवल डाक महसूल पर औरों को ।। मूल्य पर भेजेंगे। पुस्तक बहुत उत्तम नहीं है, पर लाभ अवश्य उसके देखे से इतना है कि अनेक गुप्त ठगों के नाम ग्राम और कुछ 2 चरित्र ज्ञात हो जाने से उनके साथ व्यवहार करते समय सावधानी रहेगी। सं० ब्रा०

खण्ड 4, सं० 12 (15 जुलाई, ह० सं० 4)

ब्रह्मघाती

हमने 'ब्राह्मण' के चौथे खंड में कभी इस नाम की पुस्तक का नोटिश दिया था। इस पर हमारे मित्रों ने उसके देखने की इच्छा प्रकाश की है। पर हम उसे कई कारणों से अलग नहीं छपवा सकते अतः 'ब्राह्मण' ही में उनके थोड़े 2 नाम प्रकाश किया करेंगे। दूसरे पत्रों के संपादक तथा ग्रंथकार तथा हमारे ग्राहकों को चाहिए कि इनके साथ व्यवहार करने में सावधान रहें। ईश्वर किसी युक्ति-विशेष से ब्राह्मण को चिरंजीव रक्खे या कोई समर्थ व्यक्ति सहायक हो जाय तो और बात है नहीं तो इन बेईमानों ने 'ब्राह्मण' के प्राण लेने में कोई कसर नहीं रक्खी। जिन के हम देनदार हैं उन्हें कौड़ी 2 देंगे। पर हम झूठे वादे इन्हीं पापियों की बदौलत करते रहे हैं। हमने बहुत से सज्जनों का शील तोड़ के वेल्यू पेएबल पोस्ट द्वारा दाम लिए हैं। यह भी इन्हीं जमामार नादिहन्दों की दया से। हम नम्रता के साथ 'ब्राह्मण' के लहनदारों और सच्चे रसिकों से क्षमा मांगते हैं और सबको पुनः सावधान करते हैं कि बचो इन दो चार रुपए के लिए बेईमानी करने वालों से। यह हम नहीं कह सकते कि यह स्वयं 'ब्राह्मण' का धन हजम कर बैठे या इन बेचारों के नाम से दूसरे किसी ने जमा मारी।

खण्ड 5, सं० 2 (15 सितम्बर, ह० सं० 4)

महाविज्ञापन

हमने बेईमान ग्राहकों का नाम तो रजिस्टर से उड़ा दिया, ब्रह्मघातियों में धीरे 2 छाप देंगे । पर जो महाशय 'ब्राह्मण' के सहायक हैं उनसे निवेदन है कि कृपा करके अब दक्षिणा शीघ्र भेजें और जहां तक हो सके नए ग्राहक बढ़ाने का यत्न करें । तभी 'ब्राह्मण' का चलना संभव है !

आगामी मास से हम वेल्यू पेएबिल डाक द्वारा 'ब्राह्मण' भेजेंगे । इससे हमारे अनुग्राहक हमें आशा है कि रुष्ट न होंगे, क्योंकि यों भी तो उन्हें मनीआर्डर में दो आने देने पड़ते हैं, वही वेल्यू पेबिल में भी देना पड़ेगा । हमारी धृष्टता अवश्य है पर क्या करें, धन के बिना लाचारी है, इससे बुद्धिमानों को क्षमा करना योग्य है ।

'ब्राह्मण' की हालत अच्छी नहीं है । कारण केवल हमारी गफलत, बेईमानों की बेईमानी और सहायकों का अभाव मात्र है । जब बड़े 2 राजा बाबुओं ने असली दाम तक न दिए तो औरों से क्या आशा है । हां यदि दस पांच हमारे निज मित्र इसकी दस 2 पांच 2 कापियां बेच दिया करें तौ भी कुछ दिन काम चल सकता है, नहीं तो जो इच्छा परमेश्वर की ।

अब हमारे ग्राहकों को नीचे लिखे पते पर मूल्य भेजना चाहिए और ठौर भेजने से हम उत्तरदाता न होंगे ।

खण्ड 5, सं० 3 (15 अक्टूबर, ह० सं० 4)

सब की देख ली

जब 'ब्राह्मण' का जन्म हुआ था तब कानपुर के तथा दूर के लोग, जो पंडित जी और बाबू जी और मुंशी जी औ लाला साहब औ राजा साहब कहलाते हैं, अपने को धनवान औ प्रतिष्ठावान लगाते हैं, बल्कि खुशामदी लोग उन्हें और भी बड़ी 2 पदवी दे के भांड़े पर चढ़ाते हैं, वे स्वयं अपने को देशहितैषी, स्नेहतत्वज्ञ, उदारप्रकृति समझते हैं तथा हमसे मौखिकी मित्रता (जबानी दोस्ती) भी रखते हैं और हम भी उन्हें कम से कम पांच और अधिक से अधिक बीस बरस से करीब सच्चा समझते थे, उन्होंने छाती ठोंक 2 अथवा ताव के ताब लिख 2 के सूचित किया था कि हम तन मन धन से 'ब्राह्मण' के साथी हैं, वरंच जब हमने बीमारी के सबब 'ब्राह्मण' बंद कर दिया था तब उलहने पर उलहना देते थे, तकाजे पर तकाजा करते थे कि निकालो, हम तो तुम्हारे साथ हैं, तुम घबराते क्यों हो ? अस्तु हमने निकाला, पर उन महापुरुषों से सहायता के नाते एक पैसा, एक लेख, एक नए ग्राहक का नाम भी मिला हो तो हम गुनहगार। हम इस बात की कसम नहीं खा सकते कि सहायक कोई नहीं है, पर जिन्होंने मुहर्रम की भांति छाती ठोंकी थी उनकी करतूत यह है कि बहुतों से दाम भी न मिले। हमने लाज छोड़ के मांगा तो आज कल। रिण से अधिक उकता के वेल्यूपेएबिल डाक में 'ब्राह्मण' भेजा तौ 'मकतूब अलह इनकार करता है'। खैर ! यहां क्या है, किसी का रुपया गया किसी की शेखी गई, एक दिन ब्रह्मघाती की फेहरिस्त ··पर यह कहने का हमें साहस बना बनाया है कि सब की देख ली।

खं० 5, सं० 3, 4 (15 अक्टूबर-नवंबर, ह० सं० 4)

सूचना

जिन महाशयों ने कृपापत्र भेजकर 'ब्राह्मण' मंगाया है उनको चाहिए कि यह अंक पाते ही दक्षिणा शीघ्र भेज दें नहीं तो आगामी मास में वेल्यू पेएबुल द्वारा 'ब्राह्मण' से भेंट होगी।

मैनेजर ब्राह्मण

प्यारे पाठको !

जिस प्रकार 'सारसुधानिधि' इत्यादि उत्तमोत्तम पत्रों को नादिहन्द ग्राहकों ने भच्छ लिया उसी प्रकार 'ब्राह्मण' को भी ग्रसना चाहते हैं, पर वह नहीं सोचते कि ब्रह्मदोषी बनना हिन्दुओं के लिए कैसा है। हम उनमें से कुछ नाम यहां प्रकाशित करते हैं–

[यहाँ छः व्यक्तियों के नाम और पते प्रकाशित हैं।]

('ग्रंथावली' संपादक)

खं० 6, सं० 10 (15 मई, ह० सं० 6)

एक सलाह

जिन लोगों को विश्वासघात करके पराई जमा हजम कर जाने में लज्जा नहीं आती, जिन्हें थोड़े से द्रव्य के मोह से दूसरों की महान हानि होते देख के भी दया नहीं आती, जो लम्बी चौड़ी चिट्ठी लिख के और छाती ठोक के प्रण करने में वीर हैं पर निर्वाह करने के समय चार पैसा खर्चने में भी कंगाल हैं, जो अपनी बुरी आदतों के हाथ ऐसे बिक गए हैं कि अच्छे कामों के लिए भी एक डबल भी नहीं बचा सकते, जिन्हें तकाजा सहने की लत और प्रतिज्ञा तोड़ने की धत है, उनके लिए तो हमारे पास क्या ब्रह्मा जी के पास भी कोई औषध नहीं है, सिवा इसके कि नालिश कर के उनको उचित बदला दे दिया जाय और समाचार पत्रों में सच्ची 2 कार्रवाई प्रकाश करके सर्वसाधारण को उनसे सावधान रहने की सूचना दे दी जाय। पर जिन लोगों को सचमुच देश की ममता और सद्‌गुणों का व्यसन तथा अच्छे कामों में सहायता करने की रुचि है पर आमदनी इतनी थोड़ी है कि मामूली खर्च से इतना भी नहीं बचता कि जिस देशोपकारिणी सभा के सभ्य हैं उसका मासिक चंदा और जिस उत्तम पत्र के ग्राहक हैं उसका वार्षिक मूल्य भी अखर के बिना दे सकें, इस दशा में उन्हें लज्जा अवश्य आती है, तकाजे का भय अवश्य लगता है, यह खयाल जरूर रहता है कि 'दूसरे हमें क्या समझेंगे'। पर करें क्या द्रव्य संकोच से लाचार हैं। सभा में जाना वा पत्र का लेना छोड़ दें तो जी ऊभता है, मनोबिनोद में विघ्न पड़ता है। सेंत के म्यम्बर वा ग्राहक बनने का आवेदन करें तो चार जनों के आगे आंखें नीची होती हैं। यकरार करके न पूरा करें तो गैरत आती है। इस प्रकार के चित्त को अजब उलझन में डाले रहते हैं। ऐसे सज्जनों के सुभीते के लिए हमने एक सलाह सोची है, अर्थात् सम्भव हो तो नित्य नहीं तो हफ्ते 2 थोड़ा 2 धन अलग रख दिया करें अथवा यह समझ लिया करें कि गरीबों के सन्तान वृद्धि होती है तो क्या करते हैं, जो मनुष्य पांच रुपए मात्र मासिक आय रखता है और उसी में अपना तथा गृहिणी का निर्वाह करता है उसके यदि एक लड़का भी पैदा हो जाय तो क्या करेगा ? फेंक देहीगा नहीं, कम से कम दस वर्ष तक वह लड़का कमाने लायक हो ही न जायगा, कहीं गड़ा हुआ खजाना मिलने से रहा, आखिर झख मार के उसी थोड़ी सी आमदनी में दो आदमियों की जगह तीन का भरण पोषण करना पड़ेगा। बस इतना विचार कर लेने से चाहे जो हो एक दो अच्छे कामों में सहायता देने का व्यसन निभाता जायगा। यों समझ लेना चाहिए कि बाजे हाकिम ऐसे प्रजाबत्सल होते हैं कि जहाँ सैर करने निकले वहीं नगर में हलकम्प पड़ जाता है। किसी गरीब की बकरी सड़क किनारे बंधी है, दो रुपया जुरमाना। किसी दुखिया के द्वार पर दो-चार मूली के पत्ते पड़े हैं, चार रुपया जुरमाना। किसी दिहाती विधवा ने कंडों की टोकड़ी किसी चबूतरे पर रख दी है, पांच रुपया जुरमाना। ऐसी हालत में यह दीन प्रजाजन क्या करते हैं ? किसी न किसी रीति से दे ही गुजरते हैं न ? अपील करें तो पेट के लिए दौड़ने का समय कचहरी में बीते। अभी दो ही चार में पीछा छुटता है, फिर और पलेथन देना पड़े इससे यही समझ लेते हैं कि

राजदंड भुगतना ही पड़ता है। बस जब घसियारे ऐसा खर्च सह लेते हैं तो उनसे कहीं अच्छे हैं। ऊपर से जो कुछ जी कड़ा करके दे डालिएगा वह देश सेवा में भुक्त होगा। फिर क्यों न समझ लीजिए कि हम ऐसे ही स्थान के वासी हैं जहां का धर्म अथवा देशहित नामक हाकिम ऐसा ही है। यों समझ लेने से और इसी समझ का अनुसरण करने से आशा है कि बड़े 2 कामों के लायक धन जुड़ जायगा। तुम्हें तो कुछ बड़ी रकम देना भी नहीं है। हिंदी के पत्रों भर में 'हिंदोस्थान' का मूल्य सबसे अधिक है, सो दस रुपया साल। और बड़ी से बड़ी सभाओं का चंदा बड़ी हद्द दो रुपया महीना। विचार देखिए तो इतना सा खर्च हुई क्या जिसके लिए तकाजा सहो, नादिहंद कहलाओ और आत्मा को उलझेड़ में डाले रहो। यदि ऐसा समझते तो क्यों अच्छे 2 पत्र तथा सभाएँ टूट जातीं और जो हैं उन्हें चलाना दुस्साध्य होता। क्या कोई सत्पुरुष इसे पढ़के 'श्री हरिश्चन्द्र कला' 'हिन्दी प्रदीप' और 'ब्राह्मण' को कुछ सहारा पहुँचावैंगे ?'

खं० 7, सं० 3 (15 अक्टूबर, ह० सं० 5)

विज्ञापन

(जरा पढ़ लीजिए)

कई मास से 'ब्राह्मण' में श्री हरिश्चन्द्र संवत 5 छप रहा है पर चाहिए था 6, किंतु इस मास (जनवरी) से 7 आरम्भ हुआ है, अतः जो सज्जन 'ब्राह्मण' की जिल्द बंधवा के रखते हैं उन्हें सुधार लेना चाहिए पर जो रदियों में फेंक देते हैं उनकी बला जैसे 5 वैसे 6 वैसे 7। छः मास इस वर्ष के भी बीत गए, कहिए दक्षिणा अब भी भेजिएगा कि यों ही झिखाते रहिएगा ? इसमें कोई सन्देह नहीं है, बनावट न समझिएगा कि अब इस पत्र के ग्राहक इतने थोड़े हैं कि यदि सबसे मूल्य प्राप्त भी हो जाय तो भी इस वर्ष 50 रु० से कम घाटा पड़ना सम्भव नहीं है। यद्यपि घाटा हर साल पड़ता रहा है पर कभी बनावटी दोस्तों (साझियों) के आसरे भुगत लिया, कभी यह समझ के झेल डाला कि आगामी वर्ष प्रबंध ठीक रक्खेंगे और ग्राहक बढ़ाने का यत्न करते रहेंगे तो सब घटी पूरी हो जायगी। और इसी विचार पर गत छः वर्ष में पांच सौ से ऊपर रुपया केवल अपनी गांठ से दिया भी, पर अब मेहनत करके, रुपया लगा के भी अपनी सरस्वती की विडंबना असह्य है, इससे इरादा तो इसी मास में बन्द कर देने का था, पर करें क्या, पांच सात सहृदयों को इस पत्र का एकाएकी अन्त हो जाना अत्यन्त कष्टदायक होगा इससे कुछ हो इस साल तो जैसे तैसे चलाते हैं, पर जहां यह वर्ष समाप्त हुआ वहीं ब्राह्मण के जीवन की समाप्ति में सन्देह न समझिए। हां, जिन्हें इससे सचमुच ममत्व है वे ग्राहक बढ़ा के जीवित रख सकते हैं, पर हममें अब हौसला नहीं रहा।

बाबू राधा मोहन साहब कार्यवशतः बाहर चले गए हैं अतः ब्राह्मण संबंधी धन वा पत्रादि अन्य विज्ञापन न निकलने तक इस पते से भेजिएगा—

प्रतापनारायण मिश्र
'ब्राह्मण' आफिस
कानपुर

खं० 7, सं० 6 (15 जनवरी, ह० सं० 7)

विज्ञापन

हम 'ब्राह्मण' को खुशी से बंद नहीं करते। यदि एक 2 रुपया महीना वाले दस साझी अथवा सच्चे सौ ग्राहक नियत कर देने का कोई भी जिम्मा ले तो फिर भी इसे चलाए जायं। पर न इसका आसरा है न खुशामद हो सकती है, इससे जब तक फिर हमारा ही जी फिर से न फुलफुलाव तब तक इसे बंद ही समझिए। क्योंकि अब मेहनत करके और रुपया लगा के हिन्दी की ऐसी बेकदरी नहीं देखी जाती। इससे अब वह सज्जन हमारे पास अपने पत्र न भेजें जो मूल्य चाहते हों।

हमसे बहुतेरे महाशय पत्र द्वारा कहा करते हैं कि कोई अपनी बनाई पोथी दीजिए तो छपवावैं। उनकी सेवा में निवेदन है कि हमारी बनाई वा संग्रह की हुई पुस्तकों पर बाँकीपुर निवासी श्री बाबू रामदीन सिंह का अधिकार है अतः हमारे बदले उनसे मांगना चाहिए।

खं० 7, सं० 12 (15 जुलाई, ह० सं० 7)

प्रताप-चरित्र

पं० प्रतापनारायण मिश्र

—"प्रताप-चरित्र, इस नाम से निश्चय है कि पाठकगण समझ जायेंगे कि प्रतापनारायण का जीवन-चरित्र है, पर साथ ही यह भी हास्य करेंगे कि जन्म भर में स्वाँग लाये तो कोढ़ी का, प्रताप मिश्र न कोई विद्वान् है, न धनवान, न बलवान, उसके तुच्छ-जीवन वृत्तान्त से कौन बड़ी मनोरंजना व कौन बड़ा उपदेश निकलेगा ! हाँ, यह सच है ! पर यह भी बुद्धिमानों को समझना चाहिए कि परमेश्वर का कोई काम व्यर्थ नहीं है । जिन पदार्थों को साधारण दृष्टि से लोग देखते हैं, वे भी कभी-कभी ऐसे आश्चर्यमय उपकार-पूर्ण जँचते हैं कि बड़े-बड़े बुद्धिमानों की बुद्धि चमत्कृत हो रहती है ! एक घास का तिनका हाथ में लीजिए और उसकी भूत एवं वर्तमान दशा का विचार कर चलिए तो जो-जो बातें उस तुच्छ तिनके पर बीती हैं, उनका ठीक-ठीक वृत्तान्त तो आप जान ही नहीं सकते, पर तौ भी इतना अवश्य सोच सकते हैं, कि एक दिन उसकी हरीतिमा (सब्जी) किसी मैदान की शोभा का कारण रही होगी !

कितने बड़े-बड़े रूप-गुण-बुद्धि-विद्यादि विशिष्ट उसके देखने को आते होंगे, कितने ही क्षुद्रकीटों एवं महान् व्यक्तियों ने उस पर विहार किया होगा, कितने ही क्षुधित पशु उसके खा जाने को लालायित रहे होंगे अथवा उसे देख के न जाने कौन डर गया होगा कि इसे शीघ्र खोदो, नहीं तो वर्षा होने पर घर कमजोर कर देगा, सुख से बैठना कठिन पड़ेगा । इसके अतिरिक्त न जाने कैसी मन्द प्रखर वायु, कैसी अपघोर वृष्टि, कैसे कोमल कठोर चरण-प्रहार का सामना करता-करता आज इस दशा को पहुँचा है ! कल न जाने किसकी आँखों में खटके, न जाने किस ठौर के जल व पवन में नाचे, न जाने किस अग्नि में जल के भस्म हो इत्यादि । जब तुच्छ वस्तुओं का चरित्र ऐसे-ऐसे भारी विचार उत्पन्न कराता है, तो यह तो एक मनुष्य पर बीती हुई बातें हैं । सारग्राही लोग इन बातों से सैकड़ों भली बुरी बातें निकाल के सैकड़ों लोगों को चतुर बना सकते हैं ! सच पूछो तो पदार्थ-विद्या, जिसके कारण बड़े-बड़े विद्वान् जन्म भर दूसरे कामों से रहित होके केवल विचार करने व ग्रन्थ लिखने में संलग्न रहते हैं, जिसके कारण मर जाने पर भी हजारों वर्ष तक हजारों बुद्धिमान उनकी महिमा करते हैं, उस विद्या का मूल बालकों के और पागलों के विचार हैं । हरी-हरी डाल में लाल-लाल, पीले-पीले फूल कहाँ से आए ? पीला और नीला मिल के हरा क्यों बन जाता है ? इत्यादि प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर सोच के निकालना ही पदार्थ-विद्या है । फिर मनुष्य कहाँ जन्मा, क्या-क्या किया, क्या-क्या देखा, किस-किस से कैसा-कैसा बर्ताव रखा, इन बातों का वर्णन क्या लाभ-शून्य होगा ?

विद्या जानकारी का नाम है, फिर क्या मनुष्य का वृत्तान्त जानना विद्या नहीं है ? हमारी समझ में तो जितने मनुष्य हैं, सबका जीवन-चरित्र लेखनीबद्ध होना चाहिए । इससे बड़ा लाभ एक यही होगा कि उसकी भलाइयों को ग्रहण करके, बुराइयों से बच के, दूसरे सैकड़ों लोग अपना भला कर सकते हैं ।

हमारे देश में यह लिखने की चाल नहीं है, इससे बड़ी हानि होती है । मैं उनका बढ़ा गुण मानूँगा, जो अपना वृत्तान्त लिखके मेरा साथ देंगे । जिसके अनेक मधुर फल लेखकों को यदि न भी मिलें, तो भी बहुत दिनों तक बहुत से लोग बहुत कुछ लाभ उठावेंगे । देश-भक्तों के लिए यही बात क्या थोड़ी है ? इसमें कोई गुण या दोष घटाने-बढ़ाने का व कोई बात छिपाने का विचार नहीं है । सच्चा-सच्चा हाल लिखूँगा । इससे पाठक महोदय, यह न समझें कि किसी पर आक्षेप व किसी की प्रशंसादि करूँगा । यदि किसी स्थान पर नीरसता आ जाय तो भी आशा है क्षमा कीजिएगा, क्योंकि यह कोई प्रस्ताव नहीं है कि लेख-शक्ति दिखाऊँ, यह जीवन-चरित्र है ।

अपना जीवन-चरित्र लिखने से पहले अपने पूर्व पुरुषों का परिचय देना योग्य समझ के यह बात सच्चे अहंकार से लिखना ठीक है, कि हमारे आदि पुरुष भगवान विश्वामित्र बाबा हैं, जिनके पिता गाधि महाराज और पितामह कुशिक महाराजादि कान्यकुब्ज देश के राजा थे । पर हमारे बाबा ने राज्य का झगड़ा छोड़छाड़ के निज तपोबल से ब्रह्मऋर्षि की पदवी ग्रहण की और यहाँ तक प्रतिष्ठा पाई कि सप्त-महर्षियों में चौथे ऋषि हुए । कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि, वशिष्ठ–यह सप्तर्षि हैं । राज्य छोड़ने पर भी राजसी ढंग नहीं छोड़ा । यदि सातों ऋषियों की मूर्ति बनाई जाय तो क्या अच्छा दृश्य होगा कि तीन ऋषि इस पार्श्व में होंगे, तीन उस पार्श्व में और बाबा मध्य में । निज तपोबल से उन्होंने स्वर्ग में बहुत से तारागण एवं पृथ्वी पर बहुत अन्न और पशु भी उत्पन्न किए थे ।

यह बात अन्य मतावलम्बी अथच आजकल के अंग्रेजीवाज न माने तो हमारी कोई हानि नहीं है, क्योंकि सभी के मतप्रवर्त्तक और वंश-चालकों के चरित्रों में आश्चर्य्य कर्म पाये जाते हैं । फिर हमी अपने बाबा की प्रशंसा में यह बातें क्यों न मानें ? ईश्वर सर्व-शक्तिमान है, वह अपने निज लोगों को चाहे, जैसी सामर्थ्य दे सकता है ! भगवान कृष्णचन्द्र का पर्वत उठाना, महात्मा मसीह का मुरदे जिलाना, हजरत मुहम्मद का चन्द्रमा काटना इत्यादि यदि सत्य है, तो हमारे बाबा का थोड़ी सी सृष्टि बनाना भी सत्य है । यदि उन बातों का गुप्तार्थ कुछ और है, तो इस बात का भी गुप्तार्थ यह है कि जगत के अनेक पदार्थों का रूप, गुण, स्वभाव आदि पहिले पहिल उन्होंने सबको बतलाया था । इसीसे उस काल के लोग उन पदार्थों को विश्वामित्रीय सृष्टि, अर्थात् विश्वामित्र की खोजी और बताई हुई सृष्टि कहने लगे । यही बात क्या कम है ? भगवान रामचन्द्र जी को हमारे बाबा ने धनुर्वेद और योगशास्त्र भी सिखाया था ।

यदि आजकल हमारे भाई आकिन, माँझगाँव आदि के मिश्र इस महत्व पर कुछ भी ध्यान दें, तनिक भी विचारें कि हम किनके वंशज हैं और अब कैसे हो रहे हैं तो क्या ही सौभाग्य है !!! इनके उपरान्त कात्यायन और किलक (अक्षील ?) के सिवा और किसी महर्षि का नाम हमें नहीं मिलता, जिन्हें हम अपने पुरुषों में बतलावें । हाँ, परमनाथ (या पवननाथ) बाबा अनुमान होता है, कि तीन ही चार सौ वर्ष के लगभग हो गये हैं । वह बड़े यशस्वी थे । उनके साथ हमारे कुल का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है । कान्यकुब्जपुर (कन्नौज) छोड़ के विजयग्राम (बैजेगाँव) में कौन बाबा, किस समय, क्यों आ बसे थे, इसका पता नहीं मिलता । क्योंकि हमारे यहाँ इतिहास एवं जीवन-चरित्र लिखने की चाल बहुत दिन से नहीं रही । यदि किसी भाई के यहाँ शृंखलाबद्ध नामावली हो तो उसका मिलना कठिन है । अतः हम अपने अगले पुरुषों के साथ इससे अधिक अपना विवरण नहीं लिख सकते कि विश्वामित्र बाबा के वंश में कात्यायन बाबा के गोत्र में परमनाथ बाबा के असामी (वंशज) हैं । उन्नाव के जिले में पूर्व की ओर पाँच कोस बैजेगाँव नाम का स्थान है, वहाँ के हम मिश्र हैं ।

यद्यपि अब बैजेगाँव एक साधारण सा गाँव है, पर अनुमान होता है, किसी समय वह बड़ा दर्शनीय स्थान, विद्वानों (मिश्रों) का गाँव होगा। उसके निकट वृहत् स्थल (बेथर) और उससे कुछ ही दूर पर विग्रहपुर (बिगहपुर) गाँव है। इन विजयग्राम, वृहत्स्थल और विग्रहपुर नामक गाँवों से प्रगट होता है, कि इस प्रान्त में किसी वीर पुरुष ने अपना पराक्रम दिखाया होगा। पर यह बातें अभी तो अनुमान मात्र हैं। कोई भाई पुष्ट प्रमाण सहित लिखे तो बड़ा उपकार होगा। हमारी कुलदेवी 'गार्गी', कुलदेवता 'बूढ़े बाबू' कुल-पुरोहित 'सत्यशुक्ल, यजुर्वेद, धनुर्वेद उपवेद, शिव इष्ट देवता हैं। हमारे पिता श्री संकटाप्रसाद मिश्र, पितामह श्री रामदयाल मिश्र, प्रपितामह सेवकनाथ मिश्र, वृद्धपितामह श्रीसबसुख मिश्र हैं। इनके आगे कौन महात्मा थे, यह नहीं मालूम। हम समझते हैं कि बहुत ही कम लोग होंगे जो वृद्धपितामह के पिता का नाम जानते होंगे। फिर हमारा ही क्या दोष है, जो न लिख सके। हमारे पितामह रामदयाल बाबा के एक भाई शिवप्रसाद बाबा थे। उनके पुत्र जयगोपाल काका और रामसहाय काका हमारे पितृचरण से बड़े थे और हितचिन्तना भी बहुत करते थे। जयगोपाल काका के पुत्र रामकृष्ण दादा भी पिताजी के हितैषी और उदार पुरुष थे। उनके पुत्र शिवरतन (यह भी व्यवहार कुशल और पिताजी के भक्त थे) दूसरे रामभरोसे हैं, जिनसे भाईचारा मात्र है। रामसहाय काका के केवल एक कन्या (अनन्तदेवी) थी, वह विधवा स्वर्ग-वासिनी हुई। अतः उनका वंश उन्हीं से समाप्त हुआ। जयगोपाल काका के दूसरी स्त्री से गुरदयाल, शिवदयाल, गौरीशंकर थे। उनमें से शिवदयाल काका का वंश नहीं है, उक्त दोनों भाइयों का वंश है। पर अधिक स्नेह सम्बन्ध न होने के कारण उनकी कथा लिखना भी कागज रंगना मात्र है। अतः हम अपने निज बाबा रामदयाल मिश्र से आरम्भ करते हैं।

इनके दर्शन हमने नहीं पाये, क्योंकि हमारे पितृचरण केवल नौ वर्ष के थे, जब उन्होंने परलोक यात्रा की थी। सुनते हैं कि वे कवि थे पर उनका काव्य देखने में नहीं आया। भारत के अभाग्य से नगरों में काव्य-रसिक और कवियों के सहायक मिलते ही नहीं, जो अपना रुपया लगा के उत्तमोत्तम कविता का प्रकाश किया करते हैं उन्हें तो अभागे भारतीय हतोत्साह कर ही देते हैं। यदि एक साधारण गाँव में एक साधारण गृहस्थ का परिश्रम लुप्त हो गया तो आश्चर्य ही क्या है ?

भगवान् तुलसीदास, सूरदास आदि को हम कवियों में नहीं गिनते। वे अवतार थे कि उन्होंने छाती पर लात मार के अपनी शक्ति दिखाई है। नहीं तो कवि, पंडित, प्रेमी, देशभक्त यह तो दुनिया से न्यारे रहते हैं। इन्हें दुनियादार क्यों पूछने लगे ? हमें सोच है कि अपने बाबा की कविता प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि पिताजी नौ वर्ष की आयु में पितृहीन हुए। 14 वर्ष की आयु में उन्हें गाँव और घर छोड़ के कुटुम्ब पालनार्थ परदेश आना पड़ा। ऐसे कुसमय में कविता-संग्रह करना कैसे सम्भव था ? इससे हमें अपने पिता ही का ठीक-ठीक चरित्र थोड़ा सा लिखने की सामर्थ्य है।

हमारे पितृचरण के दो बड़े भाई और थे। (1) द्वारिकाप्रसाद काका,—यह निस्सन्तान स्वर्ग गये। (2) यदुनन्दन काका,—इनका विवाह मदारपुर के सामवेदियों के कुल में हुआ था। इस नगर के परम प्रतिष्ठित श्री प्रयागनारायण तिवारी स्वर्गवासी हमारे दादा थे, क्योंकि हमारी चाची उनके चाचा श्रीद्वारिका प्रसाद तिवारी की कन्या थीं। उनके एक पुत्र अम्बिकाप्रसाद दादा थे। वह हमारे पितृचरण के बड़े भक्त थे, पर चौदह वर्ष की अवस्था में परलोक सिधारे। हमारी दोनों चाची भी पिताजी से बड़ी प्रीति करती थीं। पर एक चाची का हमें दर्शन नहीं हुआ। दूसरी चाची सदा पुत्र की भाँति हमारे जन्मदाता को जानती थीं। पर हमारे अभाग्य से हम तीन वर्ष के थे, तभी परमधाम यात्रा कर गईं।

यह श्रीरामानुज स्वामी के सम्प्रदाय की थीं, क्योंकि इनके पितृ-कुल का यही धर्म था। इसी से हमारे घर में बहुत सी रीतें हमारी चाची के पितृ-कुल की प्रचलित हुईं। मेरा नाम भी उसी ढंग का हुआ। हमारे पिता नौ वर्ष के थे, तब निज पिता से वियुक्त हुए थे। फिर थोड़े ही काल में उनकी माता भी बैकुण्ठ गईं। अतः हमको यह लिखने का गौरव है कि हमारी चाची के हम भी वात्सल्य-पात्र थे, हमारे पिता भी। यह महात्मा बाल्यावस्था में पिता-माता के वियोग से घर की निर्धनता के कारण जगत्-चिन्ता में उसी समय फँस गये, जिस समय खेल-कूद के दिन होते हैं। विजयग्राम से डेढ़ कोस पर मवैया गाँव है। वहाँ एक पंडित दयानिधि बाबा रहते थे, उनसे पढ़ने लगे। वर्ष दिन पढ़ा, फिर एक पेड़ पर से गिरे, पाँव टूटा नहीं, पर लड़खड़ाने लगा। इससे कई महीने पड़े रहे, फिर कानपुर चले आये। यहाँ श्रीशिवप्रसाद जी अवस्थी और श्रीरेवतीराम जी त्रिपाठी (प्रयागनारायण जी के पिता) ने उन पर बड़ी कृपा-दृष्टि रक्खी।

कुछ दिन पीछे अवध के बादशाह श्री गाजीउद्दीन हैदर के दरोगा जनाब आजमअली खाँ साहब के दीवान श्री महाराज फतेहचन्द जी के यहाँ नौकर हुए और अवध प्रान्त के इब्राहीमपुर नामक गाँव में काशीराम के वाजपेयी वंश में विवाह किया। हमारी माता श्रीमुक्ताप्रसाद जी वाजपेयी की कन्या थीं। यह ब्याह और यह नौकरी इन्हें ऐसी फलीभूत हुई कि*…"

* पं० प्रताप नारायण मिश्र द्वारा अपने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में वर्ष 1888 ई० के अंकों (खंड 5, संख्या 2, 3 और 5) में 'प्रताप-चरित्र' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखने का प्रयास किया गया था। इसमें उन्होंने भूमिका तथा पूर्वजों के वंश परिचय तथा पिता के जीवन के कुछ अंश तक ही प्रकाशित किया था। अज्ञात कारणों से आगे अपने पितृचरण के जीवन-चरित्र का शेष भाग तथा अपना परिचय प्रकाशित नहीं किया। हिन्दी-साहित्य में विधिवत आत्मकथा लिखने का यह प्रथम प्रयास था जोकि अपूर्ण ही रहा।—सं०
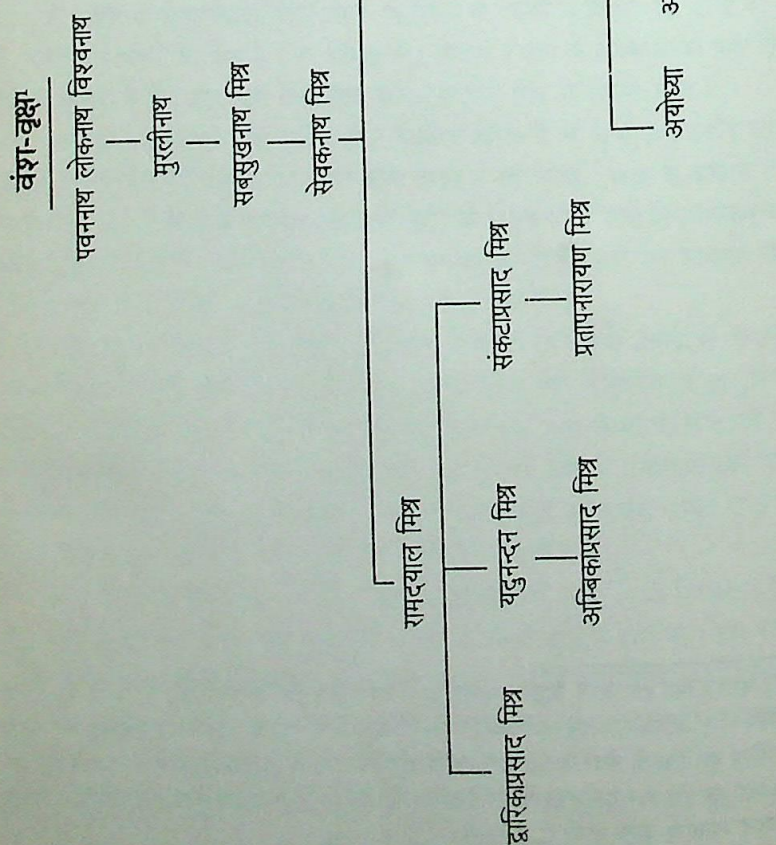
1. 'प्रताप-चरित्र' में दिये गये नामों के आधार पर निर्मित

'ब्राह्मण' मासिक पत्र

(एक विहंगम दृष्टि)

(संस्थापक)

पंडित प्रतापनारायण मिश्र

(ज़न्म-24 सितम्बर, 1856 ई० मृत्यु-6 जुलाई, 1894 ई०)

निवास-नौघड़ा, कानपुर स्थित वह मकान जहां उनकी पत्नी ने शिवजी का मंदिर बनवाया है तथा वर्तमान में उसका नं० 49/71 है।

('ब्राह्मण' सम्पादक)

पं० प्रतापनारायण मिश्र

(15 मार्च, 1883 ई० 'ब्राह्मण' के जन्म से जुलाई, 1894 अपनी मृत्यु पर्यन्त)

('ब्राह्मण' पत्र का सोद्देश्य संकेत चिन्ह)

अर्द्धचन्द्र के ऊपर '1' का अंक

('1' अर्थात एकता और अर्द्धचन्द्र अर्थात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रीति-नीति)

('ब्राह्मण' पत्र का मूल मंत्र)

'प्रेम एवपरो धर्मः'

('ब्राह्मण' पत्र का आदर्श)

'शत्रोरपिगुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि।'

('ब्राह्मण' पत्र का सिद्धान्त)

नीति निपुणनर धीर वीर कछु सुजस कहौ किन।
अथवा निन्दाकोटि करौ दुर्जन छिन ही छिन॥
संपतिहू चलि जाहु रहौ अथवा अगणित धन।
अबहि मृत्यु किन होहु, होहु अथवा निश्चल तन॥
पर न्यायवृत्ति को तजत नहिं, जो विवेक गुणज्ञाननिधि।
यह संग सहायक रहत नित, देतलोक परलोक सिधि॥

राजर्षि भर्तृहरि जी के नीति श्लोक का अनुवाद

खण्ड 4 संख्या 5 से भर्तृहरि जी का नीतिश्लोक अपने इस मूल रूप में छपने लगा था—

निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्तुवन्तु ।
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदन्नधीराः ॥

'ब्राह्मण' कार्यालय

1. बाबू गोपीनाथ खन्ना का मकान

सवांई सिंह का हाता, कानपुर (मार्च, 1883 ई० से नवम्बर, 1883 ई० तक)

2. ब्राह्मण-कुटीर

पं० प्रतापनारायण मिश्र का नौघड़ा कानपुर स्थित वह मकान जहां आजकल किशोर चन्द कपूर हींग वाले की दुकान है तथा वर्तमान समय में मकान नं० 49/73 है ।

(दिसम्बर, 1883 ई० से जुलाई, 1891 ई० तक)

3. खड्ग-विलास प्रेस

बाँकीपुर, पटना, बिहार (अगस्त, 1891 ई० से जुलाई, 1894 के कुछ माह बाद तक)

'ब्राह्मण' के अवैतनिक मैनेजर

1. श्री गोपीनाथ खन्ना

खण्ड 1 संख्या 1 से खण्ड 1 संख्या 8 तक

(15 मार्च, 1883 से 15 अक्टूबर, 1883 तक)

2. पं० मनोहर लाल मिश्र

खण्ड 1 संख्या 9 से खण्ड 3 संख्या 12 तक

(15 नवम्बर, 1883 से 15 फरवरी, 1886 तक)

सम्पादक स्व० मिश्र जी की अस्वस्थता के कारण मार्च, 1886 से जुलाई, 1887 तक 1 वर्ष 5 माह 'ब्राह्मण' पत्र बंद रहा ।

3. पं० बद्रीदीन शुक्ल

खण्ड 4 संख्या 1 से खण्ड 5 संख्या 2 तक

(15 अगस्त, 1887 से 15 सितम्बर, 1888 तक)

4. बाबू ब्रजभूषण गुप्त

खण्ड 5 संख्या 3 से खण्ड 7 संख्या 2 तक

(15 अक्टूबर, 1888 से 15 सितम्बर, 1890 तक)

5. श्री राधा मोहन अग्रवाल

खण्ड 7 संख्या 3 से खण्ड 7 संख्या 12 तक

(15 अक्टूबर, 1890 से 15 जुलाई, 1891 तक)

6. महाराज कुमार ठाकुर रामदीन सिंह

द्वारा मैनेजर खड्ग-विलास प्रेस, बाँकीपुर (पटना) बिहार

खण्ड 8 संख्या 1 से खण्ड 10 संख्या 12
(अगस्त, 1891 से जुलाई, 1894 मिश्र जी की मृत्यु के बाद जितने दिन पत्र और निकला हो।)

'ब्राह्मण' के मुद्रक

1. नामी-प्रेस (लीथो-प्रिंटिंग) कानपुर

खण्ड 1 संख्या 1 (मार्च, 1883)

2. बाबू अमीर सिंह द्वारा हरिप्रकाश यंत्रालय

मुहल्ला-नैपाली खपरा, बनारस
खण्ड 1 संख्या 2 से खण्ड 1 संख्या 9 तक
(अप्रैल, 1883 से नवंबर, 1883 तक)

3. श्री सीताराम द्वारा शुभचिन्तक प्रेस, शाहजहाँपुर

खण्ड 1 संख्या 10 से खण्ड 2 संख्या 5 तक
(दिसम्बर, 1883 से जुलाई, 1884 तक)

4. शुभचिन्तक प्रेस, कानपुर

खण्ड 2 संख्या 6 से खण्ड 3 संख्या 1 तक
(अगस्त, 1884 से मार्च, 1885 तक)

5. मर्चेण्ट प्रेस, कानपुर

खण्ड 3 संख्या 2 (अप्रैल, 1885)

6. मुंशी गंगा प्रसाद एंड ब्रादर्स प्रेस, लखनऊ (ब्रादरान् प्रेस, लखनऊ)

खण्ड 3 संख्या 3 से खण्ड 3 संख्या 10 तक
(मई, 1885 से दिसम्बर, 1885 तक)

7. पं० गयादीन बाजपेयी द्वारा भारत भूषण यंत्रालय, शाहजहाँपुर

खण्ड 3 संख्या 11 व 12 (जनवरी व फरवरी, 1886)

(एक वर्ष पाँच माह पत्र बंद रहा)

8. शुभचिन्तक प्रेस, कानपुर

खण्ड 4 संख्या 1 से खण्ड 6 संख्या 2 तक
(अगस्त, 1887 से सितम्बर, 1889 तक)

9. हनुमत प्रेस, कालाकाँकर

खण्ड 6 संख्या 3 से खण्ड 6 संख्या 11 तक
(अक्टूबर, 1889 से जून, 1890 तक)

10. महाराज कुमार बाबू रामदीन सिंह द्वारा
मैनेजर खड्ग-विलास प्रेस, बाँकीपुर (पटना) बिहार

खण्ड 6 संख्या 12 से अंत तक
(जुलाई, 1890 से जुलाई, 1894 और आगे)

अखबारों का धर्म

खास अपने शहर की खबर, और एडीटर हो के, झूठी छापे ! यह बात का बतंगड़ नहीं तो और क्या है ?···अन्त में हम अपने सहयोगी (कानपुर से ही प्रकाशित उर्दू पत्र 'आलमे तश्वीर') को सम्मति देते हैं कि अखबारों का धर्म मेल बढ़ाना और सद्गुण फैलाना है । इससे हमारे इस बचन पर ध्यान दें कि "हिन्दू मुसलमान दोनों भारत माता के हाथ हैं । न इनका उनके बिना निबाह है न उनका इनके बिना । अतः सामाजिक नियमों में एक-दूसरे के सहायक हों । इसमें दोनों का कल्याण है । कोई दाहिने हाथ से बांया हाथ अथवा बाएं से दाहिना हाथ काट के सुखी नहीं रह सकता ।"

पं० प्रतापनारायण मिश्र

आलमे तश्वीर (1) शीर्षक निबन्ध से उद्धृत

ब्राह्मण खण्ड 4, सं० 9 (15 अप्रैल सन् 1888 ई०)

•

'ब्राह्मण' नाम का अभिप्राय

…आठ वर्ष में एक बच्चा भी जान सकता था पर खेद है आपकी जानकारी पर कि इतने दिनों में इतना भी नहीं जाना। खैर, अब जान रखिए कि इसका सम्पादक 'ब्राह्मण' है और उसका कविता सम्बन्धी नाम (तखल्लुस) भी यही (बरहमन) है, इससे नाम रखते समय व्यर्थ की सोच विचार न करके इसी नाम से काम लेना उचित समझा गया था। जो लोग ऊटपटांग, लम्बा-चौड़ा, शेखी से भरा हुआ नाम बहुत सोच साच के रख लेते हैं पर कार्यवाही कुछ नहीं दिखा सकते उनका ढंग इस पत्र के सम्पादक को नापसन्द है। हम यदि अपने पत्र का नाम 'आर्यावर्त' या 'देशहितैषी' इत्यादि रखते तो कभी एक सम्प्रदाय का पक्ष न लेते वरंच समस्त देश के सच्चे हक पर ध्यान रखते।

और सुनिये हिन्दू जाति का समयानुकूल शुभचिन्तन सदा से इसी नाम पर निर्भर रहा है। फिर जिस पत्र का यही एक मात्र उद्देश्य हो उसके लिये और कौन नाम युक्ति युक्त हो सकता था ?

हां, इस नाम के साथ वेद और तदनुकूल ग्रन्थों का भी अवश्य सम्बन्ध है। पर इस सम्बन्ध से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि केवल मुख से वेद-वेद चिल्लाना पर तदनुकूल उपदेश के समय 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' का आश्रय लिया जाय। जो लोग वेद का तत्त्व जानते हैं वह हमारे मूल मंत्र 'प्रेम एव परोधर्मः' को कदापि वेद के विपरीत नहीं कह सकते क्योंकि प्रेम के बिना वेद ही नहीं, परमेश्वर तक की महिमा नहीं स्थिर रह सकती।…

भैया रे, बाँकीपुर वाले 'ब्राह्मण' के उपदेश समझने को समझ चाहिए, नहीं तो आज पुराण हैं तो कल वेद तक सभी जटल काफिए जंचने लगेंगे। क्योंकि इस 'ब्राह्मण' का मूल मंत्र ही जिन्हें नहीं रुचता उनसे यह आशा कौन कर सकता है कि अपने देश जाति की कोई भी बात श्रद्धेय रहेगी ?

पं० प्रतापनारायण मिश्र

'ब्राह्मण'—खण्ड 8, संख्या 10 (मई, 1892 ई०)

समझदार की मौत है

लोग कहते हैं "पढ़े ते मनई बैलाय जात है ।" सो ठीक भी जान पड़ता है कि "नहीं कुछ वास्ता लेकिन हरारत आ ही जाती है ।"⋯अब रोजमर्रा की बातें देखिए । कहीं किसी पर किसी दुराचारी विदेशी ने अत्याचार किया, यहां क्रोधाग्नि भड़की । किसी को कोई दुख पड़ा यहां आंसू भर आये । यह भी न हुआ तो कोई पुस्तक ही लिये पढ़ते जाते हैं, रोते जाते हैं । किसी में कोई दुर्व्यसन देखा, आप सोच करने लगे । कहां तक कहिए, जहां समझने की शक्ति हुई कि बस बात 2 में चिंता । चित्त और चिंता का कुछ ऐसा सम्बन्ध है कि जुदे होते ही नहीं । और चिंता की तारीफ शास्त्रकारों ने की ही है कि "चिताचिंतासमाख्याता तस्माच्चिंतागरीयसी ।" एक बिन्दु अधिक है न । "चिता दहति निर्जीवं चिंता जीवषु तंतनु" क्या ही सत्य है । शरीर की चिंता रही, घर की रही, सब पर तुर्रा देश की चिंता । खूशठ दास यह भी नहीं पूछते कि "क्यों मरे जाते हो ।" पर देशभक्त इसलिए जीव होमे देते हैं कि इनका निस्तार हो । इसी से कहते हैं कि समझदार की मौत है ।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

'ब्राह्मण'—खण्ड 2, संख्या 5 (15 जुलाई, 1884 ई०)

वर्षारम्भ

अद्वितीय सर्वशक्तिमान भक्तवत्सल भगवान के युगल चरणारविन्द को अनेकानेक धन्यवाद है कि उसकी अपरिमित अनुग्रह से हम द्वितीय वर्ष में प्रवेश करते हैं। फिर क्यों न वह दीनबन्धु दयासिन्धु तो महा महा चांडालों नास्तिकों तक का पालन पोषण करता है, हमारी सुध कैसे न ले, हम तो उसके ठहरे। वह ब्रह्म हम ब्राह्मण, वह जगतपिता हम जगतहितैषी, वह प्रेमस्वरूप हम प्रेमावलम्बी, हमसे उससे तो अगणित सम्बन्ध हैं। यदि वही हमको न अपनावै तो हमारा कहीं किसी प्रकार कभी निर्वाह हो न सके। हमीं ऐसे दुर्बुद्धी हैं जो इतना जानकर भी उसको भूल जाते हैं उसके असंख्य उपकारों की संती उसका धन्यवाद भी नहीं करते। नहीं 2 इतना हममें सामर्थ्य ही नहीं है कि उस अनन्त महिम का धन्यवाद कर सकें। अस्तु तो अपने प्रेमास्पद वर्ग का धन्यवाद भी अति उचित है। सबसे पहिले सम्पादक महाशयों को, विशेषतः उचित वक्ता और भारतमित्र के सम्पादकों को धन्यवाद है जिन्होंने यथोचित मित्रता का परिचय दिया, किसी प्रकार का द्वैत भाव समझा ही नहीं, हर बात में सहायक रहे। आशा है कि ऐसी ही कृपा दृष्टि सदैव रक्खेंगे। इसके अनन्तर श्रीयुत पूज्यपाद पंडितवर बद्रीदीन जी शुक्ल महोदय को जहां तक धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है, क्योंकि वही तो वास्तव में ब्राह्मण के जन्मदाता हैं। उन्हीं की आज्ञा के बल से तो हमारी रुचि इस पत्र के प्रकाश करने में दिन दूनी रात चौगनी होती रही है और होती रहती है। और लाला छोटे लाल, गया प्रसाद साहब तथा बाबू वंशीधर साहब को धन्यवाद न दें तो कृतघ्नता के दोषी ठहरते हैं। क्योंकि पहिले पहिल इन्हीं महाशयों के सहाय से हमारा उत्साह द्विगुणित हुआ। क्यों न हो, सृष्ट्यारम्भ से आज तक ब्राह्मण के एक मात्र सहायक क्षत्रियों के अतिरिक्त है दूसरा कौन ? हमारे धन्यवाद और आशीर्वाद के सच्चे आधार तो यही हैं। हमारे पाठक कहते होंगे, सबको तो धन्यवाद आशीर्वाद हैं पर हमको क्या लाभ ? अरे यार, तुम्हारे ही लिये तो ब्राह्मण का जन्म है। तुम्हीं तो इसके जीवन हो। तुम न हो तो यह सब अलल्ले तलल्ले भूल न जाते ? यह न कहना कि फिर अलल्ले तलल्लों से हमें क्या ? तुमको हर महीने इधर उधर की गपशप, ताजे ताजे लेख और जो कहीं दो चार बातें भी गाँठ बाँधो तो फिर क्या, दोनों हाथ लड्डू हैं। तुम्हीं तुम तो दिखाई देने लगो। खैर इन शेखचिल्ली के से विचारों को कष्टसाध्य और देरतलब समझो तो अभी कोरे 2 आशीर्वाद ही लीजिए—जब तक गंगा जमुना में पानी रहै, जब तक हिन्दुओं में फूट रहै, जब तक निरे पंडितों में पेटहलपन रहै, जब तक महाजनों में वेश्या भक्ति रहै तब तक तुम चिरजीव रहो, बशर्ते कि हमको भी चिरजीव रक्खो। स्मरण रहै कि दोनों हाथों बिना ताली नहीं बजती। परमेश्वर करे तुम्हारे दूध पूत अन्न धन किसी बात की न्यूनता न रहे। पर निरी हमारी बातों ही में न आ जाना। दूध के लिये गोबध निवारण, पूत के लिये वाल्य विवाह दूरीकरण, अन्न के लिये कृषि विद्या की उन्नति, धन के लिये समुद्र जात्रा एवं शिल्प शास्त्राभ्यास भी करना पड़ेगा। क्यों ? कैसा आशीर्वाद है ? इससे भी तृप्ति न हो तो धन्यवाद

के लिये भी हाथ फैलाइये । वाह साहब, बड़े भलेमानुस हो ! वाह वाह, आपकी क्या बात है । लो अब तो प्रसन्न हो जाना चाहिये, और क्या ! ये बात !!! हम तो बस इतने में ही निहाल हैं । हमारी तो केवल यही चाहना है कि हमारे सब ग्राहक आनन्दित रहें । जो मन लगा के पत्र देखते हैं और दक्षिणा श्रद्धापूर्वक हमारी भेंट करते हैं वे तो आनन्द हुई हैं, वरंच उनकी दया से ब्राह्मण देवता भी आनन्दपूर्वक अपना धर्म निभा रहे हैं । जिन्होंने अब तक रुपये नहीं भेजे उन्हें भी प्रसन्न रक्खे । जाते हैं तो कहां जाते हैं, कभी न कभी पढ़ेंहीगे । पढ़ेंगे तो कुछ देश हित सीखेहींगे । देशहित समझेंगे तो देशी पत्र की सहायता कहां तक न करेंगे ? रहे वे जिन्होंने छः छः, आठ आठ महीने ब्राह्मण मंगाया फिर फेर दिया और आठ दस आना के लिये देवाला निकाल बैठे वे भी धन्यवाद के योग्य हैं क्योंकि उनसे हमें यह उपदेश मिला कि All is not gold that glitters । पीली 2 पगड़ी, लाल लाल गाल, मोटे 2 तोंद वाले सभी ईमानदार नहीं होते । जो व्यवहार के सच्चे होते हैं वे झूठी बनावट नहीं रखते । यहां क्या है, हमने समझ लिया दमड़ी की हड़ियां फूटी, कुत्ते की जात पहचानी । परमेश्वर करें वे भी प्रसन्न रहें, चैन करें इमली के पत्ते पर । जो रुपया धर्मोपार्जित नहीं है, हरामख्वारों के हिस्से का है, हमें न चाहिये । यहां तो देशहितैषी विद्या रसिकों के घर में कमी क्या है,जो हम आज बरस 2 के दिन मनहूसों का झिखना झिख के साल भर की नसेठ करें ? हमारे राम तो मंगल पाठ करते हैं और मंगलमय सच्चिदानन्द के चरण कमल का स्मरण करके अपने कर्तव्य पर आरूढ़ होते हैं ।

मंगलपाठ (भूत शांति के लिये)

ओऽम् द्यौःशांतिः पुतलीघरांजन धूमाच्छादितांतरिक्षः शांतिः कबरिस्तानस्य पृथिवी शांतिः सोडावाटरः शांतिः क्लोरोफार्मः शांतिर्गांजा भांगः शांतिर्निरऽपंडिताः शांतिर्मुहमदेशाः सर्वार्यकुलबंचकाः शांतिः शांतिरेवशांतिः सामाशांतिरेधिः ।। 1 ।।

ओऽम् शराबः शांतिर्रण्डिको शांतिर्रनेचरयल क्राइमः शांतिः पादरियाः शांतिमौलवियाः शांतिः फूटः शांतिर्लूटः शांतिरालस्यः शांतिः संतोषः शांतिः, सर्वसत्यानाशी ढंगाः शांतिः सामाशांतिरेधिः । ओऽम् शांतिः 2 शांतिः ।

लबेद संहिता अ० म०

मंगलाचरण (प्रेम सिद्धान्त का)

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मनमोर ॥ 1 ॥
जेहि लहि फिरि कछु लहन की आश न जिय मे होय ।
जयति जगत पावन करन, प्रेम वरन ये दोय ॥ 2 ॥
हरन दोष दुर्व्यसन दुख, करन सकल शुभ छेम ।
श्री परमेश पवित्र बपु, नमों परम प्रिय प्रेम ॥ 3 ॥
तजि अनैक्य आग्रह अशुभ भंजि निज पूर्वज नेम ।
हे प्रभु आरज बंधु मम, करहिं परस्पर प्रेम ॥ 4 ॥
दहहिं दुरितदुख सुख लहहिं, सब भारत संतान ।
ब्राह्मण आशिश देत नित सफल करहु भगवान ॥ 5 ॥

ब्राह्मण–खं० 2, सं० 1 (15 मार्च, 1884 ई०)

विज्ञापन

दाता जजमान ! प्यारे पाठक !! अनुग्राहक ग्राहक !!!

चार महीने हो चुके 'ब्राह्मण' की सुधि लेव ।
गंगा माई जै करैं हमें दक्षिणा देव ॥ 1 ॥
जौ बिन मांगे दीजिए दुहुंदिश होय अनन्द ।
तुम निचिंत हो हम करैं मांगन का सौगंद ॥ 2 ॥
सदुपदेश नित ही करैं मांगैं भोजन मात्र ।
देखहु हम सम दूसरा कहां दान कर पात्र ॥ 3 ॥
तुर्तदान जो करिय तौ होय महाकल्यान ।
बहुत बकाये लाभ क्या समुझ जाव जजमान ॥ 4 ॥
रूप राज की कगर पर जितने होंय निशान ।
तितै वर्ष सुख सुजस जुत जियत रहौ जजमान ॥ 5 ॥

ब्राह्मण–खण्ड 3, संख्या 5 (15 जुलाई, 1884 ई०)

तृतीय वर्षारंभे मंगलाचरणम्

धन्य 2 त्रैलोक्य नाथ त्रैताप विनाशन ।
धन्य 2 त्रैवर्ग मुक्त हृदि प्रेम प्रकाशन ।।
धन्य 2 त्रैगुण्य रहित त्रैलिंग्य विधाता ।
धन्य 2 त्रैकाल एक रस त्रैकृति ज्ञाता ।।
धन्योसि प्राण प्रियतम प्रभो, त्रिदश पूज्य बुध वन्द्य पद ।
ब्रह्मण्य देव ब्राह्मण शरण त्रितिय वर्ष मधि हर्षप्रद ।। 1 ।।

उस त्रिभुवन नायक को असंख्य धन्यवाद है जिसकी कृपा से आज हम तृतीय वर्ष में प्रवेश करते हैं । यद्यपि ब्राह्मण देवता अपने जन्मदिन ही से अपने यजमानों को हंसाने, सदुपदेश सुनाने और सर्वोन्नति-विधायक प्रेम मार्ग दिखाने के ऊपर मूंड़ मुड़ाये फिरते हैं, पर आज तो लोकरीत्यानुसार मुंडन का दिन ही ठहरा । होली की भीर है । तीसरे वर्ष का आरम्भ है । क्या अपना कृत्य न करैंगे ? करैं और फिर करैं नहीं तो पाठक महाशय तीन कोने का मुंह न बनाने लगैंगे ? अच्छा तो प्रिय ग्राहकगण ! लीजिए धन्यवाद, आशीरवाद और स्नेह संबाद, यह तीनों आपकी भेंट हैं । क्यों पसंद आए ? ह ह ह कैसी शीघ्र हाथ पसार दिया ! स्मरण रहे कि सबके लिये नहीं हैं । आप लोगों के नाम में तीन अक्षर हैं । पहिले उनका अर्थ समझ लीजिए फिर तीनों आपस में बाँट लीजियेगा । पहिले अक्षर है 'पा' जिससे प्रयोजन है पालन करने वाला, अर्थात् पत्र को रुचिपूर्वक पढ़ना, दूसरों को उस्का तात्पर्य विदित करना और ठीक समय पर दक्षिणा भेजकर वर्ष भर के लिए निर्द्वंद हो जाना । पत्र का निर्वाह होता गया, उनका उत्साह बढ़ता गया, कैसा परस्पर पालन हुआ ? ऐसों के लिए हमारा धन्यवाद है वरंच उपरोक्त तीनों उन्हीं के लिए हैं । दूसरा अक्षर 'ठ' जिस्का अर्थ है ठगई करने वाला अर्थात एक पोस्टकार्ड लिख भेजा 'कृपा करके मेरे नाम भेजा करो' वा मिल गए तो 'हमको भी पत्र दिया करो ।' दिया करैंगे । कपड़ों से भलेमानस जान पड़ते हो, बोली बानी से रसिक जंचते हो, हम अन्तरजामी थोड़े ही हैं कि तुम्हारा आंतरिक देवालियापन जान लें । जहाँ आठ दस महीने हो गए पत्र लौटाल दिया । लिख दिया— 'लेना मन्जूर नहीं है' । पहिले क्या झख मारने को मंगाया था ? झूठे, बेईमान, उठाईगीर । क्या यह ब्राह्मण क्षत्रियों का धर्म है ?, नहीं प्रच्छन्न चोरों का, जिसका धर्म एक रुपए पर डिग गया । अंगरेजी राज्य न हो तो ऐसे ही लोग डाका मारैं । ऐसी ही बुद्धि वाले तो पराए लड़कों का गला घोंट के गहना उतार लेते हैं । भला ऐसों के लिए हमारे पास क्या है सिवा बीच वाले शब्द (अर्थात आशीरवाद) के कि 'खुसी रहौ जजमान नैन ये दोनों फूटैं' जिसमें कोई समाचार पत्र देखने को जी न चाहे, न हमारे सहयोगियों की हानि हो । और 'राह चलत गिर पड़ौ दांत बत्तीसौ टूटैं' जिसमें तकाजा करने पर खीस काढ़ के 'सुध नहीं रहती' न कहो । नहीं 2 आज वर्षारम्भ की खुशी में हम और भी देंगे—बढ़ती रहै हमारे प्यारे 'भारत

जीवन' की जिन्होंने प्रण किया है कि 15 अप्रैल तक सब हिन्दी पत्रों के सारे नादिहंद ग्राहकों को गधे की सवारी, नील का टीका और बूक का अभिषेक यह तीनों दिये जायंगे जिसमें उन्हें तीनों तिरलोक दिखाई देंगे। अब भी न समझ जायं तो सचमुच तीन अक्षर (धिक्कार) तो उनके भाग ही में हैं हम क्या करें। पाठक शब्द में तीसरा अक्षर 'क' है। उसका तात्पर्य है कर्म करने वाला, अर्थात रुपया देके पत्र को पढ़ ही नहीं डालते कुछ उस्के अनुसार करते भी हैं। कुछ रुपया नागरी प्रचार में, कुछ काल परोपदेश में, कुछ श्रम परस्पर प्रेम प्रबर्द्धन में व्यय करते हैं। उनके लिए हम क्या परमेश्वर भी धन्यवाद और आशीर्वाद करैगा। संसार में त्रिवर्ग अर्थात धर्म्मार्थ काम अथच अन्त में नित्यानन्द उन्हीं के हेतु है। सच तो यह है कि कुछ करने ही से कुछ होता है। कोरी बातों में तीन काने के अतिरिक्त क्या धरा है ? वही ढेकुली के तीन पात। अस्तु तौ हम भी बातें बनाना छोड़ के अपना कर्तव्य पालन करैं। क्यों प्यारे पाठक, करैं न ? ह ह ह ? ? ? औऽम् तद सत् नमम्त्रे देव्यै।

श्री कलिराजउवाच

ब्राह्मणा नाम्महा बांभन् (बांइति भनति) शठानांचमहाशठः।
देविनांच महादेवी माननीया सदा बुधैः ॥ 1 ॥
देबी 2 देहिबी विदेहिबो बीत मंत्रकं।
मद्भक्तानांमुखे नित्यं रहितब्य प्रयत्नतः ॥ 2 ॥
पूजयंति महाशक्तिं बुढ़वाः पोप बंचिताः।
तस्य वै गुप्त तात्पर्य्यहं मन्येन दीगरः (दूसरा) ॥ 3 ॥
काले हिंदुन की प्यारीं काली बोतल बासिनीं।
मद्योपनाम धात्रीं तां महाकाली मुपास्महे ॥ 4 ॥
तुच्छानां तुच्छ चित्तानां राजा बाबू बनाइनीं।
खुशामदेति विख्यातां महालक्ष्मीं भजाम्यहं ॥ 5 ॥
कुछ का कुछ करणे देयं जालिनीं (जाल) संयुक्तः कायथ प्रियां।
बी उर्दू इति मशहूरां महाबाणीं स्मरामहे ॥ 6 ॥
महा देब्या शठकं दिव्यंयः पठेच्छृणुयादपि।
कर्मणी धर्मतः शर्मांन् मुक्तमाप्नोति वैध्रुवम् ॥ 7 ॥
सर्वोन्नतिकरं पुण्यं सर्व सिद्धि विधायकं।
गोपनीयमिदंस्तोत्रं सिब्लाइज़डै महात्मभिः ॥ 8 ॥

इति श्री कालिकाल तंत्रे उन्नीसवीं सद्दी कलिराज संवादे त्रिदेव्याष्टकं समाप्तम्।
खैर यह तो होली का उत्तर था, सड़े बुड्ढों का ब्यौहार था। अब सच्चा 2 मंगलपाठ हो।

मंगलपाठ

नमो भगत वत्सल सुखद सबहि भांति भजनीय।
जगत प्राणपति अति सुभग परमईश रमणीय ॥ 1 ॥

अकथनीय आनंदमय सहृदय जन के प्रान ।
शुभ शोभानिधि परम प्रिय नमो प्रेम भगवान ॥ 2 ॥
परम पूज्य प्रेमीन के सुहृद सखा सुखकंद ।
जग दुखहर शिवसीसमणि नमो देव हरिचंद ॥ 3 ॥
उरपुर निज परकाश करि संसय सकल नशाव ।
हे प्रभु आरज बंधु कहं प्रेम पंथ दरशाव ॥ 4 ॥
सिंखहि नागरी नागरी नागर बनहिं सुलोय ।
ब्राह्मण की आशीष ते घर 2 मंगल होय ॥ 5 ॥
ओऽम् धर्म । धर्म । धर्म । प्रेम ॥ प्रेम ॥ प्रेम ॥
शांति । शांति ॥ शांति ॥।

'ब्राह्मण'–ख० 3, सं० 1 (15 मार्च, 1885)

एक

…पाठक ! क्या तुम्हें सदा 'ब्राह्मण' के मस्तक पर '1' का चिन्ह देख के उसका महत्त्व कुछ अनुभव होता है । तो फिर क्यों नहीं सब झगड़े छोड़ के सत्‌चित्त से एक की शरण होते ? क्यों नहीं एक होने और एक करने का प्रयत्न करते ?

ब्राह्मण–15 जून, 1889

पं० प्रतापनारायण मिश्र

द्वारा लिखित लेख 'एक' का अंश

वर्षारम्भ (6)

छबि सागर नागर नवल सब गुन गन आगार ।
छैल छबीले रसिक वर प्रेमिक प्रान अधार ॥ 1
चार वेद छह शास्त्रवित नहिं पावहिं तव पार ।
का तव महिमा कहि सकैं, हम मतिमन्द गँवार ॥ 2
करहिं यहै अति धृष्टता, छमियो छमा निकेत ।
महा अपावन बदन ते नाम तुम्हारो लेत ॥ 3
हाड़ मास कफ कुबच छल परिनन्दा को धाम ।
यह मुख कब यहि योग है, लेहि जु तुम्हारो नाम ॥ 4
तदपि नाथ अपनी गरज अरज करहिं तजि लाज ।
ब्राह्मण की रक्षा करहु छठे बरस महाराज ॥ 5
जो हमरी करतूति कर करिहौ कछू विचार ।
तो कहुँ कैसेहु छनहु भरि नहि निरबाह हमार ॥ 6
अन्तरजामी आप तुम छिप्यो कहा तुम पाहिं ।
तव करुणा बल तजि इहां एकहु लच्छन नाहिं ॥ 7
तन निरबल मन अति अथिर, धन नाते तव नाम ।
केवल तुम्हरे आसरे चलत अहैं सब काम ॥ 8
करत रहैं निज हाथ हम बदि बदि बद व्योहार ।
पै हमहूँ सों अधिन को, तुम नित करत संभार ॥ 9
निज दासन के कबहु तुम लखत न काज कुकाज ।
सदा निबाहत नाथ तुम बाँह गहे की लाज ॥ 10
एकहु छिन झूठहु जु तुम गहो न्याय की चाल ।
तौ न जानिये कौन धौं होय हमारो हाल ॥ 11
पै यासों हम डरत नहिं तुम हो दया निधान ।
जनम दिवस ते आजु लगि लखे अमित परमान ॥ 12
हम अगनित औगुन किये तहूँ गनें तुम नाहिं ।
किये अमित उपकार नित, हम सों छिन छिन माहिं ॥ 13
याही ते अति ढीठ ह्वै संक सकुच सब खोय ।
करत रहे नित जाचना जो जिय में रुचि होय ॥ 14

असन बसन इत्यादि सब भोगहिं तव परसाद ।
केवल ब्राह्मण हित चहैं श्री मुख आशीर्वाद ।। 15
चिरजीवी कारज कुशल करहु याहि सब रीति ।
जग जन याके वचन गहिं करहिं परस्पर प्रीति ।। 16
भारत की आरत दशा बेगि जाय पाताल ।
सुख सनेह छायो रहै सबहि ठौर सब काल ।। 17
निज भाषा निज देश हित वारें मन धन प्रान ।
रहहिं प्रेम मद मत्त सब भारत के संतान ।। 18
भारत शशि को रूप धरि तुम जु प्रकाश्यो तत्त्व ।
दरसावहु सब कहँ सबिधि वाको दिव्य महत्त्व ।। 19
ब्राह्मण द्वारा प्रेम पथ गहैं सबै तजि भाँति ।
रहै पूरि सब दिशि सदा धर्म प्रेम शुभ शान्ति ।। 20 नेति०

ब्राह्मण–खण्ड 6, संख्या 1 (15 अगस्त सन् 1889 ई०)

जागो भाई जागो

जागो भाई जागो रात अब थोरी ।
काल चोर नहिं करन चहत है जीवन धन की चोरी ।।
औसर चूके फिर पछतैहो हाथ मींजि सिर फोरी ।
काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी ।।
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिंता ते मुख मोरी ।
आगे जामें बनै सो कीजै करि तन मन इकठौरी ।।
कोऊ काहू को नहिं साथी मात पिता सुत गोरी ।
अपने करम आपने संगी और भावना भोरी ।।
सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी ।
नाहिं तु फिर "परताप हरी" कोउ बात न पूछिहि तोरी ।।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

सप्तम् वर्षारम्भ

जयति सप्त ऋषि वंदनित, सतचित आनँदकंद ।
सत्य सनेह सुरूप शुचि शोभामय स्वच्छन्द ॥ 1 ॥
जय जगदीश दयानिधे जय जय जन रखवार ।
जय जय जय सब सुख भरन, सेवत सातहु बार ॥ 2 ॥
धन्य नाथ ! धनि 2 प्रभो धनि धनि धनि मम स्वामि ।
सप्त पुरी पूजित परम, पदहि नमामि नमामि ॥ 3 ॥
आज कृपा सों रावरी लख्यों सातयों वर्ष ।
रोम-रोम सों किन कढ़ै, तव धनिबाद सहर्ष ॥ 4 ॥
जो सब बिधि साधन रहित ताहू पर यह नेहु ।
बिन माँगे सब कुछ सदा, सत सत हाथन देहु ॥ 5 ॥
यह प्रतिच्छ प्रतिच्छन निरखि, अतिशय हिय हरसात ।
सकुच न लागति जाँचतहु, जब अस दानि दिखात ॥ 6 ॥
देहु नाथ भारत सतनि, यह मति सब थल सोझ ।
"सात पांच की लाकरी एक जने को वोझ" ॥ 7 ॥
निज हित जाँचहिं काह तुम जिय की जानन हार ।
दया सिंधु दीजै यहै, गति पूरन परकार ॥ 8 ॥
"गंगा जमुना सरसुती, सात समुद भरपूर ।
तुलसी चातक के मते बिन स्वाती सब घूर" ॥ 9 ॥
सात दीप नवखण्ड में प्रेम ध्वजा फहराय ।
जय हरि शशि सब जग कहै, पांच सात बिसराय ॥ 10 ॥
होहिं सबै सबके हितू, सत चित सों सब भांति ।
फैले ब्राह्मण बचन ते धर्म प्रेम शुभ शान्ति ॥ 11 ॥ नेति०

ब्राह्मण—खण्ड 7, सं० 1, 2 (15 अगस्त-सितम्बर, 1890 ई०)

अवश्य देखिये

हमारे कई मित्रों ने 'ब्राह्मण' के बन्द हो जाने की सूचना पढ़ के खेद प्रकाशपूर्वक पूछा है कि क्या किसी उपाय से इसे बचा सकते हो अथवा सात वर्ष के पाले पोसे बच्चे को एक साथ ही कठोरता धारण करके विसर्जित कर दोगे ? इसके उत्तर में हम निवेदन करते हैं कि हमारा हृदय घटी उठाते 2 और धोखा खाते 2 निस्संदेह ऐसा हो गया है कि मौखिक आश्वासन से अब इस पर कुछ असर नहीं हो सकता । किन्तु बन्द कर देने का जब कि दूसरों को शोक है तो हमें क्यों न होगा जिन्होंने सैकड़ों ऊँच नीच देख के इतने दिन झेला है । पर करें तो क्या करें, जब जी टूट जाता है तब मनसा के विरुद्ध काम करने ही पड़ते हैं । हाँ, जो लोग सचमुच इसे जीवित रखना चाहते हों वे निम्नलिखित तीन उपायों में से कोई अवलम्बन करके रक्षा कर सकते हैं तो करैं । पहिला उपाय यह है कि कोई सामर्थ्यवान इसकी घटी का बोझा उठा ले, नफा हो तो उसका हम लेख दे दिया करैंगे । दूसरा यह है कि कोई सब प्रबन्ध अपने हाथ में ले ले और ग्राहक बढ़ाने में सदा यत्नवान रहा करे, हम भी यथाशक्ति उन्हें साथ देने को प्रस्तुत हैं । तीसरे दस (इससे कम नहीं) पुरुष एकत्र होके एक 2 रुपया महीना पेशगी जमा कर दिया करें और आमदनी अपने पास रक्खा करें तो भी काम चल जाने की संभावना है । हानि लाभ, उद्योग अथवा ईश्वर के आधीन है । यदि उचित समझिए तो एक भाग हमसे भी ले लिया कीजिए । बस और हम कुछ न कर सकते हैं न बतला सकते हैं न निरी बातों में आ सकते हैं ।

ब्राह्मण—खं० 7, सं० 9 (15 अप्रैल, 1891 ई०)

अंतिम सम्भाषण

"दरो दीवार पै हसरत से नजर करते हैं ।
खुश रहो अहलेवतन हम तो सफर करते हैं ।।

परम गूढ़ गुण रूप स्वभावादि सम्पन्न प्रेमदेव के पद पद्म को बारम्बार नमस्कार है कि अनेकानेक विघ्नों की उपस्थिति में भी उनकी दया से 'ब्राह्मण' ने सात वर्ष तक संसार की सैर कर ली । नहीं तो कानपुर तो वह नगर है जहां बड़े 2 लोग बड़ों 2 की सहायता के आछत भी कभी कोई हिन्दी का पत्र छः महीने भी नहीं चला सके । और न आसरा है कि कभी कोई एतद्विषयक कृतकार्यत्व लाभ कर सकेगा । क्योंकि यहां के हिन्दू समुदाय में अपनी भाषा और अपने भाव का ममत्व विधाता ने रक्खा ही नहीं फिर हम क्योंकर मान लें कि यहां हिन्दी और उसके भक्त जन कभी कोई सहारा पावैंगे । ऐसे स्थान पर जन्म ले के और खुशामदी तथा हिकमती न बन के ब्राह्मण देवता इतने दिन तक बने रहे, सो भी एक स्वेच्छाचारी के द्वारा संचालित हो के, इसे प्रेमदेव की आश्चर्य लीला के सिवा क्या कहा जा सकता है ? यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा, अपने कर्तव्यपालन में योग्य था वा अयोग्य यह कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है, न्यायशील, सहृदय लोग अपना विचार आप प्रकट कर चुके हैं और करेंगे । पर हां इसमें संदेह नहीं है कि हिन्दी पत्रों की गणना में एक संख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य (लिटरेचर) को थोड़ा बहुत सहारा इससे भी मिला रहता था । इसी से हमारी इच्छा थी कि यदि खर्च भर भी निकलता रहे अथवा अपनी सामर्थ्य के भीतर कुछ गांठ से भी निकल जाय तो भी इसे निकाले जायंगे । किन्तु इतने दिन में देख लिया कि इतने बड़े देश में हमारे लिए सौ ग्राहक मिलना भी कठिन है । यों सामर्थ्यवानों और देशहितैषियों की कमी नहीं है पर वर्ष भर में एक रुपया दे सकने वाले हमें सौ लोग भी मिल जाते अथवा अपने इष्ट मित्रों में दस 2, पांच 2 कापी बिकवा देने वाले दस पंद्रह सज्जन भी होते तो हमें छः वर्ष में साढ़े पांच सौ की हानि क्यों सहनी पड़ती, जिसके लिए साल भर तक कालेकांकर में स्वाभाविरुद्ध बनवास करना पड़ा । यह हानि और कष्ट हम बड़ी प्रसन्नता से अंगीकार किए रहते यदि देखते कि हमारे पश्रिम को देखने वाले और हमारे विचारों पर ध्यान देने वाले दस बीस सद्व्यक्ति भी हैं । पर जब वह भी आशा न हो तो इतनी मुड़ धुन क्यों कर सही जा सकती है कि महीना आरंभ हुआ और एक फिकर शिर पर सवार है—यह विषय गद्य में लिखना चाहिए यह पद्य में—और इसका फल क्या होगा कि डाकखाने और छापाखाने के लिए देने को तो भर 2 मुट्ठियों रुपया चाहिए पर मिलने के लिए चिट्ठी पर चिट्ठी लिखने तथा मुलाहिजा छोड़ के वेल्यूपेएबिल भेजने पर कभी किसी भले मानस ने एक रुपया भेज दिया जिसका हम ऐसो के हाथ एक दिन भी ठहराना असंभव है । यह झंझट सौंपने के लिए यदि किसी को अपना समझ के मैनेजर ठहराते हैं तो या तो वह साहब आमदनी ही हजम कर बैठते हैं या बेगार का काम समझ के हमसे भी अधिक मस्त बन बैठते हैं जिसमें न किसी

की चिट्ठी पत्री का जवाब है न कोई हिसाब है । इस रीति से हमें जब देना पड़ा है गांठ ही से देना पड़ा है जिसके लिए समय पर रुपया पास न होने के कारण यंत्राध्यक्षों से झूठे वादे और चित्त की झुंझलाहट रोक के 'बाबूछाहब बाबूछाहब' करना एक मामूली बात है । एक भलेमानस हमारे हानि लाभ के साझी बने थे पर कुछ दिन मेनेजमेंट अपने हाथ में रख के समझ गए कि इसमें हानि ही हानि है तो झट तोते की तरह आंखें बदल बैठे । पर परमेश्वर बड़े दयामय हैं । हमें उनकी एक कौड़ी का भी रवादार नहीं बनाया वरंच उनके मुँह फेरते ही हमारे लिए तीन सहायक प्रस्तुत कर दिए । एक कोल्हापुर निवासी श्रीमान रावसाहब रायसिंह देव वर्मा, दूसरे दिल्लीवासी श्रीयुत जगन्नाथ भारतीय, तीसरे श्रीमत् स्वामी मंगलदेव संन्यासी । सच पूछो तो हमारी टूटी हुई हिम्मत इन्हीं सतुरुषों के उत्साहप्रदान से तीन वर्ष तक कायम रही, नहीं तो हमें केवल अपनी इच्छा से बेगार भुगतना और हर साल जुर्माना देना कभी का असह्य हो गया होता । किन्तु जब बरसों तक यह देखते रहे कि जिन लोगों के लिए सारी हाव 2 की जाती है उनमें से बहुतों को यह भी ज्ञान नहीं है कि हिंदी हमारी कौन है अथवा 'ब्राह्मण' किस खेत की मूली है तो गत वर्ष यह दृढ़ विचार कर लिया था कि यह झगड़ा अब न रक्खें । किन्तु हमारे परम हितैषी और हिंदी के सच्चे प्रेमी श्री मन्महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह महोदय (खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर के स्वामी) की अकृत्रिम दया और प्राकृतिक स्नेह के वश वर्ष भर तक फिर 'ब्राह्मण' ने जगजात्रा की । पर अब हम नहीं चाहते कि समय, संपत्ति और स्वतंत्रता नष्ट करके अपनी वाणी की विडंबना कराते एवं अपने थोड़े से सच्चे सहायकों को चिंता में फंसाते रहें । इससे 'ब्राह्मण' को ब्रह्मलोक भेज देना ही उत्तम समझते हैं । ग्राहक बढ़ाने और पत्र को स्थिर रखने के सब उपाय कर देखे पर अंत को यही जान पड़ा कि या तो हम देश की सेवा के योग्य नहीं हैं या देश ही हमारे गुणों को समझने की योग्यता नहीं रखता । फिर किस आसरे पर गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी पेट पीट के पीर के उपजाने का ठान ठानें ? हां बीते हुए महीनों के लेखानुसार आयव्ययादि का प्रबंध हो जायगा अथवा दो चार वर्ष में फिर शौक चर्रायगा तो देखा जायगा । पर आज तो सात वर्ष का तमाशा देखते 2 जी ऊब उठा है । यद्यपि उन लोगों से विदा होते मोह लगता है जिनके साथ इतने (अथवा कुछ कम) दिनों संबंध रहा है और कभी कोई उलहने वाली बात नहीं आने पाई । पर क्या कीजिए समय का प्रभाव रोकना किसी का साध्य नहीं है । अतः छाती पर पत्थर रख के विदा होते हैं और कोई सुने वा न सुने पर अपने धर्मानुसार चलते-चलते कहे जाते हैं कि—

चहहु जु सांचहु निज कल्यान । तौ सब मिलि भारत संतान ॥
जपौ निरंतर एक जबान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 1 ॥
रीझै अथवा खिझै जहान । मान होय चाहे अपमान ॥
पै न तजो रटिबे की बान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 2 ॥
जिन्हें नहीं निजता को ज्ञान । वे जन जीवत मृतक समान ॥
याते गहु यह मंत्र महान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 3 ॥
भाषा भोजन भेष विधान । तजै न अपनी सोइ मतिमान ॥
बसि समझौ सौभाग प्रमान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 4 ॥

धनि है वह धन धनि वे प्रान । जे इन हेत होहिं कुरबान ॥
यही तीन सुख सुगति निधान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 5 ॥
तिहूं लोक पर पूज्य प्रधान । करिहैं तब त्रिदेव इव त्रान ॥
सुमिरौ तीनहु समय सुजान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 6 ॥
सरबस जाइ दीजिए जान । सब कुछ सहिए बनि पाषान ॥
पै गहि रहिय प्रेम पन ठान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 7 ॥
तबहिं सुधरिहै जनम निदान । तबहिं भलो करिहैं भगवान ॥
जब रहिहै निशिदिन यह ध्यान । हिंदी हिंदू हिंदुस्तान ॥ 8 ॥
जब लगि तजि सब संक सकुच अरु आस पराई ।
नहिं करिहौ अपने हाथन आपनी भलाई ॥
अपनी भाषा भेष भाव भोजन भाइन कहं ।
जब लग जगते उत्तम नहि जानिहौ जिय महं ॥
तब लग उपाय कोटिन करत अगनित जनम बितायहौ ।
पै सांचो सुख संपति सुजस सपनेहु नहिं लखि पायहौ ॥ 9 ॥

ब्राह्मण–खं० 7, सं० 12 (15 जुलाई, 1891 ई०)

नव सम्भाषण

[सातवें वर्ष के अन्त में जब 'ब्राह्मण' ने अपने प्रिय पाठकों तथा सुहृद स्नेहियों से अन्तिम विदाई ले ली तो खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर (पटना) के मालिक श्री मन्महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह ने इसे अपनी कृपा की संजीवनी पिलाकर जिला लिया। 'ब्राह्मण' के छपवाने का दायित्व तो उनके प्रेस ने एक वर्ष पूर्व ही ले लिया था इस अंक से उन्होंने इसका आर्थिक दायित्व तथा प्रकाशन व्यवस्था भी अपने ऊपर लेकर मिश्र जी को सम्पादन कार्य तथा सदुपयोगी ग्रन्थों की रचना के लिए मुक्त कर दिया। प्रतापनारायण जी अपनी लिखी व संग्रह की पुस्तकों का सर्वाधिकार बाबू रामदीन सिंह जी को पहले ही दे चुके थे। इस अवसर पर लिखा गया मंगलपाठ तथा नवसंभाषण—सं०]

मंगलपाठ

जय जय जय आनंद मय, अष्ट सिद्धि दातार।
करत भक्त मन मंदिरनि, जो बसु जाम बिहार ॥ 1 ॥

अष्ट अंग बिद जोगि जन, नहिं जानहिं गति जासु।
अष्ट कपारी हम सरिस, किमि गावहिं गुण तासु ॥ 2 ॥

केवल अपनी गरज कहं, पकरि प्रेम की ओट।
मांगहिं जयजयकार कहि, सदा मनोरथ मोट ॥ 3 ॥

जदपि जाचना के बिना, देत सबै कछु सोय।
पै हम बैरागी नहीं, जिन के चाह न होय ॥ 4 ॥

याते मांगहिं जोरि कर, धरि उर आस महान।
हिंदी हिंदू हिंद कर, करहु नाथ! कल्याण ॥ 5 ॥

सब प्रकार सुख सों रहहिं, इन के चाहन हार।
जग महं चहुँदिस सुनि परै, इन की जै जै कार ॥ 6 ॥

हैं इन के सांचे हितू, श्री महाराजकुमार।
रामदीन हरि विज्ञवर, धरम बीर समुदार ॥ 7 ॥

जासु कृपा लहि के भयो, मृत्युंजय यह पत्र।
राखहु निज कर कंज कर, प्रभुवर! तेहि शिर छत्र ॥ 8 ॥

निहचल निहछल रूप सों, निज तन मन धन लाय।
सबके सब विधि सब समय, सब कोउ होहिं सहाय ॥ 9 ॥

श्री हरि शशि के तत्व कहं, समुझहिं सब भलि भाँति ।
सदा सबै कहुँ सुनि परै, धर्म प्रेम शुभ शांति ॥ 10 ॥

जगदीश्वर को धन्यवाद देना आस्तिकता की पद्धति का रक्षण मात्र है नहीं तो प्रति क्षण अनन्त उपकार का धन्यवाद एक मुख से हो ही क्योंकर सकता है । कहां परम पवित्र परमानन्दमय प्रेमदेव का धन्यवाद और कहां यह मुंह, जिसे खपुष्प न्याय का अवलम्बन करके मिथ्या भाषण और परनिन्दादि के दोषों से बचा हुआ भी मान लें तथाति प्रत्यक्ष देखते हैं कि कैसा पवित्र है । इससे इस विषय में बोलना ही बायचेंचीपन है । रहा अपने पाठकों को धन्यवाद देना, वह भी सभ्यता रीति का निर्वाह मात्र है । नहीं तो हमारी खरी दो टूक चैलाफाड़ बातों पर रुचि रखने वालों को झूठ मूठ के धन्यवाद अथवा आशीर्वाद क्यों रुचने लगे ? जब तक आपने हमारे साथ कोई विशेष रूप से भलाई नहीं की तब तक हमारा धन्यवाद व आशीर्वाद देना एक रूप की खुशामद है और खुशामद वह गुण है जिसमें हमें आप निरा मूर्ख समझिये तो हम अपना गौरव समझेंगे ।

यह गुण तथा इसके ग्राहक परमेश्वर न करे कि हमें प्राप्त हों हम थोड़े से उन्हीं सहायकों के मध्य आनंदित रहना चाहते हैं जो हमारे ऐसे साहंकर कथन का आदर करते हों कि हमारी बातें आपको भाती हैं इससे आप हमारे ग्राहक हैं, इसमें धन्यवाद काहे का ? हां हमारे बचनों का पूर्ण रूप से अनुसरण कीजिये अथवा हमीं को चिरस्थायी रखने का उद्योग करते रहिये तो हम क्या हैं सभी धन्यवाद देंगे—पर यतः अभी तक हमें ऐसे लोग बहुत ही थोड़े मिले हैं, सो भी खुशामद और खुशामदियों को तुच्छ समझने वाले । अस्मात् हम यह खाता ही नहीं रखना चाहते । हां सहयोगियों में से 'सर्वहित', 'मित्र विलास' और 'बिहारबन्धु' को धन्यवाद देंगे क्योंकि उन्होंने हमारी सहानुभूति की है, सो भी उस दशा में जब कि हम कभी उनके साथ विशेष सम्बन्ध का प्रदर्शन नहीं कर सके । केवल पत्र का बदला ही रक्खा है ।

इस पर भी 'सर्वहित' महाशय 'ब्राह्मण' की ब्रह्मलोक यात्रा के समाचार पर शोक ही नहीं प्रकाश करते वरंच पुनर्जीवन की आशा करके साहाय्य प्रदान का बचन भी देते हैं । फिर हम उनका गुण क्योंकर न मानें ? पर हां यस्मात् सब पत्रों का मुख्य कर्तव्य यही है कि एक दूसरे की उन्नत्यवनति में साथ देने की बातें ही न बनावैं किन्तु काम पड़ने पर पूर्ण रीति से काम आवैं ! अतः कोरे धन्यवाद को व्यर्थ समझ के हम प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा समस्त हिन्दी पत्रों को पारस्परिक सहायता का सच्चा उदाहरण बनावै, जिसकी आज बड़ी भारी आवश्यकता है ! और जब तक यह न हो तब तक धन्यवाद सन्यवाद का देना भी तथा चाहना भी गप्पन्वर्तते ! किन्तु हां श्री मन्महाराजकुमार बाबू रामदीन सिंह महोदय को धन्यवाद न देना कृतघ्नता है जिन्होंने हिन्दी के प्रचारार्थ तन, मन और वित्त बाहर धन उस दशा में लगा रक्खा है जबकि सद्ग्रन्थों के इतने ग्राहक भी नहीं हैं कि कनिष्टिका से लेकर अंगुष्ट तक तो गिने जायं । इस प्रत्यक्ष प्रमाण से यह तो एक बालक भी समझ सकता है कि धन बटोरने के लिए झूठ मूठ देशभक्ति के गीत नहीं गाते परन्तु सचमुच सद्विद्या रत्न का वितरण करना चाहते हैं और इस प्राकृतिक उदारता के पलटे में अपनी नामबरी फैलाने की भी गुप्त अथवा प्रकट कार्रवाई नहीं करते वरंच दूसरों ही का नाम चिरस्थाई रखने के प्रयत्न में लगे रहते हैं । भला ऐसे निःस्वार्थ देशबन्धु को कौन समझदार धन्यवाद न देगा ? विशेषतः हमारे साथ तो वह उपकार किया है जिसका पलटा हम दे ही नहीं सकते ।

लोग जिससे अपना स्वार्थ निकालना चाहते हैं उससे बड़ी भारी बनावट के साथ कहा करते हैं कि 'ऐसा कर दीजिए तो हमें मानो मरते से जिला लीजिए' पर इस उदारचेता ने हमारी प्रार्थना के बिना ही हमें मरते से नहीं मृत हो जाने पर जिला दिया है ! गत संख्या का अंतिम संभाषण पढ़ के और हमें फिर भी प्रकाशित देख के आशा नहीं निश्चय है कि कोई विचारवान हमारे कथन को अत्युक्ति अथवा मिथ्या प्रशंसा न समझेंगे फिर भला हम उन्हें क्यों न रोम 2 से असीसें ? पर यतः यह काम भी हमारा ही नहीं है किन्तु उन समस्त सज्जनों का है जो 'ब्राह्मण' के अन्तर्ध्यान होने से दुःखित होते एवं पुनः प्रकाशित होने से आह्लादित होंगे अतः यह भार भी हम अपने माथे से पटककर अपने सच्चे रसिकों को यह मंगल समाचार सुना देना उचित समझते हैं कि अब हम पूर्ण रूप से निर्द्वंद्व हो गए अतः अपनी सामर्थ्य भर इस पुनर्जीवित 'ब्राह्मण' को मेढक (प्रसिद्ध है कि मेढक गरमियों में मर जाते हैं और वर्षा में फिर जी उठते हैं) की नाई टर-टर करने वाला न बनावैंगे (यद्यपि एडीटर शब्द की यह भी दुम है) किन्तु मृत्युंजय मंत्र की भांति देश के शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रोग दोषादि का दूर करने वाला सिद्ध कर दिखावैंगे ।

पर कब ? जब आप लोग भी ध्यान दे के पढ़ेंगे और इसके प्रचार का पूर्ण उद्योग करते रहेंगे तथा समय 2 पर सुन्दर लेख भी भेजते रहेंगे । पर खबरदार मूल्य एवं सहाय्य इत्यादि का रुपया उपया कानपुर के पते पर न भेजिएगा, हम उसे न छुवैंगे, अथवा छूते ही उड़ा देंगे ! इससे नये पुराने खंड तथा हमारी पुस्तकों की मांग और दाम मैनेजर खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर के पास भेजा कीजिए और अपने तथा हमारे लिए कोई बात पूछना भी हो तो खैर कानपुर ही सही । बस !

ब्राह्मण—खं० 8, सं० 1 (अगस्त, 1891 ई०)

प्रतापनारायण मिश्र
के
विषय में लेख

पं० प्रतापनारायण मिश्र

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

पंडित प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी के मशहूर लेखक और कवि हो गये । उनके विषय में एक छोटा-सा लेख सरस्वती में लिखने का हमारा बहुत दिनों से इरादा था कि इतने में उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखा-लिखाया हमारे पास आ गया । कानपुर से थोड़ी दूर पर एक गाँव मसवानपुर है । वहाँ गौरीशंकर भट्ट और लक्ष्मीधर वाजपेयी रहते हैं । यह चरित्र उन्हीं का लिखा हुआ है, पर इसमें बहुत बातों की न्यूनाधिकता है । इस कारण इसके लेखकों को धन्यवाद देकर, इसकी सामग्री का उपयोग हम अपने तौर पर, इस लेख में करते हैं और आवश्यकता के अनुसार, यथाज्ञान और यथामति और-और बातें भी लिखते हैं ।

वंश-विवरण

पंडित प्रतापनारायण ने 'ब्राह्मण' में अपना चरित लिखना शुरू किया था । आपने उसका नाम रक्खा था, 'प्रताप चरित्र' । परन्तु वह पूरा नहीं हुआ, छपा हुआ उसका सिर्फ पहला फार्म, अलग पुस्तकाकार, खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर से हमें मिला है । उसमें प्रतापनारायण ने अपने पूर्वजों का वृत्तान्त लिखा है । उसके अनुसार आप कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के अन्तर्गत बैजेगाँव के मिश्र थे । आपका गोत्र कात्यायन था । इसी से आप अपने को "महर्षि कात्यायन कुमार" लिखते थे । इनकी देखा-देखी और भी दो एक आदमी अपने को "कात्यायन कुमार" कहने लगे हैं । अवध में एक जिला उन्नाव है । कानपुर से उन्नाव (शहर) पाँच-छह कोस है । बैजेगाँव[1] उसी जिले में है । उन्नाव से वह थोड़ी ही दूर है । प्रतापनारायण के पिता का नाम संकटाप्रसाद, पितामह का रामदयाल, प्रपितामह का सेवकनाथ था । इनके पितामह रामदयाल मिश्र, सुनते हैं, कवि थे, पर उनकी लिखी हुई कविता प्रतापनारायण के देखने में नहीं आयी । इनके पिता संकटाप्रसाद अच्छे ज्योतिषी थे । 14 वर्ष की उम्र में वे अपना जन्म-ग्राम छोड़कर, जीविका के लिए कानपुर आए । यहाँ धीरे-धीरे उनकी आर्थिक दशा अच्छी हो गयी और उन्होंने कुछ रियासत भी पैदा कर ली । कुछ दिन तक गाजिउद्दीन हैदर के समय में, दीवान फतेहचन्द के यहाँ उन्होंने नौकरी भी की । प्रतापनारायण की चाची कानपुर-निवासी प्रसिद्ध प्रयागनारायण तिवारी के वंश की थीं । इस योग के कारण प्रतापनारायण के पिता को कानपुर में रहने में बहुत सुभीता हुआ ।

लड़कपन और विद्याभ्यास

प्रतापनारायण का जन्म आश्विन कृष्ण 9 सं० 1913 (सन् 1856 ई०)[2] में हुआ था । इनके पिता

1 डाकवर—बेथर,

2. 24 सितम्बर 1856 ई०

ज्योतिषी थे । इससे उन्होंने अपने पुत्र प्रतापनारायण को भी ज्योतिर्विद बनाना चाहा, पर प्रतापनारायण को "आदि नाड़ी वरं हन्ति, मध्य नाड़ीं च कन्यकाम्" वाले मसले पसन्द नहीं आये । इससे लाचार होकर पिताजी ने अँग्रेजी मदरसे में भेजा । जिस मदरसे में आपने अँग्रेजी का प्रारम्भ किया, उस पर आपकी बहुत दिन तक कृपा नहीं रही । इस कारण पादरियों के मदरसे में आपने पदार्पण किया । वहाँ उनका और "आर्मी प्रेस" (कानपुर) के बाबू सीताराम का साथ हुआ । बाबू सीताराम से मालूम हुआ कि प्रतापनारायण का दिल पढ़ने में न लगता था । इससे वे अपने अध्यापकों के बहुधा कोप-भाजन हुआ करते थे । धीरे-धीरे उन्हें पढ़ना पीड़ा-जनक मालूम होने लगा और अँग्रेजी की बहुत ही थोड़ी विज्ञता प्राप्त करके आपने 1875 ई० के लगभग स्कूल से अपना पिण्ड छुड़ाया । इसके कुछ दिनों बाद आपके पिता की मृत्यु हो गई । इससे इनकी शिक्षा की एकदम ही समाप्ति हो गयी । स्कूल में इनकी दूसरी भाषा हिन्दी थी, पर इन्होंने उर्दू में भी अच्छा अभ्यास कर लिया था । आपने फारसी और संस्कृत में भी कुछ कविता लिखी हैं । इससे जान पड़ता है कि इन भाषाओं में आपकी गति थी । बँगला भी इन्होंने सीख लिया था ।

कविता-प्रेम

जिस जमाने में प्रतापनारायण स्कूल में थे, बाबू हरिश्चन्द्र का "कविवचन सुधा" पत्र खूब उन्नत अवस्था में था । उसमें बहुत ही मनोरंजक गद्य-पद्य-मय लेख निकलते थे । उसी और बाबू हरिश्चन्द्र की अन्यान्य रचनाओं को भी पढ़कर प्रतापनारायण की प्रवृत्ति कविता की ओर हुई । उस समय कानपुर में लावनीबाजों का बड़ा जोर-शोर था । बाबू सीताराम कहते हैं कि लावनी गाने वालों की कई जमातें थीं । लावनी का प्रसिद्ध कवि बनारसी भी उस समय अक्सर कानपुर में रहा करता था । वे सब अक्सर सर्वसाधारण में लावनी गाया करते थे । उनके दो दल इकट्ठे हो जाते थे और लावनी कहने में एक-दूसरे को परास्त करने की चेष्टा करते थे । उनमें से कोई-कोई आदमी बहुत अच्छी लावनी कहते थे और मौके-मौके पर नयी लावनी बना लेते थे । प्रतापनारायण इन लोगों की जमातों में कभी-कभी जाते थे । इसी समय कानपुर के प्रसिद्ध कवि पंडित ललिता प्रसाद द्विवेदी के धनुषयज्ञ की धूम थी । आप रामलीला—विशेष करके धनुषयज्ञ कराने में बहुत निपुण थे । समयानुकूल अच्छी-अच्छी कविता की रचना करके और उसे लीलागत पात्रों के मुँह से सुनाकर, सुनने वालों के मन को आप मोहित कर लेते थे । प्रतापनारायण भी इस लीला में शामिल होते थे और 'ललितजी' की कविता का पाठ करते थे । हरिश्चन्द्र के लेख पढ़ने, लावनी वालों की लावनी सुनने और 'ललितजी' की लीला में योग देने से, सुनते हैं, प्रतापनारायण की हृदयभूमि में कविता का बीज अच्छी तरह अंकुरित हो गया । इसके बाद छन्द-शास्त्र के नियम भी शायद उन्होंने 'ललितजी' से सीखे, क्योंकि सुनते हैं, इस विषय में वे 'ललित जी' को अपना गुरु मानते थे ।

ब्राह्मण

प्रतापनारायण को हिन्दी अखबार पढ़ने का लड़कपन ही से शौक था । इसी शौक से धीरे-धीरे उत्साहित होकर गोपीनाथ खन्ना इत्यादि की मदद से इन्होंने 15 मार्च, 1883 ई० से 'ब्राह्मण' नामक एक बारह पृष्ठ का मासिक पत्र निकालना शुरू किया । यह कोई दस वर्ष तक निकलता रहा, पर निकलने में यह बहुत अनियमित था । जन्म होने से थोड़े ही दिन बाद इसके निकलने में देरी होने

लगी । इस देरी का कारण प्रायः पंडित प्रतापनारायण की बीमारी थी । आप अक्सर बीमार रहा करते थे । विशेष शिकायत बवासीर की थी । 1887 ई० में 'ब्राह्मण' कुछ दिनों के लिए बन्द भी हो गया था । इनकी मृत्यु के बाद भी 'खड्गविलास प्रेस' (बाँकीपुर) के मालिक बाबू रामदीन सिंह ने 'ब्राह्मण' को कुछ समय तक जीवित रखा, पर वह चला नहीं, बन्द ही हो गया । प्रतापनारायण पर बाबू रामदीन सिंह की विशेष कृपा थी । उनकी बहुत-सी पुस्तकों को बाबू साहब ने छापकर प्रकाशित किया है । प्रतापनारायण ने कुछ को छोड़कर अपनी सब पुस्तकों का अधिकार बाबू रामदीन सिंह को ही दे दिया था ।

'ब्राह्मण' में पंडित प्रतापनारायण धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी तरह के लेख लिखते थे । यहाँ तक कि आप खबरें भी छापते थे । कभी-कभी कानपुर की बहुत छोटी-छोटी खबरें तक भी आप प्रकाशित कर देते थे । 'ब्राह्मण' का पहला अंक होली के दिनों में निकला था । उसकी प्रस्तावना में प्रतापनारायण ने उसकी पैदाइश होली की बतलाकर, आगे चलकर थोड़ी दूर पर होली पर ही एक लेख लिखा । लेख दिल्लगी से भरा है । पर उसके बीच मत-मतान्तर की बातें आ गयी हैं । वे जबरदस्ती लाई गई मालूम होती हैं ।

"ब्राह्मण" में कैसे लेख निकलते थे ? इसका अन्दाज लगाने के लिए कुछ लेखों के नाम हम नीचे देते हैं—(1) बेगार, (2) होली, (3) रिश्वत, (4) देशोन्नति, (5) गुप्त ठगहार (दुकानदार), (6) मुच्छ, (7) कानपुर महात्म्य (आल्हा), (8) शोकाश्रु (हरिश्चन्द्र के मरने पर कविता), (9) विस्फोटक, (10) भारतरोदन (कविता), (11) देशी कपड़ा, (12) प्रेम एवं परोधर्म, (13) गंगाजी, (14) मानस रहस्य, (15) बन्दरों की सभा, (16) टेढ़ जानि शंका सब काहू, (17) घूरे के लत्ता बिने कनातन का डौल बाँधे, (18) खरी बात शाहदुल्ला कहैं, सबके जी ते उतरे रहैं, (19) जाने न बूझे कठौता लेके जूझे, (20) हाथी चले जाते हैं, कुत्ते भौंका ही करते हैं—इत्यादि ।

"ब्राह्मण" के जमाने में हिन्दी की तरफ लोगों का ध्यान नया ही नया गया था । इससे मासिक पुस्तकों में जैसे लेख होने चाहिए वैसे बहुत कम लेख "ब्राह्मण" में निकले । हमने इस पत्र के पहले तीन साल के सब अंक देख डाले, पर इतिहास, जीवन-चरित्र, विज्ञान, पुरातत्त्व अथवा और कोई मनोरंजक या लाभदायक शास्त्रीय विषय पर कोई अच्छे लेख हमें न मिले । इसमें पंडित प्रतापनारायण का दोष कम था, समय का अधिक ।

प्रतापनारायण की हिन्दी मुहावरेदार होती थी । वे अपने लेखों में मुहावरे बहुत लिखते थे । पर शब्द-शुद्धि की तरफ उनका ख्याल कम था । म्लेक्ष, रिषि, रिषिश्वर, रितु, गृहस्त, लेखणी, औगुण, मात्रभाषा आदि व्याकरण-विरुद्ध शब्द जगह-जगह पर देख पड़ते हैं । सम्भव है ऐसे शब्द सावधानी से प्रूफ न देखने के कारण रह गये हों या हिन्दी समझकर प्रतापनारायण ने इन्हें ऐसा ही लिखा हो । "ब्राह्मण" में हमें कितने ही संस्कृत वाक्य व्याकरण-विरुद्ध मिले । यथा—"अहं पंडितम्" । स्वधर्मो निधनः श्रेयः । का चिन्ता मरणो रणो । "यथा नामस्य तथा गुणा" । इनको देखकर पंडित प्रतापनारायण की संस्कृतज्ञता के विषय में शंका होने लगती है । पर संस्कृत में भी उन्होंने कविता लिखी है । उनकी एक पुस्तक का नाम है "मन की लहर" । उसमें एक लावनी संस्कृत में है । वह यद्यपि निर्दोष नहीं है, तथापि इतनी बुरी भी नहीं है । इसी पुस्तक में पंडित प्रतापनारायण की कुछ फारसी कविता भी हैं, पर फारसी के अच्छे जानने वाले ही उस पर अपनी राय दे सकते हैं । 15 मई, 1883 ई० के "ब्राह्मण" में एक

लेख 'बेगार' पर है । वह अंग्रेजी में है ।[1] पता लगाने से मालूम हुआ कि वह मिशन स्कूल के अध्यापक बाबू नन्हेमल का लिखा हुआ है । प्रतापनारायण ने अपना उपनाम "ईश्वरावलम्बित" रखा था और उनके साथी मास्टर नन्हेमल ने "सुखदावलम्बित" । "सुखदावलम्बित" जी अभी विद्यमान हैं ।[2] प्रतापनारायण के लेखों में मनोरंजकता की मात्रा खूब रहती थी । हास्यरस के लाने का जरा भी मौका होता था, वहीं वे उसे हाथ से न जाने देते थे । कभी-कभी उर्दू की तरह की अनुप्रास-पूर्ण बनावटी इबारत भी लिखते थे । इनकी कविता बहुत अच्छी होती थी । कभी-कभी ये "ब्राह्मण" की कीमत तक दानग्राही ब्राह्मण की तरह कविता में माँगते थे । देखिए—

विज्ञापन

दाता जजमान ! प्यारे पाठक !! अनुग्राहक ग्राहक !!!

चार महीने हो चुके 'ब्राह्मण' की सुधि लेव ।
गंगा माई जै करैं हमैं दक्षिणा देव ॥ 1॥
जौ बिन मांगे दीजिए दुहुँ दिश होय अनंद ।
तुम निचिंत हो हम करैं मांगन का सौगंद ॥ 2 ॥
सदुपदेश नित ही करैं मांगैं भोजन मात्र ।
देखुहु हम सम दूसरा कहां दान कर पात्र ॥ 3 ॥
तुर्तदान जो करिय तौ होय महा कल्यान ।
बहुत बकाये लाभ क्या समुझ जाव जजमान ॥ 4 ॥
रूप राज की कगर पर जितने होयं निशान ।
तितै वर्ष सुखसुजसजुत जियत रहौ जजमान ॥ 5 ॥

खण्ड 3, अंक 5 (15 जुलाई, ह० सं० 1)

हरिगंगा

आठ मास बीते जजमान ।
अब तो करौ दक्षिणा दान ॥ हरिगंगा

आज काल्हि जो रुपया देव ।
मानो कोटि यज्ञ कर लेव ॥ हरिगंगा

माँगत हमका लागै लाज ।
पर रुपया बिन चलै न काज ॥ हरिगंगा

तुम अधीन ब्राह्मण के प्रान ।
ज्यादा कौन बकै जजमान ॥ हरिगंगा

---

1 प्रतापनारायण जी ने अपने लेख 'बेगार' का यह अंग्रेजी अनुवाद शासकों का ध्यान आकर्षित करने हेतु छपाया था ।
2 वर्ष 1906 ई० में ।

जो कहुँ देहौ बहुत खिझाय ।
यह कौउँनिव भलमंसी आय ।। हरिगंगा

सेवा दान अकारथ (?) होय ।
हिन्दू जानत है सब कोय ।। हरिगंगा

हँसी-खुशी से रुपया देव ।
दूध-पूत सब हम ते लेव ।। हरिगंगा

काशी पुन्नि गया माँ पुन्नि ।
बाबा बैजनाथ माँ पुन्नि ।। हरिगंगा

प्रतापनारायण के कोई-कोई लेख व्यंग्य से बेतरह भरे हुए होते थे । उन्होंने एकदफा भंगण और फक्कड़ का किस्सा उत्तर-प्रत्युत्तर के रूप में लिखा था । वह साद्यान्त विकट व्यंग्यों से परिपूर्ण है ।[1] हँसी-दिल्लगी के लेख लिखकर ग्राहकों को रिझाना खूब आता था । तिस पर भी लोग "ब्राह्मण" की कीमत वक्त पर न देते थे । इससे उन्हें तंग होना पड़ता था और घाटा भी उठाना पड़ता था । एक बार बीमारी के बाद बाबू हरिश्चन्द्र के स्नान करने और अन्त में उनके मरने पर उन्होंने अपने पत्र में बहुत अच्छी कविता लिखी थी । अपनी कविता में बाबू हरिश्चन्द्र की इन्होंने बहुत तारीफ की थी । एक जगह आप कहते हैं—

बनारस की जमीं नांजा है जिसकी पायबोशी पर ।
अदब से जिसके आगे चर्ख ने गर्दन झुकाई है ।।
वही महताबे हिन्दुस्ताँ वही गैरत दिहे नैयर ।
कि जिसने दिल से हर हिन्दू के तारीकी मिटाई है ।।
सब उसके काम ऐसे हैं, कि जिनको देख हैरत से ।
हर एक आकिल ने अपनी, दांत में उँगली दबाई है ।।

'भारत जीवन', 'भारतेन्दु', 'उचित वक्ता' और 'फतेहगढ़-पंच' आदि पत्रों और मासिक पुस्तकों से कभी-कभी आप छेड़छाड़ भी कर बैठते थे । यदि वे आपकी बात में दंश देते थे तो आप उनको जवाब भी खूब देते थे । पंडित बद्रीदीन शुक्ल, अकबरपुर (कानपुर) में मदरसों के सबडिप्टी इंसपेक्टर थे । उनकी तरक्की आदि के बारे में न मालूम क्यों, बार-बार "ब्राह्मण" में नोट लिखे ।[2] इनके "ब्राह्मण" की एक कापी कानपुर के कलेक्टर के नाम से भी जाती थी ।

1. इस लेख में प्रतापनारायण जी ने अपने सम्बन्धी महाराज प्रयागनारायण तिवारी के विरुद्ध कुप्रचार करने वालों की लम्बी खबर ली है ।—सं०

2. पंडित बद्रीदीन शुक्ल अगस्त 1887 ई० से सितम्बर 1888 ई० तक 'ब्राह्मण' पत्र के मैनेजर रहे थे । उनके काल में 'ब्राह्मण' की ग्राहक संख्या लगभग दूनी हो गयी थी ।—सं०

'हिन्दोस्थान' से सम्बन्ध

1888 में प्रतापनारायण कालाकाँकर गये और श्रीयुत राजा रामपालसिंह के 'हिन्दोस्थान' के सम्पादन में सहायता देने के काम में नियत हुए । परन्तु उनके स्वभाव में स्वच्छन्दता बहुत अधिक थी । इस कारण ये बहुत दिनों तक वहाँ नहीं रह सके । उन्हें वहाँ से वापस आना पड़ा । उसी समय हिन्दुस्तान के सच्चे शुभचिन्तक ब्राडला साहब इस देश में आये । उनके आने के उपलक्ष में पंडित प्रतापनारायण ने 'ब्राडला स्वागत' नाम की एक कविता लिखी । इस कविता का लोगों ने बड़ा आदर किया । इंग्लैंड तक में उसकी समालोचना हुई । इस कविता का आरम्भ इस प्रकार है–

स्वागत श्रीयुत ब्राडला, प्रेम प्रतिष्ठा-पात्र ।
पलक पाँवड़े कर रहे, तव हित देशी मात्र ॥
स्वागत श्रीयुत चार्ल्स ब्राडला परम पियारे ।
स्वागत-स्वागत ब्रिटिश-वंश-विधु जग उजियारे ॥

कालाकाँकर में इनकी संगति से एक ऐसे सज्जन[1] ने हिन्दी सीखी, जिसने खुद देहाती होकर भी और जिसकी बदौलत हिन्दी सीखी[2] उसकी जन्म-भूमि देहात में थी, यह जानकर भी, देहातियों को सिखलाई हुई हिन्दी में देहातियों[3] की निन्दा करके अच्छा नाम पैदा किया है ।[4]

पुस्तक-रचना

इन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं और अनुवादित कीं । जहाँ तक जाना गया इनकी अनुवाद की पुस्तकें ये हैं–

1. राजसिंह
2. इन्दिरा
3. राधारानी
4. युगलांगुलीय

(1–4) बंकिम बाबू के बँगला उपन्यास[5]

5. चरिताष्टक–बँगला के 8 प्रसिद्ध पुरुषों के चरित ।
6. पंचामृत–पाँच प्रसिद्ध देवताओं का अभिन्नत्व-निरूपण ।
7. नीति रत्नावली–बँगला की नीति रत्नावली का अनुवाद ।
8. कथामाला–ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक का अनुवाद ।
9. संगीत शाकुन्तल ।[6]

---

1. बाबू बालमुकुन्द गुप्त, जन्मभूमि ग्राम–गुरयानी, जिला–रोहतक
2. पं० प्रतापनारायण मिश्र, जन्मभूमि ग्राम–बैजेगाँव (बेथर) जिला–उन्नाव
3. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, जन्मभूमि ग्राम-दौलतपुर, जिला-उन्नाव
4. बाबू बालमुकुन्द गुप्त एवं पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने-अपने पत्रों में एक दूसरे की भाषाओं की बड़ी व्यंग्यपूर्ण शैली में आलोचनाएँ लिखा करते थे । इससे हिन्दी भाषा के स्वरूप को सँवारने में बड़ा योगदान मिला ।
5. (क) कपाल कुण्डला (ख) अमरसिंह (ग) देवी चौधरानी
6. संस्कृत के शकुन्तला नाटक का स्वतन्त्र छायानुवाद ।

10. वर्ण परिचय 3 भाग—ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की पुस्तक का अनुवाद ।
11. सेन वंश--सेनवंशीय राजाओं का इतिहास ।
12. सूबे बंगाल का भूगोल ।[1]

प्रतापनारायण की लिखी हुई पुस्तकें जिनके नाम ज्ञात हुए हैं, ये हैं—

1. कलिकौतुक (रूपक) ।
2. कलिप्रभाव (नाटक) ।[2]
3. हठीहमीर (नाटक) ।
4. गो-संकट (नाटक) ।[3]
5. जुआरी-खुआरी प्रहसन ।[4]
6. प्रेम पुष्पावली ।
7. मन की लहर ।
8. श्रृंगार विलास ।
9. दंगल खण्ड (आल्हा)[5]
10. लोकोक्ति शतक ।
11. तृप्यन्ताम् ।
12. ब्राडला स्वागत ।
13. भारत दुर्दशा (रूपक) ।
14. शैव सर्वस्व ।
15. प्रताप संग्रह
16. रसखान शतक
17. मानस बिनोद

(15–17) संग्रह[6]

इनके सिवा इन्होंने वर्णमाला, शिशु विज्ञान और स्वास्थ्य रक्षा नाम की पुस्तकें भी लिखीं हैं । पर हमने इन पुस्तकों को नहीं देखा, इससे हम नहीं कह सकते, ये अनुवाद रूप हैं या इन्हीं की लिखी हुई हैं । शैव सर्वस्व में आपने शिवालय, शिवलिंग स्थापना और शिवपूजन का समर्थन किया है ।

---

1. तथा (क) कथा बाल साहित्य (ख) बोधोदय (ग) शिशु विज्ञान (घ) आर्यकीर्ति दो भाग
2. 15 दिसम्बर, 1887 को 'ब्राह्मण' में 'कलि प्रवेश रूपक' के अभिनय की सूचना मिलती है । 'कलि प्रभाव' अथवा 'कलि प्रवेश' नामक रूपक प्राप्य नहीं है ।
3. यह नाटक 'पीयूष प्रवाह' के सम्पादक अम्बिका दत्त जी व्यास कृत है । जिसका अभिनय 28 नवम्बर 1887 ई० को प्रतापनारायण मिश्र द्वारा किया गया था ।
4. अपूर्ण प्रहसन; अन्य अपूर्ण ग्रन्थ (क) दूध का दूध, पानी का पानी (भाण) (ख) नूतन भक्त माल (ग) प्रताप चरित्र (घ) पौराणिक गूढ़ार्थ (च) रामायण रमण हैं ।
5. (क) कानपुर माहात्म्य (आल्हा), (ख) शोकाश्रु, (ग) युवराज कुमार स्वागतन्ते, (घ) तारापत पचीसी, (च) श्री प्रेम पुराण, (छ) फाल्गुन माहात्म्य, (ज) होली है, (झ) प्रार्थना शतक, (ट) दीवाने बरहमन, (ठ) स्फुट कविताएँ । यह भी मिश्र जी की ही रचनाएँ हैं ।
6. रहिमन शतक ।

'तृप्यन्ताम्' एक विनोदात्मक कविता है, पर उपदेशपूर्ण है । उसमें देश दशा का अच्छा चित्र है । 'लोकोक्ति शतक' भी अच्छी कविता है । इसमें एक-एक कहावत पर एक-एक पद्य है और हर एक पंक्ति का अन्तिम चरण स्वयं कोई कहावत है । इनकी कई एक किताबें बिहार के शिक्षा विभाग में, बाबू रामदीन के प्रयास से जारी हो गयी थीं । मालूम नहीं अब वे जारी हैं या नहीं । इनकी एक पुस्तक[1] को मुरादाबाद-निवासी पंडित बल्देव प्रसाद ने प्रकाशित किया है, पर उसका नाम, इस समय हमें याद नहीं । प्रतापनारायण की पुस्तकों में हम उनके संगीत शाकुन्तल को सबसे अच्छा समझते हैं । अपनी अन्तिम बीमारी में उन्होंने परमेश्वर की प्रार्थना में कुछ पद्यों की रचना की थी । वे भी बहुत सरस और भक्तिभाव पूर्ण हैं ।

रूप, रंग, आत्मश्लाघा आदि

प्रतापनारायण का रंग गोरा था । नाक बहुत बड़ी थी । शरीर दुबला था । कमर जवानी में ही झुक गयी थी । आप सिर के बाल बड़े-बड़े रखते थे और आगे दोनों तरफ काकुले रखते थे । वे किंचित विलक्षण प्रकार की चेष्टा से कमर झुकाये हुए चलते थे । कदाचित इनकी दुर्बलता इसका कारण था । कभी-कभी मेले में देखा गया कि परदे से ढके हुए इक्के में बैठे स्त्रियों की तरह झाँकते हुए, आप चले जा रहे हैं ! हम दो दफे इनसे मिले । दोनों दफे हमने इनकी दाढ़ी देखी । इनको नास सूँघने का व्यसन था । इनकी नाक दिन-भर नास फाका करती थी । इससे इनकी दाड़ी और मूछों के बालों पर थोड़ा-बहुत नास छाया रहता था । शरीर इनका रोगों का घर था । आप अपने रूप आदि की तारीफ में कहते हैं—

कौसिक कुल अवतंश श्री मिश्र संकठादीन ।
जिन निज बुधि विद्या विभव वंश प्रशंसित कीन ।।
तासु तनय "परताप हरि" परम रसिक बुध राज ।
सुघर रूप सत कवित बिन जिहि न रुचत कछु काज ।।
प्रेम परायन सुजन प्रिय सहृदय नव रस-सिद्ध ।
निजता निज भाषा विषय अभिमानी परसिद्ध ।।
श्रीमुख जासु सराहना कीन्हीं श्री हरिचन्द्र ।
तासु कलम करतूति लखि लहै न को आनन्द ।।

प्रतापनारायण मिश्र : संगीत शाकुन्तल (1908 ई०) पृष्ठ 3

नाटक की प्रस्तावना में कवि का अपने ही मुँह अपनी तारीफ करना अनुचित नहीं । पर, यहाँ, पंडित प्रतापनारायण ने मतलब से कुछ ज्यादा अपनी तारीफ कर डाली है । ऊपर के अवतरण के आगे भी आपने अपनी तारीफ की है और अपने को "पंडितवर" लिखा है । "परमरसिक" "सहृदय" और "नवरससिद्ध" इत्यादि विशेषण ठीक ही हैं । पर "सुघर" रूप में विलक्षणता है ।[2]

---

1. 'भारत दुर्दशा रूपक', वर्ष 1903 ई० वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई से प्रकाशित ।
2. 'जरा गुबार दूर करके एक बार प्रताप की कविता पर फिर ध्यान दीजिये । देखिए वह अपने रूप की प्रशंसा नहीं करता है । वह कहता है उसका बेटा प्रताप हरि परम रसिक बुधराज है, जिसे सुघर रूप और सत कविता के बिना कोई काम नहीं रुचता'—'आत्मारामीय टिप्पण' (भारत-मित्र 1906 ई०) बाबू बालमुकुन्द गुप्त

"आत्मश्लाघा" को लोगों ने बुरा माना है । यद्यपि संस्कृत के किसी-किसी कवि ने आत्मश्लाघा की है । पर कालिदास के सदृश विश्व-मान्य कवि ने नम्रता ही दिखलायी है । प्रतापनारायण संस्कृत कवि श्रीहर्ष और जगन्नाथराज के स्कूल के थे । उन्हें अपने को "प्रसिद्ध प्रतापनारायण" लिखे बिना कल ही न पड़ती थी । उनकी किताब के ऊपर तक 'प्रसिद्ध' शब्द विराजमान है । "ब्राह्मण" में कई जगह इन्होंने अपनी और अपनी पुस्तकों की बड़ाई की है । अपनी "प्रेम पुष्पावली" के ऊपर आपने एक लेख "ब्राह्मण" में अपनी ही कलम से लिखकर खूब तारीफ की है । हमारी समझ में इन बातों की जरूरत न थी । इनके लेख ही इनकी प्रसिद्धि के लिए काफी थे । खुद ही अपने को "प्रसिद्ध" लिखने से इनकी प्रसिद्धि शायद ही अधिक हुई हो ।

आप कविता में अपना नाम 'प्रताप', 'प्रताप हरि' और कभी-कभी 'प्रेमदास' देते थे । प्रेम के आप बहुत बड़े पूजक थे । इसी से आपने अपने नामों में एक नाम 'प्रेमदास' भी रखा था ।

प्रतापनारायण के स्वभाव में स्वच्छन्दता अधिक थी । ये हमेशा अपने ही रंग में मस्त रहते थे । किसी की परवाह इनको न थी । जिन लोगों के साथ ये बैठते उठते थे अथवा जिनसे इनका मैत्रीभाव था, उनके यहाँ कभी-कभी ये दिन भर पड़े रहते थे । पर कभी-कभी हजार मिन्नत आरजू करने पर भी उनके यहाँ ये न जाते थे । ये सर्वथा मनमौजी थे । जब कोई कभी इनकी तबियत के खिलाफ कुछ कह देता था, या कोई काम कर बैठता, तब उसका जरा भी मुलाहिजा न करके ये उसकी गोशमाली करने लगते थे । इनकी तबियत में जोश था । इससे कभी-कभी छोटी-छोटी बातों पर भी ये बिगड़ उठते थे । स्वदेशी चीजों पर और कपड़ों पर इनका अधिक प्रेम था । सादापन इन्हें बहुत पसन्द था । ये हमेशा सादे कपड़े पहनते थे । एक दफा कोट बूट पहने एक महाशय इनसे मिलने आये । उस समय ये बहुत सादी पोशाक में अपनी मित्र-मण्डली के बीच बैठे थे । आगन्तुक ने कहा—"हम पण्डित प्रतापनारायण से मिलना चाहते हैं ।" यह सुनकर प्रतापनारायण अपनी देहाती बोली में बोल उठे—"भाई उनसे मिलय की खातिर पन्द्रह रुपैय्या कै एक टिकस लेई का परत है, तब उइ मिलति हैं ।" आपने अपने बैठने के कमरे का नाम रखा था "ब्राह्मण कुटीर" । पर बैठते आप वहाँ बहुत कम थे । एक दिन जब हम आपसे मिलने गये, आप वहीं मिले । दीवार पर एक इकतारा टँगा था । हमारे साथ एक और सज्जन थे । उन्होंने उस इकतारे को उठाकर छेड़ना शुरू किया । कोई दो मिनट बाद प्रतापनारायण से न रहा गया । आपने कहा—"यहि तना नहीं बजावा जात ।" यह कहकर आप खड़े हो गये और उसे बजाते हुए लावनी गाने लगे । हमारे साथी सज्जन ने पूछा—"ब्राह्मण मरि गा कि है ? आपने कहा—"ब्राह्मण अब न मरी, जीगा ।" बाबू रामदीन सिंह "ब्राह्मण" का अमर कै दीन ।" हम उनसे दो दफे मिले, पर हमें अफसोस है, एक दफा भी उनसे साहित्य-विषयक बातें अच्छी तरह न हुईं । शायद उनकी तबियत उस समय किसी और तरफ रुजू थी ।

प्रतापनारायण अव्वल नम्बर के काहिल थे । उनके बैठने तक की जगह में कूड़े का ढेर लगा रहता था । अखबार, चिट्ठियाँ, कागज बिखरे पड़े रहते थे । उनके यहाँ आने जाने वाले मित्र अगर उन्हें उठाकर जगह को साफ कर देते थे तो कर देते थे । खुद प्रतापनारायण ने शायद ही कभी उनको उठाकर यथास्थान रक्खा हो । लोगों की चिट्ठियों का उत्तर तक ये बहुधा नहीं देते थे । पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र को इन्होंने एक चिट्ठी लिखी थी । उसे "खड्गविलास प्रेस" ने छापकर प्रकाशित किया है । उसमें एक जगह चिट्ठियों का उत्तर न देने के विषय में आप लिखते हैं—"को सारेन की खैहसि माँ परै ।"

सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक विचार

प्रतापनारायण को सामाजिक बन्धनों की परवा बहुत कम थी। इस विषय में विधि-निषेध सम्बन्धी जो नियम प्रचलित हैं उनकी पाबन्दी के कायल वे न थे। उनका आहार-विहार अनियन्त्रित था। शरीर-रक्षा के नियमों का वे अच्छी तरह पालन न करते थे। इसी से उनका शरीर जवानी में ही मिट्टी हो गया था और इसी से उनकी अकाल मृत्यु भी हुई। कवि ही तो ठहरे। कवि स्वभाव ही से उच्छृंखल होते हैं।

सामाजिक बन्धनों की तरह धर्म्मान्धिता के भी वे बहुत अधिक वशीभूत न थे। धर्मान्धिता उनमें न थी। आपके सिद्धान्त थे "प्रेम एव परोधर्म्म" और "शत्रोरपि गुणावाच्या दोषो वाच्या गुरोरपि।' किसी विरोधी धर्म्म से उन्हें आन्तरिक घृणा न थी। वे आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, धर्म्मसमाज सब कहीं अक्सर चले जाते थे। शायद कुछ दिन तक किसी पादरी को पढ़ाने की नौकरी भी आपने कर ली थी। उन्होंने एक सनातन-हिन्दू-धर्म्मावलम्बी के घर में जन्म लिया था और ऐसे ही धर्म्मावलम्बी लोगों के साथ वे बैठते-उठते भी थे। इसलिए इस धर्म्म की तरफ उनकी प्रवृत्ति स्वभाव ही से अधिक थी। यह इनके लेखों से ही जाहिर है। अकेला इनका "शैव सर्वस्व" ही इस बात का पक्का सबूत है। एक दफा कलकत्ते की हाईकोर्ट में किसी जज ने शालिग्राम की मूर्ति मँगवाई थी। आपने कई लेख इस बात के खिलाफ लिखे थे।

कांग्रेस को ये अच्छा समझते थे। उसके ये पक्षपाती थे। एक दफा मदरास और एक दफा इलाहाबाद की कांग्रेस में कानपुर से प्रतिनिधि होकर आप भी गये थे। गोरक्षा के ये बहुत बड़े हिमायती थे। अपनी कई कविताओं में इन्होंने गोरक्षा पर जोर दिया है। सुनते हैं कानपुर में जो इस समय गोशाला है, उसकी स्थापना के लिए प्रयत्न करने वालों में ये भी थे। एक दफा स्वामी भास्करानन्द के साथ ये कन्नौज गये। वहाँ गोरक्षा पर इन्होंने एक व्याख्यान दिया। व्याख्यान में इन्होंने एक लावनी कही। उसका आरम्भ इस प्रकार है—

बां बां करि तृण दाबि दाँत सों
दुखित पुकारत गाई है।

इसमें करुण रस का इतना अतिरेक था कि मुसलमानों तक पर इसका असर हुआ और एकाध कसाइयों ने गोहत्या से तोबा कर दिया।

हरिश्चन्द्र पर भक्ति

हरिश्चन्द्र पर प्रतापनारायण की अपूर्व भक्ति थी। उनका "कवि वचन सुधा" पढ़ते ही पढ़ते हिन्दी पर ये अनुरागशील हुए थे। हरिश्चन्द्र की इन्होंने बहुत तारीफ की है। "ब्राह्मण" में मिश्र महाराज ने कई जगह हरिश्चन्द्र को ऐसे-ऐसे विशेषण दिये हैं जो सिर्फ बड़े-बड़े महात्माओं ही को दिये जाते हैं। इन्होंने उनके हाथ तक जोड़े हैं। यह बात उस समय किसी को अच्छी नहीं लगी। इससे इन पर आक्षेप भी हुए। आक्षेपों का इन्होंने यथामति उत्तर भी दिया।

हरिश्चन्द्र ने जब से प्रतापनारायण की "प्रेम पुष्पावली" की तारीफ की, तबसे इनका उत्साह बहुत बढ़ गया। हरिश्चन्द्र की आलोचना गोया इनके सुलेखक और सुकवि होने की एक शिलालिखित

सार्टीफिकेट' हो गयी। उसका उल्लेख करके इन्होंने कई दफा अपने ही मुँह अपनी तारीफ की। इसमें उन्होंने बाबू साहब का गुण गाते-गाते आकाश पाताल एक कर दिया। हरिश्चन्द्र को इन्होंने "पूज्यपाद" तक भी कहा है। अपने कई ग्रंथों के आदि में "हरिश्चन्द्रायनमः" लिखा है। उनके मरने पर इन्होंने "हरिश्चन्द्र सम्वत" लिखना तक शुरू कर दिया था।

मृत्यु

इनका शरीर क्या था रोग का चिर वास्तव्य था। कई दफा ये सख्त बीमार हुए, पर बच गये। सम्वत् 1951 की आषाढ़ शुक्ल चतुर्थी, रविवार, (अगस्त, 1894)[1] इनकी जीवन-यात्रा का अन्तिम दिन था। उसी दिन 38 वर्ष की उमर में रात के दस बजे के करीब इनका शरीर-पात हुआ। इनके मरने पर सभी हिन्दी अखबारों ने शोक-सूचक लेख लिखे। कवितायें भी बहुत-सी प्रकाशित हुईं। इनके कोई सन्तति नहीं है। इनकी विधवा अभी तक विद्यमान हैं। इनके पूर्वजों के उपार्जित दो-तीन मकान कानपुर में हैं। शायद उन्हीं के किराये पर इनका गुजर होता है। मरने के पहले कुछ काल के लिए प्रतापनारायण बाँकीपुर चले गये थे। बाबू रामदीन सिंह की इन पर कृपा थी। इसीलिए ये वहाँ गये थे। जैसा कि ऊपर लिखा गया है, इनकी प्रायः सभी किताबें खड्गविलास प्रेस के मालिक ही छापते हैं तथा बेचते हैं। मालूम नहीं उन्होंने पण्डित प्रतापनारायण की विधवा की कुछ मदद की या नहीं।

प्रतिभा, परिहासप्रीति, नाट्य-कौशल आदि

कोई कोई कहते हैं कि प्रतापनारायण संस्कृत भी अच्छी जानते थे और फारसी भी। किसी के मुँह से हमने सुना है कि वे अरबी तक जानते थे। परन्तु जो लोग हमेशा उनके पास बैठते-उठते थे उनका मत है कि वे अरबी नहीं जानते थे। उर्दू में तो वे बहुत अच्छी कविता करते थे। मुशायरों तक में जाते थे। दीवाने विरहमन में उनकी कविता संग्रहीत हैं। संस्कृत में भी उनके नाम से कुछ कविता छपी हैं और फारसी में भी। पर इस बात की तहकीकात करने की हम कोई जरूरत नहीं देखते कि वे इन भाषाओं में कितनी गति रखते थे। कवि के लिए जिस बात की सबसे अधिक जरूरत होती है वह प्रतिभा है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रतापनारायण में प्रतिभा थी और थोड़ी नहीं बहुत थी। विद्वत्ता होने पर कविता-शक्ति में कोई विशेषता नहीं आ सकती, उल्टी हानि चाहे उससे कुछ हो जाय। प्रतापनारायण की कविता में प्रतिभा का प्रमाण अनेक जगह पर मिलता है। उनकी कोई कोई उक्तियाँ भी अनोखी और नई हैं। उनकी कविता में विशेष रूप से हास्य रस का बहुत ही अच्छा परिपाक होता था। वे बड़ी शीघ्रता से छन्दों की रचना कर सकते थे। जैसा पहले कहा गया है, कानपुर में बहुधा लावनीबाजों के दो दलों में लावनीबाजी हुआ करती थी। कभी-कभी एक दल वाले उनको अपनी तरफ बिठा लेते थे और उस दल के इच्छानुसार विरोधी दल का गाना समाप्त होते होते वे नई लावनी तैयार कर देते थे। कभी दूसरे दल वाले भी ऐसा ही करते थे। कई दफा उन्होंने नाटक भी खेला था। उसमें उन्होंने अपनी हास्यमयी कविता से दर्शकों को खूब हँसाया था। फागुन में वे इकतारा लेकर उपदेशपूर्ण, पर हास्यजनक, होली, कबीर और पद आदि गाते थे। वे बहुत जल्द कविता करते थे। यथासमय कविता

---

1 सुन्दर दीक्षित : 'पंचांग 1951 वि०' (श्री काशिस्थ ब्रह्मसभा द्वारा निर्मित) के अनुसार आषाढ़ शुक्ल चतुर्थी सं० 1951 वि० को 6 जुलाई सन् 1894 तथा दिन शुक्रवार था।

बनाकर लोगों को वे मोहित कर देते थे। एक दफा एक साधु ने यह पद गाया। "तजहु मन हरि-विमुखन को संग। जिनकी संगति सदा पाय के परत भजन में भंग।" प्रतापनारायण ने इस पूरे मतलब को बिल्कुल ही उलटकर इस तरह गाया—"तजहु मन हरि-भक्तन को संग। जिनकी संगति सदा पाय के होत रंग में भंग।" इसी तरह सारे पद के अर्थ को उन्होंने बदल दिया। ये पूरे मसखरे थे।

यदि पण्डित प्रतापनारायण मिश्र की जीवनी में यह न लिखा जाय कि वे बड़े ही दिल्लगीबाज और किसी अंश में फक्कड़ थे, तो वह जीवनी अवश्य ही अपूर्ण समझी जायगी। एक बार नाटक में उनको स्त्री का रूप लेना था। इसलिए मूछों का मुड़वाना जरूरी था। आप बड़े ही भक्ति भाव से अपने पिता के सामने हाजिर हुए और बोले, "यदि आज्ञा दीजिए तो इनको मुड़वा डालूँ। इनका मुड़वाना जरूरी है। परन्तु मैं अवज्ञाकारी नहीं बनना चाहता।" पिता ने हँसकर आज्ञा दे दी।

पण्डित प्रतापनारायण नाटक खेलने के विशेष प्रेमी थे और जब-जब वे नाटक खेले तब-तब उनके चातुर्य की प्रशंसा हुई। एक बार उन्होंने "उर्दू बीबी" का पार्ट लिया। उस समय उनके और मुसलमान वेश्या के वेश में कोई अन्तर न था। दर्शकों में बैठी हुई एक प्रसिद्ध वेश्या से "बुआ सलाम" कहकर उन्होंने सलाम किया तो वह सहसा बोल उठी, "बेटी जीती रह।"

प्रतापनारायण जी बाजारों में धर्म्मशिक्षा देने वाले पादरियों से बहुत उलझा करते थे और उनको खूब छकाते थे। उनकी तर्क-शक्ति खूब प्रबल थी। एक बार आप कह बैठे कि दुनिया की प्रथम पुस्तक कोकशास्त्र है। पादरी के प्रश्न पर आपने इस शास्त्र के सिद्धान्तों का परिचय देकर बहुत-से सामान्य धर्म, कर्म उसी के अन्दर कह सुनाये। यह सब सुनकर पादरी साहब बहुत ही छके।

एक दिल्लगी और सुनिए। पादरी साहब से और उनसे इस तरह की बातचीत हुई—

पादरी—आप गाय को माता कहते हैं ?

प्रताप०—जी हाँ।

पादरी—तो बैल को आप चचा कहेंगे ?

प्रताप०—बेशक, रिश्ते से क्या इन्कार है ?

पादरी—हमने तो एक दिन अपनी आँख से एक बैल को मैला खाते देखा था।

प्रताप०—अजी साहब ! वह बैल ईसाई हो गया होगा !! हिन्दू समाज में ऐसे भी बैल होते हैं !!!

पादरी साहब चुप हो रहे, कहते ही क्या ?

एक बार कानपुर की म्युनिसिपैलिटी में इस बात का विचार हो रहा था कि भैरवघाट में मुर्दे बहाये जायँ या नहीं। (गंगाजी का प्रवाह उस घाट से कानपुर की बस्ती की ओर है।) इस तरह के प्रस्ताव होते-होते किसी ने कहा कि जले हुए मुर्दे की पिण्डी यदि इतने इंच से अधिक न हो, तो बहाया जाय। दर्शकों में प्रतापनारायण भी उपस्थित थे। आप खड़े होकर बोल उठे—"अरे दैया रे दैया ! मरेउ पर छाती नापी जाई।"

सुनते हैं ये साँस बन्द करके घण्टों तक मुर्दा से पड़े रहते थे। जिस अंग को चाहते थे (यथा एक कान या दोनों) उसे ये यथेच्छ हिलाते या फरकाते थे। ऐसा करने में और अंग स्थिर रहते थे। इससे किसी किसी का मत है कि ये योगविद्या जानते थे, पर प्रतापनारायण ऐसे आहार-विहार करने वाले का योगी होना कुछ असम्भव-सा जान पड़ता है।

प्रतापनारायण स्वतन्त्र थे, फक्कड़ थे । हिन्दी और हिन्दुस्तान के परम भक्त थे । अच्छे कवि, लेखक और उत्साही थे । प्रारब्ध ने इनको अधिक नहीं जीने दिया । नहीं तो इनसे समाज को अनेक लाभ पहुँचने की आशा थी ।

हिन्दी की हिमायत

यह कहने की जरूरत नहीं है कि ये (प्रतापनारायण मिश्र) हिन्दी के बहुत बड़े हिमायती थे । हिन्दी के पक्ष में इन्होंने ब्राह्मण में बहुत अच्छे-अच्छे लेख लिखे । एक दफा "फतेहगढ़ पंच" ने इनकी हिमायत के खिलाफ कुछ लिखा और हिन्दी में दोषोद्भावना की । इस पर प्रतापनारायण जामे से बाहर हो गये। आपने 'पंच' की दलीलों का बड़ी योग्यता से खण्डन किया । कई महीनों तक यह विवाद जारी रहा और प्रतापनारायण 'पंच' की बे-सिर-पैर की बातों की असारता दिखलाते रहे । हिन्दी के विषय में आपका उपदेश यह था—

चहहु जु साँचो निज कल्यान ।
तो सब मिलि भारत सन्तान ॥
जपो निरन्तर एक जबान ।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।
तबहि सुधरिहै जनम निदान ।
तबहिं भलो करिहैं भगवान ॥
जब रहिहै निशिदिन यह ध्यान ।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ॥

कविता के नमूने

पण्डित प्रतापनारायण की कविता के कुछ नमूने देकर हम इस लेख को पूरा करना चाहते हैं।

नोन, तेल, लकड़ी, घासहु पर टिकस लगे जहँ ।
चना, चिरौंजी मोल मिलै, जहँ दीन प्रजा कहँ ॥
जहाँ कृषी, वाणिज्य, शिल्प सेवा सब माँहीं ।
देशिन के हित कछू तत्त्व कहुँ कैसहु नाहीं ॥ 1 ॥
कहिय कहाँ लगि नृपति दबे हैं जहँ ऋन-भारन ।
तहँ तिनकी धन कथा कौन जे गृही सधारन ॥
जे अनुशासन करन हेत इत पठये जाहीं;
ते बहुधा विन काज प्रजा सों मिलत लजाहीं ॥ 2 ॥

लोकोक्ति शतक

छोंड़ि नागरी सुगुण आगरी उर्दू के रँगराते;
देशी वस्तु बिहाय विदेशिन को सर्वस्व लुटाते ।

मूरख हिन्दू कस न लहैं दुःख जिन कर यह ढंग दीठा;
"घर की खाँड़ खुरखुरी लागै चोरी का गुड़ मीठा" ॥ 1 ॥

नहिं सीखत सद्गुण कर नेम, निज हठ तजि न प्रचारत प्रेम ।
ता पर सुख चाहत अज्ञानी, "किस विरते पर तत्ता पानी" ॥ 2 ॥
तन-मन सों उद्योग न करहीं, बाबू बनबे के हित मरहीं ।
परदेशिन सेवत अनुरागे, "सब फ़ल खाय धतूरन लागे" ॥ 3 ॥

तृप्यन्ताम्

केहि विधि वैदिक कर्म होत कब,
कहा बखानत ऋक् यजु साम ।
हम सपनेहूँ में नहिं जानैं,
रहैं पेट के बने गुलाम ।
तुमहि लजावत जगत जनम लै,
दुहुँ लोकन में निपट निकाम ।
कहैं कौन मुख लाय हाय फिरि
ब्रह्मा बाबा तृप्यन्ताम् ।

× × ×

देख तुम्हारे फरजन्दों का,
तौरो - तरीके तुआमो - कलाम ।
खिदमत कैसे करूँ तुम्हारी,
अकल नहीं करती कुछ काम ।
आबे गंग नजर गुजरानूं
या कि मयें गूलगूं का जाम ।
मुंशी चितरगुपत साहब
तसलीम कहूँ या तिरपिंताम ।

इन नमूनों से प्रतापनारायण का स्वदेश और स्व-भाषा सम्बन्धी प्रेम टपका पड़ता है । स्वदेश-दशा का चित्र भी इनमें अच्छा देख पड़ता है ।

फुटकर कविता

अपने लेखों और चिट्ठियों में ये कभी-कभी बैसवारे की अपनी ठेठ देहाती बोली में वाक्य लिख दिया करते थे । उसमें अपूर्व रस भरा रहता था । इस तरह की देहाती बोली में इन्होंने कुछ कविताएँ भी की हैं । ऐसी कविता का एक नमूना सुनिये । एक वृद्ध आदमी अपनी दशा का वर्णन करता है—

बुढ़ापा

हाय बुढ़ापा, तोरे मारे
अब तो हम नकन्याय गयन ।
करत धरत कछु बनतै नाहीं,
कहाँ जान औ कैस करन ।
छिन भर चटक, छिनै मां मद्धिम,
जस बुझात खन होय दिया,
तैसे निख वख देख परत हैं,
हमरी अक्किल के लच्छन ॥ 1 ॥
अस कुछु उतरि जाति है जी ते,
बाजी बेरिया बाजी बात ।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवति,
मूंड़ुइ काहे न दै मारन ।
कहा चहौ कुछु, निकरत कुछु है,
जीभ राँड़ का है यहु हाल ।
कोऊ याकौ बात न समुझै,
चाहै बीसन दायँ कहन ॥ 2 ॥
दाढ़ी नाक याक मा मिलि गय,
बिन दाँतन मुँहुँ अस पोपलान ।
दाढ़िहि पर बहि-बहि आवति है,
कबौं तमाखू जो फाँकन ।
बार पाकि गै, रीरौ झुकि गै,
मूड़ौ सासुर हालन लाग ।
हाथ पायँ कुछु रहे न आपन,
केहिके आगे दुःख र्‌वावन ॥ 3 ॥
यही लगुठिया के बूते अब,
जस तस डोलित डालित हैं ।
जेहि का लैकै सब कामेन मा,
सदा खखारत फिरत रहन ।
जियत रहैं महराज सदा जौ,
हम ऐस्यन का पालत हैं ।
नाहीं तो अब कोधौं पूंछै,
केहि के कौने काम के हन ॥ 4 ॥

इस कविता में बुढ़ापे का बहुत ही अच्छा फोटो है । कविता खूब सरस है । पर हमें डर है कि जो इस बोली को अच्छी तरह नहीं जानते वे इसका पूरा मजा न पावेंगे । जिन लोगों का यह ख्याल है कि किसी विशेष प्रकार की भाषा या बोली में ही अच्छी और सरस कविता हो सकती है, वे देखें कि महागँवारी बोली में भी रसवती कविता हो सकती हैं । पर, हाँ, कवि प्रतिभावान होना चाहिए । प्रतापनारायण ने आल्हा तक में कविता की है और वह भी सरस और हृदयहारिणी है । कानपुर के दंगल पर उन्होंने एक पुस्तक ही लिख डाली है । इस पुस्तक में आदि से अन्त तक आल्हा ही है । इसके सिवा, कानपुर पर भी, आल्हा छन्द में आपने कविता की है । इस पिछली कविता का गोरक्षा-विषयक एक नमूना देखिए—

गैया माता तुमका सुमिरौं,
कीरति सबसे बड़ी तुम्हारि ।
करौ पालना तुम लरिकन कै,
पुरिखन बैतरनी देउ तारि ॥
तुम्हरें दूध दही की महिमा,
जानैं देव पितर सब कोय ।
को अस तुम बिन दूसर जेहिका,
गोबर लगै पवित्तर होय ॥ 1 ॥
जिनके लरिका खेती करिकै,
पालैं मनइन के परिवार ।
ऐसी गाइन की रक्षा माँ,
जो कुछु जतन करौ सो थ्वार ॥
घास के बदले दूध पियावैं,
मरि कै देयँ हाड़ औ चाम ।
धनि वह तन-मन-धन जो आवै,
ऐसी जगदम्मा के काम ॥ 2 ॥
आल्ह खण्ड की पोथी लै कै,
द्याखौ तनुक लिखा कस आय ।
"जहाँ रोसैयाँ है ऊदन कै,
भुरवा मुगुल पछारै गाय ॥"
को अस हिन्दू ते पैदा है,
जो अस हालु देखि एक साथ ।
रकत के आँसन रोय न उठिहै,
माथे पटकि दुहत्था हाथ ॥ 3 ॥
सब दुख सुख तो जैसे तैसे
गाइन के नहिं सुनै गुहार ।

जब सुधि आवै मोहि गैयन की
नैनन बहति रकत की धार ॥
हियाँ की बातैं हियनैं रहिं गई,
अब कम्मू कै सुनौ हवाल ।
जहाँ के हिन्दू तन-मन-धन ते,
निसिदिन करैं धरम प्रतिपाल ॥ 4 ॥

प्रतापनारायण के आल्हा का नमूना आप देख चुके । अब उनकी भक्तिरस में सराबोर कविता का एक उदाहरण लीजिए—

आगे रहे गनिका गज गीध,
सुतौ अब कोउ दिखात नहीं हैं ।
पाप - परायन ताप भरे,
परताप समान न आन कहीं है ॥
हे सुखदायक प्रेमनिधें !
जग यों तो भले औ बुरे सबही हैं ।
दीनदयाल औ दीन प्रभो,
तुमसे तुमहीं, हमसे हमहीं हैं ॥ 1 ॥

इस पद की तारीफ हम नहीं कर सकते । सरस कविता का बहुत ही अच्छा नमूना है ।

उर्दू कविता

अब इनकी थोड़ी सी उर्दू कविता सुनिए । यह कविता एक तरह के समस्या समूह की पूर्ति है । इसमें पहली पंक्ति इनकी है, दूसरी और किसी की । पर मेल दोनों का खूब मिल गया है—

ग़ज़ल

वो बद खू राह क्या जानैं वफा की ।
'अगर गफलत से बाज आया जफा की' ॥ 1 ॥

न मारी गाय गोचारन किया बन्दा ।
'तलाकी की जो जालिम ने तो क्या की' ॥ 2 ॥

मियाँ आये हैं बेगारी पकड़ने ।
'कहे देती है शोखी नक्श पा की' ॥ 3 ॥

पुलिस ने और बटमारों को शह दी ।
'मरज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की' ॥ 4 ॥

जो काफिर कर गया मन्दिर में विद्दत ।
'वो जाता है दुहाई है खुदा की' ॥ 5 ॥

शबे कतलागरे के हिन्दुओं पर ।
'हकीकत खुल गयी रोजे जजा की' ॥ 6 ॥

खबर हाकिम को दें इस फिक्र में हाय ।
'घटा की रात औ हसरत बढ़ा की' ॥ 7 ॥

कहा अव हम मरे साहब कलक्टर ।
'कहा मैं क्या करूँ मर्जी खुदा की' ॥ 8 ॥

जमीं पर किसके हो हिन्दू रहें अब ।
'खबर लादे कोई तहतुस्सरा की' ॥ 9 ॥
कोई पूँछै तो हिन्दुस्तानियों से ।
'कि तुमने किस तबक्का पर वफा की' ॥ 10 ॥

उसे मोमिन न समझो ऐ वरहमन ।
'सताये जो कोई खिलकत खुदा की' ॥ 11 ॥

यह 15 दिसम्बर, 1883 के 'ब्राह्मण' में प्रकाशित हुई थी । उस समय गोरक्षा-विषयक खूब चर्चा चल रही थी । आगरे में हिन्दू-मुसलमानों के बीच झगड़ा भी उसी दरमियान में हुआ था । बेगारी पकड़ने के विषय में भी 'ब्राह्मण' में कई लेख निकले थे । इन्हीं बातों को लक्ष्य करके 'बरहमन' साहब ने यह ग़ज़ल गाई थी । उर्दू में आप अपना तखल्लुस 'बरहमन' लिखते थे । इसी तरह की एक और कविता सुन लीजिए—

विवादी बढ़े हैं यहाँ कैसे कैसे ।
'कलाम आते हैं दरमियाँ कैसे कैसे' ॥ 1 ॥

जहाँ देखिये म्लेच्छ सेना के हाथों ।
'मिटे नामियों के निशाँ कैसे कैसे' ॥ 2 ॥

बने पढ़ के गौरण्ड भाषा द्विजाती ।
'मुरीदाने पीरे-मुगाँ कैसे कैसे' ॥ 3 ॥

बसो मूर्खते ! देवि आर्यों के जी में ।
'तुम्हारे लिए हैं मकाँ कैसे कैसे' ॥ 4 ॥

अनुद्योग, आलस्य, सन्तोष, सेवा ।
'हमारे भी हैं मिहरबाँ कैसे कैसे' ॥ 5 ॥

न आई दया दुष्ट गो-भक्षियों को ।
'तड़पते रहे नौजवाँ कैसे कैसे' ॥ 6 ॥

विधाता ने याँ मक्खियाँ मारने को ।
'बनाये हैं खुशरू जवाँ कैसे कैसे' ॥ 7 ॥

अभी देखिए क्या दशा देश की हो।
'बदलता है रंग आसमाँ कैसे - कैसे' ॥ 8 ॥

हैं निर्गन्ध इस भारती वाटिका के।
'गुलो लाल औ अरगवाँ कैसे - कैसे' ॥ 9 ॥

हमें वह दुखद हाय भूला है जिसने।
'तवाना किया नातवाँ कैसे - कैसे' ॥ 10 ॥

प्रताप अब तो होटल में निर्लज्जता के।
'मजे लूटती हैं जवाँ कैसे - कैसे' ॥ 11 ॥

शृंगार-रस की कविता

कानपुर के कवियों ने जो "रसिक समाज" नाम का कवि-समाज स्थापित किया था, उसके प्रतापनारायण जी बड़े उत्साही मेम्बर थे। जब तक वह उनके सामने चला, उसमें प्रायः समस्या-पूर्ति ही का उद्योग रहा। 'रसिक वाटिका' नाम की पुस्तक की एक जिल्द में इस समाज के काव्य-कलाप के साथ प्रतापनारायण की जो कविता छपी है, उससे हम उनके कुछ छन्द चुनकर पाठकों को भेंट करते हैं। प्रतापनारायण भी शृंगार रस के प्रेमी थे। ये उदाहरण उसी रस के हैं—

पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ ?

बन बैठी है मान की मूरति-सी,
मुख बोलति बोलै न नाहिं न हाँ।
तुमहीं मनुहारि कै हारि परे,
सखियान को कौन चलाई कहाँ ?
बरखा है प्रताप जू धीर धरौ,
अब लों मनु को समुझायो जहाँ।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू,
पपिहा जब पूछिहै पीव कहाँ ? 1 ॥

वीर बली धुरवा धमकावै

बूढ़ि मरैं न समुद्र में हाय,
पै नाहक हाथ निछीछे डुबावें।
का तजि लाज गराज किये,
मुख कारो लिए इतही उत धावैं।
नारि दुखारिन पै बज मारे,
वृथा बुंदियान के बान चलावैं।
वीर है तो बल वीरहि जाय कै,
वीर बली धुरवा धमकावै ॥ 2 ॥

बजनी घुँघुरू रजनी उजियारी

आसव छाकि खुली छति पै
खुलि खेलति जोबन की मतवारी ।
गात ही गात अदा ही अदा,
कढ़ै बात ही बात सुधा सुखकारी ।
रंग रसै रस रागि अलापि,
नचै परताप गरे भुज डारी ।
ताछिन छावै अजीब मजा,
बजनी घुँघुरू रजनी उजियारी ॥ 3 ॥

देह धरे को यहै फल भाई

नैनन में बसै साँवरो रूप,
रहै मुख नाम सदा सुखदाई ।
त्यों श्रुति में ब्रज केलि कथा,
परिपूरन प्रेम प्रताप बड़ाई ।
कोऊ कछू कहै होय कहूँ कछु,
पै जिय में परवाहि न लाई ।
नेह निभै नद नन्दन सों नर,
देह धरे को यहै फल भाई ॥ 4 ॥

धुरवान की धावन सावन में

सिर चोटी गुहावत फूलन सों,
मेंहदी रचि हाथन पावन में ।
परताप त्यों चुनरी सूही सजी,
मन मोहती हावन भावन में ।
निशि द्यौस वितावती पीतम के संग,
झूलन में औ झुलावन में ।
उनहीं को सुहावन लागत है,
धुरवान की धावन सावन में ॥ 5 ॥

संगीत शाकुन्तल

पण्डित प्रतापनारायण ने शकुन्तला नाटक का जो अनुवाद हिन्दी में किया है, वह अनुवाद नहीं कहा जा सकता । हाँ, स्वतन्त्र या स्वच्छन्द अनुवाद कहा जा सकता है । मूल के भावों को इन्होंने अनुवाद में बहुत कुछ घटा बढ़ा दिया है । इस बात को इन्होंने भूमिका में स्वीकार किया है । ऐसा करने से अगर कहीं-कहीं मूल का मजा जाता रहा है, तो कहीं-कहीं अधिक भी हो गया है । हम नहीं कह सकते कि

यह अनुवाद सब कहीं अच्छा ही हुआ है; पर इसका अधिक अंश रोचक, रसवान और मनोहर है। इस अनुवाद का एक नमूना देकर हम 'प्रेमदास', 'प्रताप हरि' से विदा होंगे।

चौथे अंक की बात है, कण्व प्रवास से वापस आ गये हैं। उनकी आज्ञा से उनका शिष्य यह देखने के लिए कुटी से बाहर निकला है कि कितनी रात बाकी है। उधर देखने पर उसे मालूम हुआ कि प्रातःकाल हो गया। तब वह कहता है—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना
माविष्कृतोऽरुण पुरः सरएकतोऽर्कः।
तेजोयुगस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्याम्
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु ॥ 1 ॥
अन्तर्हिते शशिनि शैव कुमुद्वती ये
दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय शोभा।
इष्ट प्रवास जनितान्यबलाजनस्य,
दुःखानि नूनमति मात्रसुदुःसहनि ॥ 2 ॥

भावार्थ— 'जिन औषधियों का सेवन बड़े-बड़े भयंकर रोगों का ही नहीं, मृत्यु तक का नाश कर सकता है, उन्हीं का स्वामी, चन्द्रमा, एक तरफ अस्त हो रहा है, दूसरी तरफ जिसके जंघाये (रानैं) तक नहीं, ऐसे अरुन सारथी को रथ के आगे बिठला कर सूर्य उदित हो रहा है। इस प्रकार एक ही साथ दो तेजस्वी पिण्डों की सम्पदा और विपदा को दिखलाकर, अपनी-अपनी अवस्था विशेष में मनुष्यों का मानों नियमन किया जा रहा है। अर्थात् सम्पत्ति और विपत्ति के समय किसी को भी हर्ष या विषाद करना उचित नहीं ॥ 1 ॥ जो कुमुदिनी अपनी प्रफुल्लित अवस्था में परम शोभामयी थी, वही चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर मेरी आँखों को अच्छी नहीं लगती। अब उसमें उसकी पहली शोभा नहीं रही। उस शोभा का अब स्मरण मात्र शेष है; वह दिखाई नहीं देती। सच है, कि अपने प्रियतम के प्रवासी होने के कारण उत्पन्न हुआ दुःख अबलाओं को अत्यन्त दुःसह होता है।'

प्रतापनारायण ने इसका अनुवाद नहीं किया, सिर्फ इसकी छाया लेकर उन्होंने जो कविता लिखी है वह इस प्रकार है—

प्रभावती

कैसी कमनीय है प्रभा प्रभात काल की !
दिनकर करि इत उजास, इति लहि ससि तेज नाश,
कै रहे दसा प्रकास, मानों जग जाल की।
कुमुदिनी शोभा-विहीन, विरहिन इव दुखित दीन,
लागति नैंनन मलीन, देखत दिसि ताल की।
दरभ की कुटीन त्याग, उठहिं मोर जागि-जागि,
वेदिन ढिंग लागि-लागि, ऐड़नि मृग माल की।
इह छिनि सब साधु सन्त, प्रेम उरि ह्वै इकन्त,
सुमिरत अनन्त महिमा, त्रिभुवन - महिपाल की ॥ 1 ॥

दोहा–

तो हमहूँ गुरुदेव सों करैं निवेदन जाय ।
नाथ होम वेला भई, अरुन उदित दरसाय ॥ 2 ॥

बदरि विरिछ के पात पै ओस बुन्द छवि छाय ।
कैसी लगति सुहावनी अरुन उदय द्रिति पाय ॥ 3 ॥

सवैया–

सोई निशापति जो गिरि मेरु पै
पाँव धरे विचरै निसि माहीं ।
त्यों तम तोमहिं नासत जासु,
मरीचिका श्रीहरि धाम लौ जाहीं ।
तैज गँवाई गिरै नभ ते सोउ,
भोर समय दवि के रवि पाहीं ।
या जग माहीं बड़े हूँ बड़ेन की,
दीसति है थिरि सम्पति नाहीं ॥ 4 ॥

प्रतापनारायण का अनुवाद इसी तरह का है । इसी से उसकी योग्यता का अन्दाज पाठक कर सकते हैं । पिछला सवैया अपूर्व है; याद रखने लायक है; शिक्षा ग्रहण करने लायक है ।

लिख चुकने पर हमने यह लेख उन सज्जनों को दिखलाया जो प्रतापनारायण से अच्छी तरह परिचित हैं और जो उनके पास हमेशा बैठा उठा करते थे । उनकी राय से, जहाँ कहीं संशोधन की जरूरत समझी गयी, वहाँ हमने संशोधन कर दिया । इस पर भी यदि कोई बात भ्रम से ऐसी लिख गयी हो तो पाठक क्षमा करें । इस संशोधन-कार्य में हमें अपने माननीय मित्र राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', बी०ए०बी०एल० से बहुत मदद मिली है । इसलिए हम उनके कृतज्ञ हैं ।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

हिन्दी-साहित्य के आकाश में हरिश्चन्द्र के उदय होने के थोड़े दिन पश्चात् एक ऐसा चमकता हुआ तारा उदित हुआ था, जिसकी चमक-दमक को देखकर लोग उसे दूसरा चन्द्र कहने लगे थे। उस चन्द्र के अस्त हो जाने के पश्चात् इस तारे की ज्योति और बढ़ी। बड़े हर्ष के साथ कितनों ही के मुख से यह ध्वनि निकलने लगी कि यही उस चन्द्र की जगह लेगा। पर दुःख की बात है कि वैसा होने से पहले ही कुछ दिन बाद यह उज्ज्वल नक्षत्र भी अस्त हो गया। इसका नाम पण्डित प्रतापनारायण मिश्र था। हरिश्चन्द्र के जन्म से 6 साल पीछे आश्विन बदी 9, संवत् 1913 विक्रमाब्द को प्रताप का जन्म हुआ और उनकी मृत्यु से दस साल पीछे आषाढ़ सुदी 4, संवत् 1951 को शरीरान्त हुआ। हरिश्चन्द्र जी 34 साल जिये और प्रतापनारायण 38 साल।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र में बहुत बातें बाबू हरिश्चन्द्र की सी थीं। कितनी ही बातों में कम थे; पर एक आध में बढ़कर भी थे। यह सब बातें आगे चलकर स्वयं पाठकों की समझ में आ जायेंगी। जिस गुण में वह कितनी ही बार हरिश्चन्द्र के बराबर हो जाते थे, वह उनकी कवित्वशक्ति और सुन्दर भाषा लिखने की शैली थी। हिन्दी गद्य और पद्य के लिखने में हरिश्चन्द्र जैसे तेज, तीखे और बेधड़क थे, प्रतापनारायण भी वैसे ही थे। दूसरे लोग बहुत सोच-सोचकर और बड़ी चेष्टा से जो खूबियाँ अपने गद्य और पद्य में पैदा करते थे, वह प्रतापनारायण मिश्र को सामने पड़ी मिल जाती थीं। इस लेख के लेखक का और उनका कोई डेढ़ साल तक साथ रहा है। रहना-सहना, उठना-बैठना, लिखना-पढ़ना सब एक साथ होता था। इससे उनके स्वभाव और व्यवहार की एक-एक बात मूर्तिमान सम्मुख दिखाई देती है। वह बातें करते-करते कविता करते थे, चलते-चलते गीत बना डालते थे। सीधी-सीधी बातों में दिल्लगी पैदा कर देते थे। तबसे कितने ही विद्वानों, पण्डितों, कवियों से मेल-जोल हुआ है, बातें हुई हैं और कितनों ही में उनका-सा एक आध गुण भी देखने में आया है। पर उतने गुणों से युक्त और हिन्दी साहित्य-सेवी देखने में न आया।

इस लेखक पर मिश्रजी की बड़ी कृपा थी और यह भी उन पर बहुत भक्ति रखता था। इससे आज ग्यारह वर्ष तक इनके विषय में कुछ न लिखा जाना बहुतों के जी में यह विचार उत्पन्न करेगा कि इतने दिन तक इनकी जीवनी क्यों न लिखी गई ? इसका कारण यह है कि प्रताप की जीवनी लिखने के एक और सज्जन बड़े हकदार थे। वह स्वर्गीय पाण्डे प्रभूदयाल थे, जो प्रतापजी के प्रिय शिष्य और इस लेखक के साथी थे। जब-जब लिखने का इरादा किया गया, पाण्डे जी ने यही कहा कि अपने गुरु की जीवनी हम आप लिखेंगे। स्वर्गीय महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंहजी भी पण्डित प्रतापनारायण जी पर बड़ी भक्ति रखते थे। उन्होंने जीवनी लिखने का सब सामान पाण्डेजी को सौंप दिया था। दुःख की बात

है कि पाण्डेजी उनकी जीवनी न लिख पाये और स्वर्गगामी हो गये । जीवनी की बहुत अच्छी सामग्री भी पाण्डेजी के घर रह गई, जिसमें मिश्रजी का उर्दू और फारसी का दीवान भी है । मालूम नहीं और किसी के पास उनकी नकल है या नहीं । इस समय तो वह अलभ्य हो गया है । उधर बाबू रामदीनसिंह जी के स्वर्गवास से भी बहुत-सी चीजें बेपता हो गईं हैं, जिनका मिलना कठिन हो गया है । उनके सुयोग्य पुत्र बाबू रामरणविजयसिंह ने उनमें से बहुत-सी चीजें तलाश की हैं; पर सब कहाँ, आधी भी नहीं मिलीं । बहुत-सी ऐसी चीजें थीं, जो प्रतापनारायणजी के साथ ही चली गईं । यह लेखक उस समय उनको बहुत सुलभ समझता था, पर अब वह दुर्लभ ही नहीं; अलभ्य भी हैं । खैर, जो कुछ मौजूद है, उसी को लेकर प्रताप-चरित लिख डालना उचित समझा गया ।

प्रतापनारायणजी स्वयं 'प्रताप-चरित्र' के नाम से अपनी एक जीवनी 'ब्राह्मण' पत्र में छापने लगे थे, पर उसके समाप्त करने से पहले आप ही समाप्त हो गये । आज हम उनकी लिखी हुई वह अधूरी जीवनी 'ब्राह्मण' खंड 5, संख्या 2, 3 और 5 से उद्धृत कर देते हैं । इससे उनके वंश आदि का अच्छा परिचय मिलता है ।*

क्या अच्छा होता, जो पण्डित प्रतापनारायण मिश्र अपनी जीवनी आप लिख डालते । बड़े मौके से उन्होंने अपने 'ब्राह्मण' पत्र में अपनी जीवनी स्वयं लिखनी आरम्भ की थी । उसके बाद वह चार-पाँच साल तक जीते रहे थे । यदि थोड़ी-थोड़ी भी लिखते तो बहुत कुछ लिख जाते । अपनी जीवनी का जितना अंश वह 'ब्राह्मण' के तीन अंकों में लिख गये हैं, उसे पढ़कर बार-बार जी में यही होता है कि यदि सब नहीं, तो अपने पिता के सम्बन्ध की पूरी बातें और अपने लड़कपन की बातें तो लिख ही जाते । प्रसिद्ध लोगों की जीवनियाँ बहुत करके दूसरों ही की लिखी हुई होती हैं, पर बहुत से प्रसिद्ध लोगों ने अपनी पूरी या अधूरी जीवनियाँ स्वयं भी लिखी हैं और वह दूसरों की लिखी जीवनियों से कम काम की नहीं हुईं, वरंच कितने ही अंशों में बढ़कर हुई हैं । मनुष्य की कितनी ही बातें और कितने ही प्रकार ऐसे हैं, जिनको वह स्वयं ही भली-भाँति जानता है और लिख सकता है ।

हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी जीवनी के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें लिखी हैं । वह ऐसी हैं कि यदि उन्हें वह स्वयं न लिखते तो कोई न लिखता और न कोई जानता । पण्डित प्रतापनारायण ने अपनी लिखी जीवनी में अपना वंश-परिचय जिस उत्तम रीति से दिया है, उससे कहीं बढ़कर अपने पिता का हाल लिखते और अपना हाल, तो वह न जाने कितना सुन्दर लिखते । हमने उनके मुँह से उनके लड़कपन की कितनी ही बातें सुनी हैं । सुनकर बड़ी हँसी आती थी, बड़ा आमोद होता था, बड़ा आनन्द आता था । उनके कहने का ढंग बड़ा बाँका था । बात करते समय सबका ध्यान अपनी ओर खींच लेने की शक्ति उनमें विलक्षण थी । इससे कहते हैं कि यदि वह अपने लड़कपन की बातें भी लिख जाते तो विचित्र होतीं । इसके सिवा वह मन के बड़े साफ थे । अपने किसी दोष को छिपाना भी दोष समझते थे । सब कह डालते थे । ऐसे खरे आदमी की लेखनी से न जाने कितनी खरी बातें निकल जातीं । पर वह सब बातें तो होने नहीं पाईं और अब उसके होने का कोई उपाय भी नहीं है । लाचार, जो कुछ मौजूद है, उसी से काम लिया जाता है ।

* इस स्थान पर गुप्तजी ने प्रतापनारायण जी द्वारा 'ब्राह्मण' मासिक पत्र में लिखित 'प्रताप-चरित्र' निबन्ध मूल रूप में दिया है, जिसे इस पुस्तक के पृष्ठ 86-90 पर पृथक रूप से दिया जा चुका है ।

वंश-परिचय

अपने वंश का परिचय देते हुए पण्डित प्रतापनारायण जी ने अपने वृद्ध प्रपितामह तक का नाम बताया है । उनके बड़े, उन्नाव जिले के बैजेगाँव में रहते थे । वहीं उनका जन्म आश्विन बदी 9 सोमवार संवत् 1913 को हुआ । उनके पिता पण्डित संकटादीन मातृ-पितृ-विहीन होकर थोड़ी-सी उमर में कानपुर आये थे । इससे पहले उनका कानपुर से कुछ सम्बन्ध न था । उनके विषय में इतना ही मालूम हुआ है कि वह एक प्रतिष्ठित ज्योतिषी थे । कानपुर जूट मील के मैनेजर बीयर साहब उनके ज्योतिष के गुणों पर मोहित थे । एक बार बीयर को तार मिला कि उनकी मेम विलायत में बहुत बीमार हैं । साहब बहुत घबरा गये और सोचने लगे कि क्या करना चाहिए ? उनके हिन्दुस्तानी क्लर्कों ने उनसे पण्डित संकटादीन की बात कही । साहब ने मिश्र जी को बुलाया और अपनी मेम की बीमारी के विषय में उनसे प्रश्न किया । मिश्रजी ने थोड़ी ही देर में उत्तर दिया कि आपकी मेम आपसे मिलने के लिए बहुत जल्द आना चाहती हैं । साहब को मिश्रजी की बातों पर कुछ विश्वास न हुआ । उन्होंने समझा कि यह बात वाहियात है । पर दो ही दिन में जब मेम उनके सामने आ खड़ी हुईं तो साहब बहुत चकराये । उनके आश्चर्य का कुछ ठिकाना न रहा और तब से वह मिश्रजी का बहुत आदर करने लगे ।

शिक्षा

प्रतापजी के पिता बालक प्रताप को अपने साथ कानपुर लाये । वह ज्योतिषी थे, इससे उन्होंने पुत्र को भी ज्योतिष पढ़ाना आरम्भ किया । पिता से प्रताप कुछ दिन शीघ्रबोध और मुहूर्त चिन्तामणि पढ़ते रहे । पर इन पोथियों में प्रतापजी का मन न लगा । तब वह अंग्रेजी स्कूल में दाखिल किये गये । वहाँ उन्होंने कुछ सीखा जरूर, पर केवल मेधा के प्रताप से । पढ़ने में परिश्रम उन्होंने कभी न किया और न कभी जी लगाकर पढ़ा । इसी से उनकी पढ़ाई सब प्रकार अधूरी रही; तिस पर भी वह अंग्रेजी खासी बोल सकते थे । आध-आध घण्टा बराबर अंग्रेजी में बातें किये जाते थे; अंग्रेजी अखबार पढ़ लेते थे; कभी इच्छा करती तो कुछ अनुवाद भी कर लेते थे पर बड़ी अनिच्छा से । अंग्रेजी पोथियों और अखबार पढ़ने में वह जरा मन न लगाते थे । कोई इसके लिए दबाता था तो भी परवाह न करते थे । मुँह बना के कागज या पोथी फेंक देते थे । यदि वह साल दो साल जी लगाकर अंग्रेजी पोथियाँ या अखबार पढ़ते, तो अच्छे अंग्रेजी पढ़ों में उनकी गिनती होती । यही हाल उनका संस्कृत का था । छः-छः और आठ-आठ साल से जो विद्यार्थी कौमुदी रटते थे अथवा जिन पण्डितों को कथा कहते युग बीत गये थे, उनके साथ हमने प्रतापनारायण जी को बातें करते देखा है । यह उनसे कुछ जल्दी बोलते थे और अच्छा बोलते थे, पर रुचि आपकी संस्कृत पुस्तकों में भी वैसी ही थी जैसी अंग्रेजी पुस्तकों में ।

उर्दू में भी वह बन्द न थे । उर्दू में उनकी बहुत-सी कविताएँ मौजूद है । गजलें लिखते थे, मसनवी लिखते थे । लावनियाँ लिखते थे । उर्दू में उनका एक छोटा-सा दीवान भी देखा था । फारसी गजलों पर अपने उर्दू मिसरे लगाकर उनसे मुखम्मस वगैरह बनाते थे । गजल के हर टुकड़े में दो-दो चरण होते हैं, उन पर तीन-तीन चरण और जोड़, मुखम्मस बनाने की रीति उर्दू में बहुत प्रचलित है । प्रताप ने फारसी गजलों पर अपने मिसरे लगा-लगाकर बहुत से मुखम्मस बनाये थे । उनमें से कितने ही ऐसे थे कि सुनकर हँसते-हँसते आँतों में बल पड़-पड़ कर जाते थे । ऐसी कविताएँ अधिक उनको जबानी याद थीं । शायद

अब उनका मिलना कठिन है । सारांश यह है कि फारसी-उर्दू कविता को वह खूब समझते थे । उर्दू में कविता करते थे और फारसी में भी कभी-कभी कुछ कह लेते थे । फारसी की कई कविताओं का उन्होंने हिन्दी अनुवाद किया है । इस प्रकार के अनुवाद बहुधा दिल्लगी के लिये किया करते ।

जिन दिनों में स्वामी दयानन्द जी के नाम की बड़ी धूम-धाम पड़ी थी, उन दिनों मुरादाबाद में मुन्शी इन्द्रमणि के नाम की भी बड़ी धूम मची थी । आदि में स्वामीजी का बहुत कुछ मेल भी था । उन दिनों एक खत्री मुसलमान हो गया था । उसने हिन्दुओं के विरुद्ध उर्दू में एक पोथी लिखी थी । मुन्शीजी ने उत्तर में एक फारसी पुस्तक लिखी । तब दूसरे मुसलमान उस नये मुसलमान की हिमायत को खड़े हुए । मुन्शी जी ने उनकी पोथियों के उत्तर में भी कई पोथियाँ लिखीं । यह सब पोथियाँ पण्डित प्रतापनारायण ने पढ़ डाली थीं । एक बार इन्द्रमणि कानपुर गये थे; प्रताप उनसे मिलने गये और वहाँ उन्होंने अपनी कविताएँ सुनाईं, जिनका फारसी से हिन्दी में अनुवाद किया था । वह अनुवाद प्रायः उन कविताओं के थे जो मुन्शीजी ने मुसलमानों के उत्तर में लिखी थीं । मुन्शीजी सुनकर बहुत प्रसन्न हुए । आपने प्रताप से पूछा कि फारसी कहाँ तक पढ़े हो ? प्रताप ने जवाब दिया– 'तोहफतुल इसलाम' और 'पादाशे इसलाम' तक । मुन्शीजी सुनकर हँस पड़े । हँसने का कारण यह था कि उक्त दोनों फारसी की पोथियाँ वही थीं, जो मुन्शीजी ने मुसलमानों के उत्तर में लिखी थीं ।

हिन्दी का प्रतापनारायण को बड़ा शौक था । हिन्दी किताबें और हिन्दी अखबार वह दिन-रात पढ़ा करते थे । जो पोथियाँ व अखबार रद्दी समझ के फेंक दिए जाते थे, उन्हें भी वह पढ़ डालते थे । जिस समय हमने उनको देखा, उस समय उनकी शारीरिक अवस्था अच्छी न थी; बड़े कमजोर थे । इससे लेटे-लेटे ही पढ़ा करते थे और लेटे-लेटे ही लिखा करते थे; बैठकर लिखने-पढ़ने की शक्ति उनमें कम थी । उनके अक्षर एक विशेष सूरत-शकल के थे । पंक्तियाँ सीधी नहीं लिख सकते थे । टेढ़ी भी यहाँ तक लिखते थे कि दो-दो अढ़ाई-अढ़ाई अंगुल का फासला पड़ता था और फिर उसके नीचे टेढ़ी-टेढ़ी पंक्तियाँ लिखे चले जाते थे । उर्दू-हिन्दी में ऐसा अधिक करते थे, अंग्रेजी में कम । उर्दू में भी उनमें अच्छे लेख लिखने की शक्ति थी । भारत-प्रताप में उनके कई उर्दू लेख छपे थे, जो एकदम उर्दू ढंग पर थे । हिन्दी वे कैसी जानते थे यह बात यहाँ नहीं बताई जा सकती, वह आगे चलकर मालूम होगी । उनकी हिन्दी ही को लेकर उनकी जीवनी लिखी जाती है ।

–भारतमित्र, 1907 ई०

ब्राह्मण-सम्पादक—पं० प्रतापनारायण मिश्र

पं० बालकृष्ण भट्ट

प्रात स्मरणीय बाबू हरिश्चन्द्र को जो हिन्दी का जन्मदाता कहें, तो प्रतापनारायण मिश्र को निःसन्देह उस स्तनधन्या दुध-मुही बालिका का पालन पोषणकर्ता कहना ही पड़ेगा, क्योंकि हरिश्चन्द्र के उपरान्त इसे अनेक रोग-दोष से सर्वदा नष्ट न हो जाने से बचा रखने वाले यही देख पड़ें और गद्य, पद्य-मय अपने सरल लेख से यत्किंचित इसका भण्डार उसी तरह से भरते रहे जिस ढंग से उक्त बाबू साहब ने आरम्भ किया था—पं० प्रतापनारायण में बड़ी तारीफ की बात यह थी कि ये निःस्पृह और निज लाभ की किंचित इच्छा न रख हिन्दी की उन्नति में लगे हुए थे, जो बात इस समय के स्वार्थतत्पर लोगों की चलन के विरुद्ध है ।···वह आत्मत्याग-मिश्रित उदार भाव के नमूना थे । हिन्दी साहित्यार्णव के थहाने वाले थे । विमल सौहार्द-भाव के आदर्श थे । ऐसे सत्पुरुष का अल्पायु होना निःसन्देह हमारी आर्य भाषा का अभाग्य नहीं तो इसे फिर क्या कहना चाहिए ।

हिन्दी 'प्रदीप', जिल्द 17, संख्या 6-7-8

स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र

बाबू गोपालराम गहमरी

(वर्तमान समय हिन्दी लेखकों की तीसरी पीढ़ी का समय है : पहली पीढ़ी के जो इने-गिने लेखक रह गए हैं उनमें बाबू गोपालराम गहमरी आज दिन भी उसी लगन से साहित्य-सेवा में जुटे हैं। इस लेख में आपने पहली पीढ़ी के प्रमुख लेखक स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का संस्मरण लिखा है। इससे पाठकों को यह भी मालूम होगा कि उस समय हिन्दी लेखकों की क्या स्थिति थी।)

—सम्पादक 'सरस्वती' मासिक सन् 1938 ई०

स्वर्गीय भारतेन्दु के समकक्ष कवि, जिन पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का संस्मरण मैं लिख रहा हूँ वे ज़ब मुझे चिट्ठी भेजते थे तब मोटो की तरह ऊपर "खुदादारम चेगम दारम" यह वाक्य लिखा करते थे। मिश्र जी उन्नाव जिले के बेत्थर[1] गाँव के रहने वाले थे। बाद को कानपुर आये। उनके वहाँ कई मकान थे और वहीं 'सतघरा'[2] मोहल्ले में रहते थे। उनका दर्शन मुझे कालाकाँकर में हुआ था। जब मैं 1892 ईसवी[3] में कालाकाँकर नरेश तत्रभवान राजा रामपाल सिंह की आज्ञा से 'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय विभाग में काम करने को पहुँचा तब वहाँ साहित्यिकों की एक नवरत्न कमिटी-सी हो गई थी। उस समय वहाँ पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित गुलाबचन्द्र चौबे, पण्डित रामलाल मिश्र, बाबू शशि भूषण चटर्जी, पण्डित गुरुदत्त शुक्ल और स्वयं राजा साहब आदि लोग थे।

मुझसे मिश्रजी का पत्रालाप और पहले से था, लेकिन उनका दर्शन वहीं पहले-पहल हुआ। मैं रात को वहाँ पहुँचा और बाबू बालमुकुन्द गुप्त के यहाँ ठहरा था। मेरा उनका (गुप्तजी का) पत्र द्वारा परिचय उसी समय से था जब बम्बई में सेठ गंगा विष्णुदास खेमराज के यहाँ था और मेरा 'श्रीवेंकटेश्वर प्रेस' में काम करते समय 'हिन्दोस्थान' में छपे त्रिपटी के महन्त के आचरण-सम्बन्धी एक लेख पर गुप्त जी से विवाद उठा था। गुप्त जी में यह गुण था कि जो उनकी भूल दिखाता था, उस पर वे अनखते नहीं थे, प्रसन्न होते थे। उसी के फलस्वरूप मुझे राजा साहब के यहाँ जाना पड़ा था।

जब सबेरे उठकर मैं दतून कर रहा था तभी उनके चौतरे पर चढ़ते हुए खद्दर का बहुत लम्बा कुर्ता और धोती पहने कन्धों पर तेल चुचुआते लम्बे बाल हलराते-झूमते हुए, नंगे सिर एक देवता ने कहा— 'तुमहूँ बलमुकुन्दवा की तरह सबेरे-सबेरे लकड़ी चबात हौ ?'

मैं तो उनका रूप, उनकी चाल, उनकी लम्बी-ऊँची नाक, उनका उज्ज्वल रूप देखकर धक-से रह गया। उनका रूप निहारने के सिवा मुझसे उस समय और कुछ कहते नहीं बना। वे अपनी बात पूरी

---

1. बैजेगाँव-बेथर, 2. नौवड़ा, 3. 1890 ई०

करते हुए वैठक में चले गये । मैं जल्दी-जल्दी प्रातःक्रिया से निपटकर भीतर गया । जिस खाट पर वे देवता बैठे थे उसी पर मुझे बिठाकर नम्रता से बोले—"आपने मुझे पहचाना न होगा । मेरा एक बौड़म कागज है, जो हर महीने आपके यहाँ भी जाया करता है । उसका नाम 'ब्राह्मण' है ।"

इससे आगे उनको और कुछ कहने की जरूरत ही नहीं रही । मैंने उठकर सादर प्रणाम किया, लेकिन उन्होंने फिर उसी सम्मान से बिठाकर अपना स्नेह दिखाया और बाबू बालमुकुन्द गुप्त भी जो इतनी देर से मुस्कुराते हुये 'हिन्दोस्थान' का अग्रलेख लिख रहे थे, समालाप में शामिल हुये । उसी दिन पण्डित जी के मुझे पहले-पहल साक्षात दर्शन हुए थे । तब से मेरे ऊपर मिश्र जी का स्नेह बहुत बढ़ा, वे मुझे अपने लड़के की तरह प्यार करने लगे । उनके साथ मैं कालाकाँकर के जंगलों में बहुत घूमता था । वहाँ स्वास्थ्यकर वायु के अतिरिक्त मकोय खाने को खूब मिलती थी । मैं घूमने का सदा से आदी हूँ । अपराह्न का समय हम लोगों का कालाकाँकर के जंगलों में ही बीतता था । 'हिन्दोस्थान' दैनिक 'आज' का आधा केवल चार पेज का निकलता था । बाबू बालमुकुन्द गुप्त अग्रलेख के सिवा टिप्पणियाँ भी लिखते थे । बाकी समाचार, कुछ साहित्य और स्वतन्त्र स्तम्भ के लिए मेरे ऊपर भार था । पण्डित प्रतापनारायण 'हिन्दोस्थान' पत्र के काव्य भाग के सम्पादक थे । वे फसली लेखक थे । जब कोई फसल जैसे जन्माष्टमी, पितृपक्ष, दशहरा, दीपावली, होली आदि आती तब हम लोग उनसे कविता लिया करते थे । पण्डित राधारमण चौबे और चौबे गुलाबचन्द्र जी अंग्रेजी अखबारों का सार संकलन करते थे । इंग्लिशमैन, पायनियर, मार्निंग पोस्ट और सिविल मिलिटरी गजट उन दिनों ऐंगलो इंडियन अखबारों में मुख्य थे । उनका मुँहतोड़ जवाब राजा रामपाल सिंह अपने 'हिन्दोस्थान' में दिया करते थे । आज कल हिन्दी में दैनिक पत्र बहुत निकलते हैं । काशी, कलकत्ता, दिल्ली, लाहौर, इलाहाबाद आदि से निकलने वाले विशाल हिन्दी दैनिक पत्रों के दर्शन जैसे इन दिनों हिन्दी पाठकों को हुआ करते हैं उन दिनों वैसे नहीं थे । हिन्दी के प्रेमी दैनिक पत्रों के लिए तरसते रहते थे । मासिक और साप्ताहिक पत्रों के लिए तो हिन्दी की दुनिया में कमी नहीं थी, लेकिन दैनिक पत्र तो हिन्दी का एक 'हिन्दोस्थान' ही था । उसमें एक बड़ी खूबी थी, वह यह कि वह दैनिक राजनैतिक विषयों से जैसे भरा-पूरा रहता था, वैसे ही साहित्य से भी सम्पन्न रहता था । आज कल हिन्दी दैनिक में राजनैतिक लेखों के आगे साहित्यिक विषय काव्य, नाटक आदि की चर्चा बहुत कम रहती है । किसी में हफ्ते में एक-दो लेख निकल जाते हैं । कहने का अभिप्राय यह कि राजनैतिक लेख जिस अधिकता से आज कल दैनिकों में निकलते हैं, वैसे साहित्य के लेखों की अधिकता नहीं देखी जाती ।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र में कई अनोखे गुण थे । कविता उनकी बहुत ऊँचे दर्जे की होती थी । भारतेन्दु ने भी उनके काव्य की बड़ाई की थी । नाटक और रूपक भी बड़ी ओजस्वी भाषा में लिखते थे । अपने लेख में जहाँ जिसका वर्णन करते, वहाँ उसको मानो मूर्तिमान खड़ा कर देते थे । कलिकौतुक नाटक, 'जुआरी-खुआरी रूपक' आदि उनकी लिखी पुस्तिकाओं के पढ़ने वाले इसके साक्षी हैं । बंकिम बाबू के उपन्यासों के अनुवाद उन्होंने हिन्दी में किये थे । उनकी पुस्तकें बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस में छपी हैं । उस प्रेस के स्वामी मिश्र जी की पुस्तकों को छापने पर भी उनके प्रचार में उदासीन ही रहे । भारतेन्दु जी की सब पुस्तकों के छापने का अधिकार भी 'खड्गविलास प्रेस' के स्वत्वाधिकारी को है, लेकिन उन पुस्तकों के प्रचार का उद्योग नहीं देखने में आया । भारतेन्दु जी की पुस्तकों का प्रचार तो काशी की नागरी प्रचारिणी ने भी प्रकाश करके किया । 'भारत जीवन प्रेस' में भी भारतेन्दु जी की पुस्तकें

प्रकाशित हुईं, लेकिन मिश्र जी की पुस्तकों का प्रचार आज कहीं नहीं दीख पड़ता। स्कूल और विद्यालयों की कोर्स बुकों में उनके लेख और कविताओं का प्रचार कुछ हद तक है, लेकिन साहित्य के क्षेत्र में उनकी कीर्ति लोप-सी हो रही है।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र सत्यभाषी थे। उनके मुँह से भूलकर भी असत्य कभी नहीं सुना। वे बड़े निर्भीक और बड़े हाजिर-जवाब थे।

कालाकाँकर के प्रवास-काल में एक पितृपक्ष में आग्रह करने पर उन्होंने 'तृप्यन्ताम' शीर्षक एक लम्बी कविता लिखी थी। उसमें उन्होंने समाजनीति, राजनीति और धर्म सब भर दिया था। उन्होंने कचहरियों की दशा देखकर उसमें लिखा है—

अब निज दुखहू रोय सकत नहिं
प्रजा, खरीदे बिन इस्टाम्प।

पण्डित जी अपने कान हिलाया करते थे। जब दो-चार मित्र इकट्ठे होते तब कहने पर पशुओं की तरह कान हिलाने लगते थे। हँसी-दिल्लगी में भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। एक बार भादों के महीने में वे हाथों में मेंहदी रचाये हुए आये। मैंने पूछा—'पण्डित जी, मेंहदी भी आप हाथों में तीज में रचाते हैं।' उन्होंने छूटते ही कहा—"अरे मेंहदी न रचाऊँ तो मेहरिया मारन लगे। यह उसी की आज्ञा से तीज की सौगात है।"

मिश्रजी बड़े हँसोड़ थे। कविता तो चलते-चलते करते थे। एक बार कानपुर में मित्र-मंडली के आयोजन से एक नाटक खेला गया। उसमें हिन्दी के बड़े-बड़े उद्भट लेखकों ने भाग लिया था। 'शब्दकोष' के रचयिता राधा बाबू भी उसमें थे। प्रसिद्ध कवि और लेखक राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' का भी उसमें सहयोग था।

मिश्रजी नास बहुत सूँघते थे। सूँघनी भरा बेला सदा अपने खद्दर के कुर्ते वाले पाकेट में रखते थे और जब चाहा बेला निकालकर हथेली पर नास उड़ेलते और सीधे नाक में सुरक जाते थे। एक बार उसी नाटक में राधा बाबू पियक्कड़ बनकर स्टेज पर आए और झूम-झूमकर कहने लगे—

कहाँ गई मेरी नास की पुड़िया,
कहाँ गई मेरी बोतल।
जिसको पीके ऐसे चलिहौं,
जैसे टट्टू कोतल।
चलो दिल्ली चलें, हरे-हरे खेतन की सैर करें॥

इसे पण्डित प्रतापनारायण मिश्र ने अपने ऊपर ताना समझा। उस समय वे नेपथ्य में मछली बेचने वाली मल्लाहिन का स्वाँग भर चुके थे। झट स्टेज पर आकर बोले—

ब्राह्मन क्षत्री सभी पियत हैं,
बनिया अगरवाला।
हौं मल्लाहिन पीउ लयी,
तो क्या कोई हँसेगा साला?
चलो दिल्ली चलें, हरे-हरे खेतन की सैर करें॥

मुँह-तोड़ जवाब की कविता सुनकर सब बड़े प्रसन्न हो गये।

पण्डित जी कविता में अपना उपनाम 'बरहमन' रखते थे; इसी कारण उन्होंने अपने मासिक पत्र का नाम 'ब्राह्मण' रक्खा था। उर्दू की शायरी भी उनकी बड़ी चुटीली होती थी। उन्होंने नीचे लिखी स्वतंत्र पुस्तकें लिखी हैं—

1. श्रृंगार विलास, 2. मन की लहर, 3. प्रेम पुष्पावली, 4. कलि कौतुल रूपक, 5. कलि प्रभाव नाटक[1], 6. हठी हमीर, 7. गो-संकट[2], 8. जुआरी-खुआरी, 9. दंगल-खण्ड, 10. लोकोक्ति-शतक, 11. रसखान-शतक, 12. तृप्यन्ताम, 13. ब्राडला स्वागत, 14. भारत-दुर्दशा, 15 शैव सर्वस्व, 16. मानस विनोद, 17. वर्ण माला, 18. शिशु विज्ञान, 19. स्वास्थ्य रक्षा, 20. प्रताप संग्रह और नीचे लिखी पुस्तकों का अनुवाद किया था—

1. राजसिंह, 2. इन्दिरा, 3. युगलांगुलीय, 4. सेन वंश व सूबे बंगाल का इतिहास, 5. नीति रत्नावली, 6. संगीत शाकुन्तल, 7. वर्ण परिचय, 8. कथा बाल संगीत, 9. चरिताष्टक, 10. पंचामृत।

कालाकाँकर प्रवास-काल में उन्होंने ब्राडला-स्वागत और 'तृप्यन्ताम' नाम की कविताएँ लिखी थीं। मिश्र जी हिन्दी की दीन-दशा पर बड़ा दुःख करते थे कि देशी भाषाओं में बंग भाषा का साहित्य खूब भरा-पूरा है। इसका कारण यह है कि उसके लेखक धनी-मानी और समृद्धिशाली तथा ऊँचे पदों पर पहुँचकर भी अपनी मातृभाषा के प्रचार का खूब उद्योग करते रहते हैं। उसके लेखक अंग्रेजी आदि विदेशीय भाषाओं में ऊँचा ज्ञान प्राप्त करने पर भी उन भाषाओं के सब उपयोगी विषय अपनी भाषा में लाकर साहित्य-भण्डार भरने में सदा सहायक होते हैं। उस भाषा के पाठक भी बहुत हैं। उन दिनों बंग भाषा में दैनिक 'चंद्रिका' निकलती थी। उसमें समाचार और राजनैतिक लेखों के अतिरिक्त साहित्यिक लेख भी खूब रहते थे। पण्डितजी ने राजा रामपालसिंह को वही दिखाकर 'हिन्दोस्थान' में साहित्य-स्तम्भ का कालम सन्निवेश कराया था।

पण्डित जी कहा करते थे—भारतेन्दु के पास धन था। उनकी कीर्ति धन-बल से थोड़े ही दिनों में खूब फैली। मेरे पास भी रुपया होता तो मैं भी हिन्दी में बहुत कुछ काम करता। हिन्दी पाठकों की संख्या इतनी कम है कि उनके भरोसे कोई ग्रन्थकार उत्साहित होकर आगे नहीं बढ़ सकता। वे दिन भी हिन्दी में कभी आवेंगे जब हिन्दी के पाठक बँगला के पाठकों की तरह खूब बढ़ेंगे, जिनके भरोसे हिन्दी के ग्रन्थकार फले-फूलेंगे और उदर भरण की चिन्ता से मुक्त होकर हिन्दी में ग्रन्थ-रत्न संग्रह करके गरीबनी हिन्दी को उन्नत करेंगे। शायद मेरे मरने के बाद वे दिन आयें।

कालाकाँकर के जंगलों में घूमते हुए एक बार मुझसे उन्होंने कहा था— 'बच्चा मेरे पास एक अनमोल वस्तु है, जिसे मैंने बेदाम लिया है, लेकिन उसकी तुलना में संसार की दौलत भी पलड़े पर रक्खी जाय तो वह हल्की होगी। उसको हम भी बेदाम देने को तैयार हैं लेकिन कोई लेने वाला नहीं मिलता।' मैं तो अकचका कर उनका मुँह ताकने लगा। फिर पूछा—"वह कौन चीज है पण्डितजी ? जरा मुझे भी तो नाम बतलाइए।"

पण्डितजी ने कहा—"यों नाम जानकर क्या करोगे ? तुम लेते हो तो अलबत्ता मैं देने को तैयार हूँ।" मैंने कहा—"इतना महान पदार्थ जिसकी तुलना में दुनिया-भर की सम्पत्ति हलकी है, मैं भला कहीं पा सकता हूँ।"

1, 2. यह नाटक मिश्र जी के होने में सन्देह है।

पण्डितजी बोले—"नहीं, वह कोई ऐसी भारी या नायाब चीज नहीं है, जिसके बोझ से तुम पिस जाओगे। वह संसार में अतुलनीय और अनमोल होने पर भी ऐसी है कि जब जो चाहे ले ले। उसमें कुछ दाम नहीं लगेगा, न कुछ बोझ ही उठाना पड़ेगा।" मैं तो बिलकुल न समझकर बड़े अचरज में आ गया, कहा—"अगर मेरे साध्य का हो, मैं संभाल सकता हूँ, तो ऐसा अनमोल पदार्थ लेने को तैयार हूँ।" उन्होंने भूत झाड़ने वाले ओझाओं की तरह हँकड़ कर कहा—"ले बच्चा, यह 'सत्यभाषण' है।"

मैं तो सकते में आ गया और कुछ देर तक विस्मय में पड़े रहकर फिर बोला—"पण्डितजी, है तो जरूर यह अनमोल और जगत में इसकी तुलना में कुछ भी नहीं है, लेकिन बहुत ही कठिन नहीं बल्कि असाध्य भी है।

उन्होंने कहा—"नहीं बच्चा, यह असाध्य नहीं और कष्टसाध्य भी नहीं। तुम चाहो तो बड़ी सुगमता से इसे सिद्ध कर लोगे।"

मैंने कहा—"पण्डितजी ! रात-दिन मैं झूठ बोला करता हूँ। यहाँ तक कि बेजरूरत झूठ बोलने की बान-सी पड़ गई है। जिसका झूठ ही ओढ़न-डासन और चबेना है, वह कैसे सत्य भाषण कर सकता है ?" उन्होंने उसी दम कहा—"इसका रास्ता मैं बताये देता हूँ। तुम आज ही सच बोलने की मन में ठान लो और जब मुँह से इच्छा या अनिच्छा से झूठ बोल जाओ तब याददाश्त लिख लिया करो। मुझे संध्या को बतला दिया करो कि आज इतना झूठ बोले। बस, इसके सिवा और कुछ भी उपाय दरकार नहीं है।"

मैं उस घटना के बाद वाले अपने अनुभव से कहता हूँ उनकी ये बातें बिलकुल सत्य हैं। उसी दिन से नम्बर लिखने लगा और महीना भर भी नहीं बीता कि अभ्यासवश अनजाने अर्थात इच्छा-विरुद्ध जो झूठ कभी निकल जाता था वही रह गया था। स्वयं अपने मन में रुकावट हो गई और मैं उनका इस विषय में चेला हो गया।

एक बार राजा रामपालसिंह 'हिन्दोस्थान' पत्र के लिए अग्रलेख लिखवा रहे थे। जो कुछ वे बोलते जाते थे, उसको लिखने में जो उनसे दुबारा कुछ भी पूछता था, उस पर बहुत बिगड़ उठते थे। मैं तेज लिखता था। इस काम के लिए वे सदा मुझे बुलाया करते थे। सफर में भी मुझे साथ रखते थे। एक बार वे अशुद्ध बोल गये, लेकिन मैंने शुद्ध लिख लिया। जब समाप्त होने पर सुनाने लगा, तब जहाँ मैंने सुधार कर लिखा था उसको सुनते ही अशुद्ध कहकर उसे सुधारने को कहा। पण्डितजी वहाँ बैठे थे, उन्होंने कहा कि लड़के ने शुद्ध लिखा है। इस पर राजा साहब बिगड़कर पण्डितजी से बोले—"आप बड़े गुस्ताख हैं।" पण्डितजी ने छूटते ही जवाब दिया—"अगर सच्ची बात को सच कहना आपके दरबार में गुस्ताखी है तो मैं सदा गुस्ताख हूँ।"

राजा साहब को और क्रोध आया और गर्म होकर बोले—"निकल जाव यहाँ से।"

पण्डित जी बोले—"हम यह चले।" यह कहकर उसी दम बारादरी से उठे और चले आये। फिर कभी उनके यहाँ नहीं गये और थोड़े दिनों में अपना हिसाब चुकाकर कानपुर को चले गये। बाबू बालमुकुन्द गुप्त, पण्डित रामलाल मिश्र आदि किसी की बात उन्होंने नहीं सुनी।

पण्डित जी कभी गंगा स्नान नहीं करते थे। मित्रों के आग्रह करने पर भी टाल जाते थे। जब कभी कोई त्यौहार या बड़ा पर्व आता, बहुत उद्योग करने पर कभी-कभी स्नान कर लेते थे। कालाकाँकर में उनके डेरे के सामने ही थोड़ी दूर पर गंगा जी बहती थीं। अपने मन से उन्होंने स्नान नहीं किया। जब

मित्र-मण्डली उनको स्नान कराने पर तुल जाती थी, तब भी बड़ा समर लेना पड़ता था ।

एक बार लोग उन्हें टाँग कर गंगा-तट तक ले गये । किनारे जाकर भागने लगे । तब सबने उठाकर गंगा में फेंकना चाहा । उन्होंने कहा—'अच्छा गंगा में ऐसा डालना कि मेरा पाँव पहले गंगा के उदर में न पड़कर, मस्तक ही पड़े ।' तब वैसा ही किया गया । कालाकाँकर में मिश्र जी को तीस रुपया मासिक दिये जाते थे । उस समय वह तीस रुपया उनके निर्वाह को काफी था । कानपुर से मकानों का किराया आया करता था ।

पण्डित जी के कालाकाँकर रहते समय पण्डित श्रीधर पाठक की पुस्तक 'एकांतवासी योगी' का प्रकाशन हुआ और खड़ी बोली कविता में व्यहृत हो, इस पर बड़ा विवाद छिड़ा । 'हिन्दोस्थान' में 'स्वतन्त्र स्तम्भ' नामक एक अलग कालम था । उसमें खड़ी बोली की कविता के पक्ष और विपक्ष के लेख सालाना प्रकाशित किये जाते थे । पाठक जी के पक्ष में मुजफ्फरपुर कलक्टरी के पेशकार बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री मुख्य थे । उन्होंने विलायत से सुन्दरता-पूर्वक खड़ी बोली काव्य छपाकर यहाँ मँगाया और बिना मूल्य वितरित किया । खड़ी बोली की कविता का प्रचार ही उनका मुख्य उद्देश्य था । इसके सिवा गढ़वाल से पण्डित गोविन्द प्रसाद मिश्र खड़ी बोली में कविता करके उत्साह बढ़ाते थे । लेकिन विपक्ष में बड़े-बड़े प्रभावशाली कवियों ने कलम उठाई थी ।

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र खड़ी बोली की कविता के विरोधियों में प्रधान थे । लखनऊ के 'रसिकपंच' के सम्पादक, सुलेखक व सुकवि पण्डित शिवनाथ शर्मा भी खड़ी बोली की कविता के विरोधी थे । लेकिन राष्ट्रभाषा के प्रचार को और जिस भाषा का साधारण बोलचाल में प्रचार हो उसको अधिकार देना उसकी और राष्ट्र की उन्नति के लिए परमावश्यक है । इस विचार से प्रेरित होकर सबको खड़ी बोली की कविता के आगे अवनत होना पड़ा । इसके सिवा पण्डित श्रीधर पाठक ने भी यह सत्य प्रमाणित कर दिया कि उत्तम और रोचक लालित्यपूर्ण कविता करना कवि की शक्ति पर निर्भर है, भाषा पर नहीं ।

तब पण्डित जी ने राष्ट्रभाषा की उन्नति का ध्यान करके कह दिया—"अच्छी बात है । आप कविता कर चलिए । मैं भी उस पर रोड़ा-कंकड़ फेंकता चलूँगा । लेकिन याद रखिए यह सड़क ऐसी सुन्दर नहीं बनेगी कि कवि की निरंकुश उक्ति बे-रोक दौड़ सके ।"

पाठक जी ने कहा—"हम इंजीनियरों को आप ऐसे कंकड़-पत्थर फेंकने वाले खँचिवाहों की बहुत जरूरत है । आप उन्हें फेंकते चलिए । देखिएगा, यह सड़क ऐसी सुढार और उत्तम बनेगी कि कवि लोग बे-रोक इस पर सरपट दौड़ेंगे ।"

आज मिश्र जी की आत्मा स्वर्ग-लोक से यह देखकर खूब प्रसन्न होती होगी कि खड़ी बोली काव्य किस उन्नत दशा को प्राप्त है और कैसे-कैसे उद्भट कवि इन दिनों हुए हैं, जिनकी मर्यादा और काव्य-शक्ति के आगे अब बिरले ही किसी कवि की ब्रजभाषा की कविता में रुचि देखी जाती है । पण्डित जी का जन्म आश्विन कृष्ण नौमी की संवत 1913 वि० में हुआ था । अड़तीस वर्ष की उम्र में आप आषाढ़ शुक्ल चौथ संवत 1951 वि० में परलोकगामी हुये ।

['सरस्वती' मासिक पत्रिका जून, 1938 ई० से साभार प्रस्तुत]

प्रतापनारायण मिश्र

इनके पिता उन्नाव से आकर कानपुर में बस गए थे, जहाँ प्रतापनारायण जी का जन्म सं. 1913 और मृत्यु सं. 1951 में हुई। ये इतने मनमौजी थे कि आधुनिक सभ्यता और शिष्टता की कम परवा करते थे। कभी लावनीबाजों में जाकर शामिल हो जाते थे, कभी मेलों और तमाशों में बंद इक्के पर बैठ जाते दिखाई पड़ते थे।

प्रतापनारायण मिश्र यद्यपि लेखनकला में भारतेन्दु को ही आदर्श मानते थे पर उनकी शैली में भारतेन्दु की शैली से बहुत कुछ विभिन्नता भी लक्षित होती है। प्रतापनारायण जी में विनोदप्रियता विशेष थी इससे उनकी वाणी में व्यंग्यपूर्ण वक्रता की मात्रा प्रायः रहती है। इसके लिये वे पूरबीपन की परवा न करके अपने बैसवारे की ग्राम्य कहावतें और शब्द भी बेधड़क रख दिया करते थे। कैसा ही विषय हो, वे उसमें विनोद और मनोरंजन की सामग्री ढूँढ़ लेते थे। अपना ब्राह्मण पत्र उन्होंने विविध विषयों पर गद्य प्रबंध लिखने के लिये ही निकाला था। लेख हर तरह के निकलते थे। देशदशा, समाजसुधार, नागरी-हिन्दी-प्रचार, साधारण मनोरंजन आदि सब विषयों पर मिश्र जी की लेखनी चलती थी। शीर्षकों के नामों से ही विषयों की अनेकरूपता का पता चलेगा; जैसे 'घूरे क लत्ता बीनै', 'कनातन क डौल बाँधै', 'समझदार की मौत है', 'बात', 'मनोयोग', 'वृद्ध', 'भौं'। यद्यपि उनकी प्रवृत्ति हास्यविनोद की ओर ही अधिक रहती थी, पर जब कभी कुछ गंभीर विषयों पर वे लिखते थे तब संयत और साधु भाषा का व्यवहार करते थे। दोनों प्रकार की लिखावटों के नमूने नीचे दिए जाते हैं—

समझदार की मौत है

सच है 'सब तें भले हैं मूढ़ जिन्हें न व्यापै जगतगति'। मजे से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथ-त्योहार आ पड़ा तो गंगा में बदन धो आना, गंगापुत्र को चार पैसे देकर सेंतमेत में धरममूरत, धरमऔतार का खिताब पाना; संसार परमार्थ दोनों तो बन गए, अब काहे की है है और काहे की खै खै ? आफत तो बेचारे जिंदादिलियों की है जिन्हें न यों कल न वों कल; जब स्वदेशी भाषा का पूर्ण प्रचार था तब के विद्वान् कहते गीर्वाणवाणीषु विशालबुद्धिस्तथान्य भाषा-रसोलोलुपोहम्। अब आज अन्य भाषा वरंच अन्य भाषाओं का करकट (उर्दू) छाती का पीपल हो रही है, अब यह चिंता खाए लेती है कि कैसे इस चुड़ैल से पीछा छूटे।

मनोयोग

शरीर के द्वारा जितने काम किए जाते हैं, उन सब में मन का लगाव अवश्य रहता है। जिनमें मन प्रसन्न रहता है वही उत्तमता के साथ होते हैं और जो उसकी इच्छा के अनुकूल नहीं होते वह वास्तव में अच्छे कार्य भी हों किंतु भले प्रकार पूर्ण रूप से संपादित नहीं होते,

न उनका कर्त्ता ही यथोचित आनंद लाभ करता है। इसी से लोगों ने कहा है कि मन शरीररूपी नगर का राजा है, और स्वभाव उसका चंचल है। यदि स्वच्छंद रहे तो बहुधा कुत्सित ही मार्ग में धावमान रहता है। यदि रोका न जाय तो कुछ काल में आलस्य और अकृत्य का व्यसन उत्पन्न करके जीवन को व्यर्थ एवं अनर्थपूर्ण कर देता है।

प्रतापनारायण जी ने फुटकल गद्यप्रबंधों के अतिरिक्त कई नाटक भी लिखे। कलिकौतुक रूपक में पाखंडियों और दुराचारियों का चित्र खींचकर उनसे सावधान रहने का संकेत किया गया है। 'संगीत शाकुन्तल' लावनी के ढंग पर गाने योग्य खड़ी बोली में पद्यबद्ध शकुन्तला नाटक है। भारतेन्दु के अनुकरण पर मिश्रजी ने 'भारतदुर्दशा' नाम का नाटक भी लिखा था। 'हठी हम्मीर' रणथंभौर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का वृत्त लेकर लिखा गया है। 'गोसंकट नाटक' और 'कलिप्रभाव' नाटक के अतिरिक्त 'जुआरी खुआरी' नामक उनका एक प्रहसन भी है।

पं० प्रतापनारायण मिश्र की शिक्षा-दीक्षा

पं० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

सन् 1857 की प्रथम चिनगारी के जलने से लगभग 10 मास पूर्व[1] पण्डित प्रतापनारायण मिश्र का जन्म उस भूखण्ड बैसवाड़े में हुआ, जहाँ शंकरगंज के राणा बेनीमाधव सिंह ने अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध अभूतपूर्व पराक्रम एवं अदम्य देश-प्रेम का परिचय देकर अपूर्व कीर्ति प्राप्त की थी। बचपन में बालक प्रतापनारायण ने अवश्य वीर शिरोमणि आल्हा के इस आधुनिक अवतार की स्फूर्तिप्रदायिनी गाथाओं को सुना होगा—

"खेलि कै बाना जब सवार होत राना,
तब भागियो सिपाही रण खूब तेग झाड़ैगा।
रोयेंगी पंजाबिनी छातिन को कूटि-कूटि,
भागि चलौ कन्त तुम्हें यहाँ कौन गाड़ैगा।"

जब कानपुर की उथल-पुथल शान्त हो गई, चार वर्ष का शिशु प्रतापनारायण अपने जन्म-स्थान बेथर-बैजेगाँव से अपनी माता के साथ कानपुर आया और वहीं नौघड़े में अपने पिता पं० संकटाप्रसाद मिश्र, ज्योतिषी के साथ रहने लगा।

प्रतापनारायण जी ने नयागंज के एस०पी०जी० मिडिल स्कूल और तदनन्तर क्राइस्ट चर्च हाई स्कूल में आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की। परन्तु 1971 ई० में बिना कोई परीक्षा पास किये पढ़ना छोड़ दिया। उनकी स्कूली शिक्षा अधूरी ही रह गई।

भाषा-ज्ञान

अगले 10-12 वर्ष, जो पं० प्रतापनारायण ने स्वाध्याय और ज्ञान-संवर्धन में व्यतीत किये, उनके भावी जीवन में विशेष महत्त्व के हैं। उनके पुराने स्कूल के मास्टर नन्हेमल, जिन्हें मिश्र जी ने "हमारे प्रेम और प्रतिष्ठा के एक मात्र आधार श्रीयुत महामान्य मास्टर सुखदावलम्बित" के रूप में स्मरण किया है, अंग्रेजी की योग्यता के लिए प्रसिद्ध थे और हिन्दी व उर्दू दोनों में कविता करते थे। 'ख्याल' भी उन्होंने बहुत लिखे, जो अब अप्राप्य हैं। उनके तथा अन्य मित्रों के सत्संग से मिश्र जी ने अंग्रेजी में खासी योग्यता प्राप्त कर ली थी। श्री बालमुकुन्द गुप्त के अनुसार *"आध-आध घण्टा, घण्टा-घण्टा बराबर अंग्रेजी में बात किए जाते थे, अंग्रेजी अखबार पढ़ लेते थे, पर बड़ी अनिच्छा से। यदि वह साल दो साल जी लगाकर अंग्रेजी पोथियाँ या अखबार पढ़ते तो अच्छे अंग्रेजी-पढ़ों में उनकी गिनती होती।"*

पण्डित ललित प्रसाद त्रिवेदी 'ललित' (1831-1901 ई०) कानपुर में एक गल्ले की दुकान में

1. 24 सितम्बर, 1856 ई०

मुनीम थे। ये ब्रज भाषा के उच्च कोटि के कवि थे। इन्हें प्रतापनारायण ने गुरुवर कहा है। उन्हीं के श्रीचरणों के पास बैठकर मिश्र जी ने पिंगल, अलंकार आदि सीखा। 'ललित' जी के 'पूर्ण'[1] जी भी ऋणी थे। मिश्र जी के पिता जी संस्कृत के विद्वान थे और ज्योतिष शास्त्र में निपुण थे। इस विद्या के लिए उनका आदर अंग्रेजों के बीच में भी था। प्रतापनारायण को बचपन से ही शीघ्र बोध, लघुकौमुदी आदि की शिक्षा दी गई थी। पर गुप्त जी कहते हैं इन पोथियों में प्रताप जी का मन न लगा।" फिर भी उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान हो गया और बालमुकुन्द जी के अनुसार वे संस्कृत में जल्दी और अच्छा बोल लेते थे। अपने लेखों में मिश्र जी ने संस्कृत की अनेक सूक्तियाँ स्थान-स्थान पर उद्धृत की हैं, जो उनके संस्कृत ज्ञान का परिचय देती हैं।

फारसी और उर्दू का अभ्यास भी उन्हें अच्छा हो गया था। उनकी रची हुई फारसी व उर्दू की गजलें, लावनियाँ, मरसिये, मसनवी और कसीदे हैं। बालमुकुन्द गुप्त द्वारा सम्पादित 'भारत प्रताप' नामक उर्दू पत्र में उनके कुछ उर्दू लेख भी छपे थे। बंग भाषा में भी उन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। बंकिम बाबू के पाँच ग्रन्थों—राजसिंह, इन्दिरा, राधारानी, युगलांगुलीय और कपाल कुण्डला के हिन्दी अनुवाद किये। अपने मित्र पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'कथा माला' और 'वर्ण परिचय' के भी अनुवाद आपने किये। इनके अतिरिक्त 'अमरसिंह' उपन्यास तथा कुछ अन्य बँगला के ग्रन्थों का उन्होंने हिन्दी भाषान्तर किया। पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपनी उत्तर भारत की यात्रा में उनसे मिलने कानपुर भी आये।

भारतेन्दु का प्रभाव

भारतेन्दु जी द्वारा प्रकाशित पत्रों का प्रतापनारायण जी पर विशेष प्रभाव पड़ा। सन् 1875 में 'कविवचनसुधा' साप्ताहिक हो गई और अब उसमें पहले से कहीं अधिक गद्य की सामग्री राजनीति व समाज-सुधार पर लेख, समाचारों पर टिप्पणी आदि का समावेश हुआ। गुप्त जी लिखते हैं कि "यद्यपि हाकिमों में बाबू हरिश्चन्द्र की बड़ी प्रतिष्ठा थी···तथापि वह निडर होकर लिखते रहे और सर्वसाधारण में उनके पत्र का आदर होने लगा। यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के ललित लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि 'कविवचनसुधा' के हर नम्बर के लिए लोगों को टकटकी लगाये रहना पड़ता था।···उसको बहुत अच्छे लेखक मिले थे।" जब हरिश्चन्द्र ने उसमें लिखना बन्द कर दिया, इसके "प्राण निकल गये।" सन् 1883 में इसके अधःपतन का समय आ गया। सन् 1885 में यह बन्द हो गया। उसी साल भारतेन्दु जी का देहान्त भी हुआ। भारतेन्दु जी ने 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' और 'बालाबोधिनी' नामक दो मासिक पत्रिकाएँ भी प्रकाशित कीं। सन् 1883 ही में 'कविवचनसुधा' के अधःपतन के समय मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' मासिक पत्र का प्रकाशन हरिश्चन्द्री परम्परा में किया। उन्होंने इसमें लिखा—"बाजे लोग हमें श्री हरिश्चन्द्र का स्मारक समझते हैं। बाजों का ख्याल है कि उनके बाद उनका सा रंग कुछ इसी में है। हमको स्वयं इस बात का घमण्ड है कि जिस मदिरा का पूर्ण कुम्भ उनके अधिकार में था, उसी का एक प्याला हमें भी दिया गया है, और उसी के प्रभाव से बहुतेरे हमारे दर्शन की, देवताओं की दर्शन की भाँति, इच्छा करते हैं।" मिश्र जी के ये उद्‌गार उनके ऋषि-ऋण को स्पष्ट प्रकट करते हैं।

1. राय देवीप्रसाद पूर्ण

"भुइयाँ गैये कानपूर की"

अभी तक मिश्र जी के भाषा-ज्ञान और विद्योपार्जन की चर्चा की गई है। किन्तु उनकी मेधाशक्ति एवं प्रतिभा को विशेष प्रेरणा प्रदान करने वाले कुछ और स्रोत भी थे, जिन पर ध्यान दिये बिना पं० प्रतापनारायण मिश्र की शिक्षा-दीक्षा की कहानी अधूरी रह जायेगी। जैसा ऊपर कहा गया है, सन् 1871 में स्कूल छोड़ने और सन् 1883 में 'ब्राह्मण' के प्रकाशन तक का युग मिश्र जी के जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। सम्भवतः इन वर्षों में वे कानपुर अथवा कभी-कभी अपने जन्म-स्थान में ही रहे।

कानपुर को आबाद हुए पूरे सौ वर्ष बीत चुके थे। पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी की फौजी छावनी (कम्पू) के रूप में और फिर व्यावसायिक केन्द्र के रूप में कानपुर की उत्पत्ति और अभिवृद्धि हुई और धीरे-धीरे वह उत्तर भारत के प्रमुख व्यापारिक और औद्योगिक नगरों में परिगणित होने लगा था। कानपुर नगर की उत्पत्ति व आतुर श्रीवृद्धि की कथा ही उसके विशिष्ट व्यक्तित्व के गुण-दोष की कहानी है। सन् 1875 में प्रकाशित लाला दरगाहीलाल वकील के "तरीखे-जिला-कानपुर" में उस समय के सांस्कृतिक और शैक्षिक वातावरण के अभाव का अच्छा चित्र है। उनका कहना है कि "कानपुर में अरबी, फारसी व संस्कृत के विद्वान दो-चार से अधिक नहीं हैं। संस्कृत की प्रति दिन अवनति हो रही है, बहुत कम पढ़े-लिखे हैं। लड़कियों को पढ़ाना बुरा समझा जाता है कुछ दिनों से अँग्रेजी पढ़ाने की इच्छा बढ़ी है। नागरी के लिखने की प्रथा बहुत कम है; जो लिखते भी हैं वे शुद्ध नहीं लिख पाते। व्यापारी लोग मुड़िया के अक्षर लिखते हैं, जिन्हें दूसरे लोग नहीं पढ़ सकते। ठाकुर, ब्राह्मण और सब जाति के लोग जो जमींदार हैं, खेती व नौकरी करते हैं; सब अपढ़ हैं।"

ऐसे कुपढ़ व्यापार-प्रधान "मुड़िया के दुर्भेद्य दुर्ग" "सकल कला सब विद्या हीना" नये बढ़े हुए (Upstart) शहर में पं० प्रतापनारायण की शिक्षा-दीक्षा हुई। द्वितीय विश्व युद्ध में चोर बाजारी अथवा अन्य साधनों से प्रचुर धन कमाने वाले नव-धनिकों के निम्न सांस्कृतिक स्तर और अनियन्त्रित जीवन-विधि से सभी परिचित हैं। हमारे नगर की सांस्कृतिक और नैतिक दशा भी उस समय कुछ इसी प्रकार की थी, जब प्रतापनारायण मिश्र ने स्कूल छोड़कर इस अव्यवस्थित नगर की गलियों में घूम-घूमकर शिक्षा की इस दूसरे प्रकार की कक्षा में पढ़ना शुरू किया। अपने इस विचित्र नगर की गली-गली, कोने-कोने से वे परिचित हो गये। उससे उन्होंने बहुत कुछ सीखा। जो देखा और सीखा उसे अपने अनुपम निबन्धों में, कविताओं में, लावनियों में ज्यों का त्यों उतार दिया। कोई मुलाहिजा नहीं किया खरी-खोटी सुनाने में, अपने कानपुर के महात्म्य के गाने में, उसके कनौजियों, खत्रियों, अग्रवालों, कायस्थों, दूकानदारों, कलवारों, आर्य-समाजियों, सनातन-धर्मियों, नवीन शिक्षा-प्राप्त नवयुवकों, रईसों, मन्दिरों के प्रबन्धकों, पण्डितों, ज्योतिषियों, कवियों, वकीलों, दलालों, पादरियों आदि की पोलें खोलने में; उनके व्यंग्य बड़े तीक्ष्ण, किन्तु लोट-पोट करने वाले होते थे। नगर के इस सार्वजनिक विश्वविद्यालय में ही उनकी शिक्षा प्रौढ़ और पूर्ण हुई। उसके बिना उनकी प्रतिभा में खराद न चढ़ पाती, उनकी बुद्धि के खड्ग में आब न आती और उनकी गद्य और पद्य की रचनाओं में चल-चित्र की-सी रोचकता न आती। उसने मिश्र जी को विशाल जन-समुदाय के सुख-दुःख, उसके उल्लास-विषाद, उसके हृदय के सन्दन, व उनकी मनोवृत्ति से अवगत कराया। उसी ने उनको जनता की भाषा में प्रचलित, नैसर्गिक उद्गारों, लोकोक्तियों, लोकगीतों, मुहावरों और ठठोलियों को असीम साहित्य में पारंगत किया। वह पाठ उन्हें

न तो स्कूल में पढ़ाया जा सकता था और न संस्कृत व फारसी में । वे विदग्ध वातावरण में ही उपलब्ध हो सकता था । वे सही माने में अब जन-कवि होने की अर्हता प्राप्त करने में समर्थ हुए ।

लावनी साहित्य

कानपुर उनके समय में सामान्य रूप से "साहित्य-संगीत-कला-विहीन" तो था, पर उसमें एक विशिष्ट वाग्धारा स्पष्ट-रूप से बह रही थी । इसमें सन्देह नहीं कि हमारे काव्य-रसिक मिश्र जी ने अपनी 12 वर्षों की नगर-यात्रा में इन सभी का रसास्तादन किया होगा और उनसे उनकी काव्य-प्रतिभा का प्रस्फुरण हुआ होगा । प्रति-वर्ष राम-लीला, धनुष-यज्ञ और रास-लीला भी होती थी । किन्तु सबसे अधिक प्रभाव मिश्र जी के ऊपर लावनी-साहित्य का पड़ा । पण्डित प्रतापनारायण मिश्र को लावनी से बहुत प्रेम था । उपर्युक्त लावनी-लेखकों अथवा गायकों से उनका सौहार्द भी था । उनकी कविताओं पर लावनी-साहित्य की गहरी छाप है । उन्होंने स्वयं हिन्दी, उर्दू, फारसी व संस्कृत में लावनियाँ लिखी हैं, जो 'प्रताप-लहरी' में संगृहीत हैं । उनकी अन्य कविताओं में भी लावनी की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है ।

लावनी-साहित्य को समझे बिना प्रतापनारायण की कविताओं को ठीक दृष्टिकोण से नहीं आँका जा सकता । लावनी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की कड़ी, हिन्दी-उर्दू के बीच में पुल और विशाल-हृदयता के प्रतीक के रूप में उस समय लोकप्रियता प्राप्त की, जब हिन्दी और उर्दू की कविता एक-दूसरे से अलग हो रही थी । उसने हिन्दी-उर्दू के आधुनिक गद्य-रूप, खड़ी बोली का परिमार्जन कर उसे उत्तर भारत की जन-भाषा तथा नवीन भारत की राष्ट्रभाषा होने की अर्हता प्रदान की । पं० प्रतापनारायण मिश्र ने भी इस राष्ट्रीय यज्ञ में पूर्ण योगदान किया ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, उनके प्रमुख शिष्य पं० प्रतापनारायण, पं० बालकृष्ण भट्ट उस संक्रान्ति वेला के हिन्दी-निर्माताओं और पथ-प्रदर्शकों में मूर्धन्य हैं । डाक्टर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय से हम सर्वथा सहमत हैं कि "बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र दोनों ने निबन्ध-रचना कर हिन्दी गद्य-शैली को नवीन रूप दिया । भट्ट जी से तुलना करने पर मिश्र जी कुछ असावधान लेखक थे । उनके निबन्धों का रूप तथा उनमें प्रदर्शित रुचि संस्कृत कम है; उनमें ग्रामीणता अधिक है । मिश्र जी को पाण्डित्य-प्रदर्शन में भी विश्वास न था । भट्ट जी अवसर मिलते ही पाण्डित्य-प्रदर्शन करने लगते हैं । वैसे भाषा, प्रयोग आदि की दृष्टि से मिश्र जी में चाहे जो दोष आ गये हों, किन्तु निबन्धकार के वास्तविक रूप के दर्शन भट्ट जी की अपेक्षा हमें उन्हीं में अधिक होते हैं । उनके निबन्धों में दोष केवल इसलिए दिखाई देते हैं कि वे जन-समुदाय को छोड़ना नहीं चाहते थे । विद्वान होकर भी वे अपनी विद्वत्ता प्रकट नहीं करना चाहते थे । विदग्ध साहित्य की रचना वे भले ही न कर पाये हों, किन्तु उनकी रचनाओं में साधारण समाज की रुचि प्रतिबिम्बत है ।" इन दोनों के दिखाये हुये प्रशस्त मार्ग का अनुसरण अनेक लेखकों ने किया और पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी उसी मार्ग से आगे आने वाले कोस के दूसरे निंशानी पत्थर हैं । द्विवेदी-युग अथवा उससे भी आगे पं० रामचन्द्र शुक्ल के युग की भाषा की प्रौढ़ता, गम्भीरता, शिष्टता, प्रगल्भता, परिपक्वता तथा बहुलता की तुला पर भारतेन्दु-युग की भाषा को तौलना न्याय-संगत नहीं ।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

श्री शिवसहाय मिश्र

अमर साहित्यकार पं० प्रतापनारायण मिश्र के व्यक्तित्व के दर्शन उनके विरचित साहित्य में स्पष्ट रूप से होते हैं। जिस प्रकार उनका साहित्य देशप्रेम से ओतप्रोत होकर सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य बाण चलाता बढ़ता था, उसी प्रकार उनका अकृत्रिम, स्पष्ट, उदार और विनोद-पूर्ण जीवन भी समाज की लोक-हितैषी गतिविधियों में डूबा रहता था। जो भी सामाजिक कार्य-कलाप उन्हें 'हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान' की उन्नति में सहायक प्रतीत होते थे, वे उनकी लेखनी से प्रशंसा अवश्य प्राप्त करते थे। इसके साथ ही वे अपना सक्रिय सहयोग भी उसे प्रदान करते थे और अपने इष्ट-मित्रों तथा पाठकों को इसके लिए प्रेरित करते थे। आचार्य-प्रवर डा० मुंशीराम शर्मा के शब्दों में कहें तो "उनके व्यक्तित्व में एक अद्‌भुत आकर्षण था। वे आकर्षित करते भी थे और आकर्षित होते भी थे। जहाँ उन्हें कोई सत् अंश दिखलाई दे जाता, उसकी ओर वे स्वाभाविक रूप से आकर्षित हो उठते थे। धर्म-सुधार, समाज-सुधार, देशोद्धार आदि से सम्बन्ध रखने वाली पूत भावनाएँ, व्यक्तित्व अथवा संस्थाएँ उन्हें विशेष रूप से आकर्षित करती थीं।"[1]

वर्ष 1871 ई० के लगभग मिश्र जी ने अपनी स्कूली पढ़ाई अधूरी ही छोड़कर कानपुर के सामाजिक क्षेत्र में पदार्पण किया था और मृत्यु-पर्यन्त (6 जुलाई, 1894 ई०) यहाँ के सभी देशोद्धारक कार्यक्रमों में आगे बढ़कर भाग लेते रहे। वर्ष 1879 ई० में उन्होंने कानपुर में आर्यसमाज की स्थापना कराई और उसके प्रथम सदस्य स्वयं हुये। आर्यसमाज के धर्म प्रचार और शुद्धीकरण के कार्यक्रमों से[2] वह बहुत प्रभावित थे। पुराणों एवं मूर्ति-पूजा के खण्डन के प्रचार को समाज में कलह उत्पन्न करने वाला कार्य मानकर यह उससे खिन्न हो गये थे। वर्ष 1884 ई० में 'स्वदेश हितवर्धिनी सभा' का कानपुर में आयोजन हुआ। उसमें भाग लेकर मिश्र जी ने बहुत सुन्दर व्याख्यान दिया। 1892 ई० में श्री भारत धर्म महामण्डल की कानपुर में स्थापना प्रतापनारायण जी के ही निवेदन पर हुई। कानपुर की प्रथम नाट्य संस्था भारत मनोरंजनी सभा के तो वे प्राण ही थे। वह कार्य सभी देशहितैषी संस्थाओं का करते थे, किन्तु किसी एक संस्था के होकर नहीं रहते थे। पं० दीनदयालु शर्मा 'व्याख्यान वाचस्पति' को बुलाकर उन्होंने कानपुर में 'सनातन धर्म सभा' की स्थापना करवाई। किन्तु जब पं० दीनदयाल शर्मा ने इसका भार इनके कन्धों पर रखना चाहा, तब उन्होंने तत्क्षण यह उत्तर देते हुए कहा कि 'हम नहीं इस लीला में फँसते।' केवल गोरक्षिणी सभा और नेशनल कांग्रेस ही ऐसी दो संस्थाएँ थीं, जिनके सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में अपनी शारीरिक अस्वस्थता के बाद भी उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर प्रचार किया एवं व्याख्यान

1. प्रताप-लहरी, सं० श्रीनारायण प्रसाद अरोड़ा, भूमिका
2. पं० प्रतापनारायण मिश्र—एक ऐतिहासिक विश्लेषण : 'रामराज्य' (कानपुर) 8 अक्टूबर, 1856 ई०।

दिये । किन्तु इन संस्थाओं में भी उन्होंने कोई विशिष्ट पद नहीं ग्रहण किया ।

सन् 1857 के विद्रोह के बाद जब ब्रिटिश साम्राज्ञी ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से भारत का शासन अपने हाथ में ले लिया और भारतीयों के हित में कानून बनाने तथा पक्षपात-रहित सुरक्षा प्रदान करने की घोषणा की, तो भारत की जनता में आशा की एक किरण प्रकट हुई । कुछ काल के लिए राष्ट्रभक्त भी ब्रिटिश साम्राज्ञी के प्रशंसक बन गये थे । किन्तु शीघ्र ही अंग्रेजों की शोषण एवं कपटपूर्ण नीति को भारतीय समझ गये, फलतः देश में पुनः असंतोष फैलने लगा । भारतीय राष्ट्रीय चेतना के इसी विकास काल में 28 दिसम्बर, 1885 ई० को इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जन्म हुआ । बम्बई में हुए इसके प्रथम अधिवेशन में देश के कुल 72 प्रबुद्ध नागरिकों ने भाग लिया था । लगभग उसी समय कलकत्ता में सन् 1883 ई० में स्थापित इंडियन असोसिएशन का द्वितीय अधिवेशन होने के कारण उत्तर भारत के अधिसंख्यक लोग बम्बई नहीं पहुँच सके थे । किन्तु श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री आनन्दमोहन बोस आदि बंगाल के नेताओं ने भी इसे मान्यता प्रदान की । श्री डब्ल्यू० सी० बनर्जी तो प्रथम कांग्रेस के अध्यक्ष ही थे । कांग्रेस का द्वितीय सम्मेलन दिसम्बर, 1886 में कलकत्ता में सम्पन्न हुआ ।

कानपुर नगर भारत के हृदय भाग के समान है और देश के किसी भाग में होने वाली गतिविधियों का इस पर तुरन्त प्रभाव पड़ता है । इंडियन नेशनल कांग्रेस के जन्म के तुरन्त बाद ही पं० प्रतापनारायण मिश्र ने कानपुर के राष्ट्रवादियों के सहयोग से इसकी एक समर्थक सभा का कानपुर में भी गठन किया और कानपुर से कांग्रेस के प्रथम प्रतिनिधि के रूप (दिसम्बर, 1887) में उन्होंने मद्रास जाकर कांग्रेस के तृतीय अधिवेशन में भाग लिया । इस अधिवेशन में भाग लेने के लिए मिश्र जी ने अपने प्राणप्रिय 'ब्राह्मण' मासिक पत्र को अपूर्ण ही प्रकाशित कर दिया था । ब्राह्मण पत्र के खण्ड 4, सं० 5, 15 दिसम्बर, 1887 के अंक में 'जरा सुनो' शीर्षक टिप्पणी लिखते हुये उन्होंने सूचित किया था कि "इस पत्र के सम्पादक नेशनल कांग्रेस मद्रास को जाते हैं । इस कारण इतना ही प्रकाशित हो सका, अतएव ग्राहक लोगों से प्रार्थना है इस बार क्षमा करेंगे ।"

मिश्र जी ने जब मद्रास कांग्रेस में नेशनल कांग्रेस का स्वरूप राष्ट्रीय एवं प्रेम-प्रचारक संस्था के रूप में देखा तो यह उसके प्रबल समर्थक हो गये और अपने प्रान्त के प्रयाग नगर में होने वाले चतुर्थ अधिवेशन की सफलता के लिए जुट गये । पहले तो उन्होंने अपने 'ब्राह्मण' पत्र, जनवरी, 1883 के अंक में 'जातीय महासभा' शीर्षक लेख लिखकर लोगों का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया फिर क्रमशः फरवरी और मई के अंकों में 'नेशनल कांग्रेस मद्रास' एवं 'नेशनल कांग्रेस' लेख लिखे । 'नेशनल कांग्रेस मद्रास' लेख में भारतवासियों को देश-सेवा एवं स्वदेश-प्रेम के लिए प्रोत्साहित करते हुये उन्होंने लिखा था—"लोगों को चाहिये कि कट्टरपन और कचढिल्लापन छोड़ के यह समझकर रखें कि हम मुख और मन से चाहे जितना विदेश और विधर्म के पक्षपाती हों, पर पैदा भारत में हुये हैं और मरेंगे भारत ही में । अतः भारत ही के भले से हमारा भी भला है ।"[1] डॉ० सुरेश चन्द्र शुक्ल के शब्दों में "मिश्र जी बड़े जागरूक और प्राणवन्त देशभक्त थे । उनको अपने समय की प्रत्येक स्थिति का परिज्ञान था । देश के सम्बन्धित छोटी से छोटी बात पर वे गम्भीरता से विचार करते थे । दृष्टिकोण की व्यापकता और सहृदयता के कारण वे भारत के स्वरूप ही हो गये थे ।"

1. ब्राह्मण—खं० 4, सं० 7, 'नेशनल कांग्रेस मद्रास'

समस्त देश विशेषतः हिन्दी क्षेत्र में होने वाली राजनीतिक गतिविधियों से वे एकाकार हो गये थे। पं० मदनमोहन मालवीय, कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह, श्री अयोध्यानाथ प्रभृति कांग्रेस के कर्णधारों से उनका निकट का सम्पर्क था। कालाकाँकर में तो मिश्र जी ने राजा रामपाल सिंह के दैनिक पत्र 'हिन्दोस्तान' के 'काव्य भाग' के सम्पादक के रूप में एक वर्ष कार्य किया था। उस समय इस पत्र का सम्पादन पं० मदनमोहन मालवीय कर रहे थे। मिश्र जी से मालवीयजी की इतनी घनिष्ठता हो गयी थी कि मालवीयजी मिश्र जी के यहाँ ही भोजन करते थे। मिश्र जी की पत्नी सूर्य कुंवरि जी भी कालाकाँकर में साथ थीं। अतः भोजन बनाने की सुविधा थी। मालवीयजी वय में मिश्र जी से पाँच वर्ष छोटे थे। कालाकाँकर छोड़ने के बाद भी वे कानपुर में मिश्र जी से मिलने आते थे और एक-आध दिन उनके यहाँ ठहरते भी थे।[1]

कांग्रेस के प्रयाग सम्मेलन के प्रमुख आयोजक राजा रामपाल सिंह, अयोध्यानाथ वकील और मालवीयजी थे। अतः मित्रता एवं कांग्रेस-भक्ति के कारण सम्मेलन की सफलता हेतु मिश्र जी ने भी अपना विशेष योग प्रदान कर अपने दायित्व का निर्वाह किया। उन्होंने अपने ब्राह्मण पत्र में 'प्रयाग कांग्रेस' को महापर्व की संज्ञा देते हुए एक बड़ी कविता लिखी और लोगों को प्रयाग चलने हेतु तीव्र प्रेरणा प्रदान की। उक्त कविता इस प्रकार है—

पै जग महँ नर तन परब, अति दुर्लभ दरसात।
राम कृपा बिन मिलत नहिं, महापर्व यह तात॥

× × ×

यहि सुयोगहू माहिं इक और जुरो सुभ जोग।
जुरिहैं तीरथराज में कांगरेस के लोग॥

कांग्रेस के प्रयाग अधिवेशन में चलने और इसके लिए तन, मन, धन और वचन समर्पित करने का आवाहन मिश्र जी ने इस कविता में किया है। कांग्रेस के गठन का उद्देश्य बताते हुये वह इसी कविता में आगे लिखते हैं—

महरानी विक्टोरिया यद्यपि महादयाल।
चाहति कियो प्रजान को पुत्र सरिस प्रतिपाल॥
पै हमरी दुरभाग ते दूर वसति वह हाय।
बिन जाने भारत विपति, केहि विधि करै उपाय॥

× × ×

यहै विचारि अनेक बुध, रचहिं अथाई एक।
राजा सों परजा विपति, विनवत हित सविवेक॥
राज प्रजा हितकारिणी नेशनल कांग्रेस नाम।
सभा बम्बई में प्रथम जुरी सकल सुखधाम॥

× × ×

1. बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ (2007 वि०), पृष्ठ 52

फिरि कलकत्ता में बहुरि मन्दराज के माँहि ।
भई समाज इकत्र यह जेहि महँ कछु छल नाहिं ।।
सब मत के सब प्रान्त के, सब श्रेणी के लोक ।
इक चित ह्वै निज भूप ढिंग, बिनवहि भारत शोक ।।

प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिनचन्द्र की दृष्टि से यदि हम देखें तो कांग्रेस की स्थापना उस राजनीतिक चेतना की पराकाष्ठा थी, जो 1860 के दशक से ही भारतीयों में पनपने लगी थी । कांग्रेस की स्थापना में न तो अंग्रेजों का कोई हाथ था और न ए०ओ० ह्यूम की कोई ऐसी योजना । दादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्ति रानाडे, फिरोजशाह मेहता, जी० सुब्रह्मण्यम अय्यर और एक साल बाद आये सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे उत्साही और प्रतिबद्ध नेताओं ने इसलिए ह्यूम से सहयोग लिया कि वे बिल्कुल शुरू-शुरू में ही सरकार से दुश्मनी नहीं मोल लेना चाहते थे । उनका विचार था कि अगर कांग्रेस जैसे सरकार-विरोधी संगठन का मुख्य संगठनकर्ता ऐसा आदमी हो, जो अवकाश प्राप्त ब्रिटिश अधिकारी हो, तो इस संगठन के प्रति सरकार को शक-शुबहा कम होगा और इस कारण कांग्रेस पर सरकारी हमले की गुंजाइश कम होगी । दरअसल उस समय के राष्ट्रवादी नेताओं ने ह्यूम का साथ इसीलिए पकड़ा था कि शुरू-शुरू में ही सरकार उनकी कोशिशों को कुचल न दे ।"

पं० प्रतापनारायण मिश्र भी अंग्रेजी शासकों की कुटिल चालों से भली भाँति परिचित थे । उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने पाठकों को अंग्रेजों की चालों से सावधान भी किया है—

गौरांग देव उवाच—

नित हमारी लातैं सहैं, हिन्दू सब धन खोय ।
खुलै न "इंग्लिश पालसी" जन्म सुफल तब होय ।।

मिश्रजी इस 'इंग्लिश पालसी' की पोल प्रायः खोलते रहते थे, किन्तु इस बात का ध्यान सदा रखते थे, कि "कहीं नमाज के बदले रोजा न गले पड़े ।" कहीं अंग्रेजी दमन इतना न बढ़ जाय कि स्वतन्त्रता के जिस लक्ष्य को लेकर वह आगे बढ़ रहे थे, वह बीच ही में भंग हो जाय । इसलिए वह लेख में प्रायः व्यंगात्मक शैली का प्रयोग करते थे । उनका बयाने तर्ज ऐसा होता था कि सब कुछ कहने के बाद भी कानून की पकड़ से बाहर रहा जाय । अपनी आलोचनाओं का लक्ष्य प्रायः वह ब्रिटिश शासनकर्ताओं एवं अंग्रेज जाति को बनाते थे और राजद्रोह के अपराध से बचने के लिए अन्त में महारानी राजराजेश्वरी या विजयिनी की जय अप्रासंगिक रूप से भी जोड़ देते थे । उन्हें चिन्ता थी कि कहीं अत्यधिक क्रान्तिकारिता के प्रदर्शन से प्रेस एक्ट फिर न लग जाय और राष्ट्रीयता के प्रचार का जो एक माध्यम हाथ में है वह भी चला जाय । अधिकांश पत्र तो प्रायः उस समय अंग्रेजी शासन की चाटुकारिता में लगे ही थे । सारे देश में उस समय समाज-सुधारकों एवं धर्म प्रचारकों की भीड़ लगी थी पर राष्ट्रीय दृष्टि से राजनीतिक सोच वाले लोग भारतीय राष्ट्र के विस्तार के अनुपात में नहीं थे । अतः वह समय येनकेन प्रकारेण जनता में प्रारम्भिक राजनीतिक चेतना जगाने का था, जिससे उसमें एक निश्चित, दृढ़ राजनीतिक विचारधारा पनप सके और वह सुनिश्चित लक्ष्यों हेतु संघर्ष करने को तैयार हो सके । उस काल के कांग्रेसी नेताओं के सामने सबसे बड़ा और पहला काम था जनता को राजनीतिक रूप से शिक्षित करना, प्रशिक्षित करना, संगठित करना और जनमत तैयार करना । पूर्ववर्ती राष्ट्रवादियों के शुरू के प्रयास इन्हीं

उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए थे और पं० प्रतापनारायण मिश्र ने इसमें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया। कांग्रेस के उद्देश्यों का प्रचार करते हुये 1890 में उन्होंने 'कांग्रेस की जय' शीर्षक कविता में लिखा था, जो इस प्रकार है–

जय जयति राज प्रबन्ध शोधन हेतु वरु वपु धारिनी,
जय जयति भारत की प्रजा उर एकता संचारिनी।
जय जयति सागर पार लौं निज रूप गुणविस्तारिनी,
जय जयति भगवति कांग्रेस असेस मंगलकारिनी ॥

प्रयाग कांग्रेस के पूर्व जिन राष्ट्रीय समस्याओं की चर्चा मिश्र जी ने की थी, उनमें दरिद्रता, आर्म्स ऐक्ट, अंग्रेजी भाषा को विशिष्ट महत्त्व, सिविल सर्विस की परीक्षा हेतु इंग्लैण्ड जाने की अनिवार्यता आदि विशेष महत्त्व के थे। इलाहाबाद कांग्रेस में आने वाले प्रमुख कांग्रेसियों के गुणों की चर्चा करते हुए भी उन्होंने लिखा था–

देश हितैषी आर्य्यवर, मुसलमान मतिमान।
प्रभु मसीह के शिष्य शुचि, पारसीक गुन खान ॥
× × ×
ऐहैं चारो ओर ते देव प्रकृति के लोग।
जुरिहैं तीरथराज में कांग्रेस शुभ जोग ॥
सब विधि भारत हित निरत, श्रीयुत ए०ओ० ह्यूम।
जिनकी कीरति करि रही श्वेत द्वीप लगि धूम ॥
श्रीयुत वदरुद्दीन जू मुसलमान कुलचन्द।
जिनको नामहिं धर्म शशि षोडस कला अमन्द ॥
अलीमुहम्मद दुहुन की जिहि उर भक्ति असीम।
भारत कर वर वीर सोई अलीमुहम्मद भीम ॥
आरज कुल के देवता जिहि नित नावहिं माथ।
सोई मरजादा पुरुषवर पूज्य अयोध्यानाथ ॥
क्षत्रियकुल कीरत कलित रामपाल क्षितिपाल।
आरज भुव उद्धार हित जाको बपुख विशाल ॥
सुगुन सदन मोहन मदन आरज महि सुखकन्द।
जासु मनोहर वचन सुनि मोहत सहृदय बृन्द ॥
वन्दनीय बुध वृन्द वर श्री सुरेन्द्र शुभ रास।
वचन बज्र जाके करहिं भारत दुःख विनास ॥
विविधि भाँति वन्दन करहिं जिहि बुध बृन्द हमेश।
गुण गौरव ग्रह मूढ़ गति सोई देव उमेश ॥

मिश्र जी के इस प्रयास के फलस्वरूप प्रयाग कांग्रेस में कानपुर से 35 प्रतिनिधियों ने भाग लिया,

उनमें वकील, पत्रकार, जमींदार तथा व्यापारी सभी वर्गों के लोग थे । इनमें पं० पृथ्वीनाथ चक का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनके सहयोगी बनकर पं० मोतीलाल नेहरू और डा० कैलाशनाथ काटजू ने कानपुर में वकालत शुरू की थी ।

इलाहाबाद कांग्रेस में भाग लेने वाले कानपुर के प्रतिनिधियों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, खत्री, अग्रवाल वर्ग के लोगों के अतिरिक्त 12 मुसलमान, 3 बंगाली और 3 कश्मीरी भी थे । इससे सिद्ध होता है कि मिश्र जी का प्रभाव कानपुर के सभी जाति, धर्म और वर्ग के लोगों पर था ।

प्रयाग से लौटकर मिश्र जी ने 'कांग्रेस की जय' शीर्षक एक लेख लिखकर अपने पाठकों के समक्ष सम्मेलन का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया था । मिश्र जी के अनुसार प्रयाग सम्मेलन अपेक्षा से अधिक सफल हुआ था । अधिकतम एक हजार डेलीगेटों की आशा थी, किन्तु डेढ़ हजार से अधिक डेलीगेट वहाँ पहुँचे थे, जिनमें एक से एक प्रतिष्ठित विद्वान और धनिक मुसलमान भी तीन सौ से अधिक थे, जबकि लोग समझते थे कि सर सैयद अहमद के विरोध के कारण मुसलमान कांग्रेस में भाग न लेंगे ।

कांग्रेस के विरोधियों की परवाह न करने की सलाह देते हुए मिश्र जी ने अपने 'ट' शीर्षक निबन्ध में लिखा था—

"अपने-अपने नगर में नेशनल कांग्रेस की सहायक कमेटी कायम करें । ऐंटी कांग्रेस वालों की टाँय-टाँय पर ध्यान न दें ।" पाँचवी कांग्रेस (दिस० 1889 में) पुनः बम्बई में आयोजित की गई । उसके प्रचार में भी मिश्र जी ने काफी पहले से लेख लिखने शुरू कर दिये थे । "नेशनल कांग्रेस ऐसी सभाओं की ताज है और सत्य के प्रताप से प्रति वर्ष उसकी वृद्धि होती रहती है । इसका अधिवेशन अबकी साल बम्बई में होगा । अतएव देश हित के तत्त्ववेत्ताओं को चाहिए कि अभी से वे उसकी चिन्ता में लगे रहें, जिसमें समय पर हर ओर से डेलीगेटों का ताँता बँध जाय ।"[1]

मिश्र जी की दृष्टि में "इन दिनों हिन्दुओं के लिए भारत धर्म महामण्डल और हिन्दुस्तानी मात्र के लिए 'नेशनल कांग्रेस' से बढ़कर दानपात्र अन्य कोई संस्था नहीं, जिस पर सारे देश का सुख-सौभाग्य निर्भर है ।"[2] उन्हें कांग्रेस के प्रति इतनी असीम श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी कि इसे वे भगवती दुर्गा का स्वरूप मानने लगे थे और 'कांग्रेस की जय' शीर्षक लेख में उन्होंने इसका कारण भी इस प्रकार स्पष्ट किया था ।

"कांग्रेस की जय ! क्यों न हो, कांग्रेस साक्षात दुर्गा जी का रूप है, क्योंकि वह देश-हितैषी देव प्रकृति के लोगों की स्नेह-शक्ति से आविर्भूत हुई है । 'देवानां दिव्य गुण विशिष्टानां तेजोराशि समुद्भवा' है ! फिर हम ब्राह्मण हो के इसकी जय क्यों न बोलें ?"

उन्होंने कांग्रेस की भगवती दुर्गा के समान ही प्रार्थना भी लिखी थी—

> नव कोटि मूरति आछतहु जब देखिए तब एक हैं ।
> जिन महँ सबै सुर वृन्द तेज, नितै एकत्र अनेक हैं ।।
> इमि देवि दुर्गा रूप-सी, जग की विपत्ति निवारिनी ।
> जय-जय भगवति कांग्रेस असेस मंगलकारिनी ।।

1. 'त' 'ब्राह्मण'—15 जुलाई, 1889
2. 'दानपात्र' 'ब्राह्मण—15 अक्टूबर, 1889

पं० प्रतापनारायण मिश्र और उनका 'ब्राह्मण' पत्र

प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी

जिस प्रकार पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी के साहित्यिक जीवन से 'सरस्वती' को अलग नहीं कर सकते, ठीक उसी प्रकार 'प्रतापनारायण मिश्र' और 'ब्राह्मण' को भी एक दूसरे से विभक्त नहीं कर सकते ।

'ब्राह्मण' मार्च सन् 1883 से निकलने लगा था और जुलाई सन् 1889 तक रो-पीटकर चला ।[1] इस बीच सदैव ग्राहकों की नादिहन्दी का उलाहना ही देते बीता । कभी तो एक रुपया वार्षिक चन्दा न देने वाले ग्राहकों के नाम ब्रह्मघातकों की श्रेणी में लिखे जाते थे और उन्हें शर्मिन्दा करने की कोशिश की जाती थी । कभी 'आठ मास बीते जजमान, अब तो करो दक्षिणा दान' की हास्यपूर्ण अपील करके उनसे चन्दा वसूल करने का ढंग अख्तियार किया जाता था । अन्त में मिश्र जी इस प्रकार के मुफ्तखोर कच्चे हिन्दी-प्रेमियों से परेशान हो गये और अपनी गाँठ से खर्च करते-करते हार गये । यह नौबत आ गई कि शीघ्र ही 'ब्राह्मण' बन्द करना पड़ा ।

इसके पहले कि 'ब्राह्मण' के साहित्यिक महत्त्व पर विचार किया जाय, जरा उसके उद्देश्य को प्रतापनारायण जी के ही शब्दों में देखिए । सबसे पहले अंक में उन्होंने 'प्रस्तावना' शीर्षक छोटे से लेख में यह लिखा था—

"···कानपुर इतना बड़ा नगर है !! सहस्रावधि मनुष्य की बस्ती (?) !!! पर नागरी पत्र, जो हिन्दी रसिकों का एकमात्र मनबहलाव देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय, शिक्षक और सभ्यता-दर्शक, अत्युच्च ध्वजा (हो ?) यहाँ एक भी नहीं ।···सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा ।

···हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा, जिस तरह 'सब जहान में कुछ हैं, हम भी अपने गुमान में कुछ हैं ।' इसके सिवा हमारी दक्षिणा भी बहुत ही न्यून है ।··हाँ, एक बात रही जाती है, कि हममें कुछ औगुण भी हैं सो सुनिये । जन्म हमारा फागुन में हुआ है और होली की पैदाइश प्रसिद्ध है । कभी कोई हँसी कर बैठें, तो क्षमा कीजिएगा ।"

'ब्राह्मण' बन्द करते समय अपने जजमानों से विदा माँगते समय भी 'अन्तिम संभाषण' में उन्होंने 'ब्राह्मण' की साहित्य-सेवा पर अपने विचार प्रकट किये हैं । इस सिंहावलोकन के पहले यह प्रसिद्ध शेर है :—

---

1. जुलाई, 1891 तक पं० प्रतापनारायण जी 'ब्राह्मण' को घाटा सहकर भी कानपुर से निकालते रहे । किन्तु गाँठ का पैसा लगाकर भी अपने श्रम और सरस्वती की विडम्बना देखना उन्हें असह्य हो गया, इसलिए उन्होंने पत्र का प्रकाशन बन्द करने की घोषणा कर दी । अगले ही अंक, अगस्त, 1891 से खड्ग-विलास प्रेस, बाँकीपुर के मालिक महाराज रामदीनसिंह ने इसे अपने यहाँ से निकालने का दायित्व ले लिया । वहाँ से यह पत्र मिश्र जी के जीवन-पर्यन्त निकलता रहा । —सम्पादक

"दरो-दीवार पे हसरत से नजर करते हैं।
खुश रहो अहलेवतन हम तो सफर करते हैं।।"

आगे वे कहते हैं :—

"यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा, अपने कर्तव्य-पालन में योग्य था या अयोग्य—यह कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है। न्यायशील, सहृदय लोग अपना विचार आप प्रगट कर चुके हैं और करेंगे। पर हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी पत्रों की गणना में एक संख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य (लिटरेचर) को थोड़ा बहुत सहारा इससे भी मिलता रहता था।" पण्डित प्रतापनारायण ने केवल साहित्य-चर्चा को उत्तेजित करने के उद्देश्य से 'ब्राह्मण' निकालना शुरू किया था। किन्तु उसके द्वारा उस समय की जनता में देश-भक्ति के भाव उत्पन्न करना तथा सामाजिक सुधार की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना भी उनका अभीष्ट था। तभी तो 'ब्राह्मण' के पन्ने 'गो-रक्षा' 'स्वदेशी' 'कान्यकुब्ज-कुरीति-निवारण' आदि विषयों से भरे पड़े हैं।

यह होते हुए भी यही मानना पड़ता है कि 'ब्राह्मण' ने साहित्यिक सेवा सबसे अधिक की है।

उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह थी कि अधिकाधिक शिक्षित लोगों की रुचि उर्दू और फारसी से हटाकर हिन्दी की ओर आकर्षित की जाय। ऐसी दशा में एक प्रकार के सुगम साहित्य का होना नितान्त आवश्यक था। क्योंकि उसके बिना अंग्रेजींदाँ लोग एकाएक विदग्ध साहित्य की तरफ कभी प्रेरित हो ही नहीं सकते थे। 'ब्राह्मण' ने इस सरल, किन्तु रोचक साहित्य की रचना में कहाँ तक योग दिया, इसका अनुमान करने के लिए उसमें समय-समय पर प्रकाशित लेखों के विषय-वैचित्रय को देखिए।

'किस पर्व में किसकी बनि आती है', 'किस पर्व पर किस पर आफत आती है', 'कलिकोष', 'ककाराष्टक', 'घूरे के लत्ता बिनै, कनातन का डौलु बाँधैं', 'जन्म सुफल कब होय', 'होली है' आदि उपर्युक्त ढंग के मन बहलाव करने वाले सुबोध निबन्ध तथा कविताओं के अच्छे नमूने हैं।

'किस पर्व में किस पर आफत आती है' से एक अवतरण लीजिए :—

"माघ का महीना कनौजियों का काल है। पानी छूते हाथ-पाँव गलते हैं। पर हमें बिना स्नान किए फलाहारी खाना भी धर्मनाशक है। जलसूर के माने चाहे जो हों, पर हमारी समझ में यही आता है कि सूर अर्थात अंधे बन के आँखे मूँद के लोटा भर पानी पीठ पर डाल लेने वाला जलसूर है!"

कभी-कभी सामयिक विषयों पर भी बड़े व्यंग्य-पूर्ण लेख 'ब्राह्मण' में निकला करते थे। 'मिडिल क्लास', 'इन्कमटैक्स' 'होली है अथवा होरी है', 'पड़े पत्थर समझ पर आपकी समझे तो क्या समझे', इस प्रकार के लेखों में से हैं। इसके सिवाय साधारण विषयों पर मुहावरेदार सीधी-सादी किन्तु सजीव भाषा में बहुत से निबन्ध हुआ करते थे। इनमें से उत्तमोत्तम निबंध प्रस्तुत संग्रह (प्रताप-पीयूष) में दिये जाते हैं।

इनमें से हम 'भौं', 'बालक', 'सोना', 'युवावस्था', 'द', 'ट', 'परीक्षा', 'मतवादी अवश्य नर्क जायेंगे', 'नास्तिक', 'शिवमूर्ति', 'समझदार की मौत है' को काफी ऊँचा स्थान देते हैं। हाँ, उनकी भाषा तथा उनके भावों में इतनी प्रौढ़ता नहीं है, जितनी कि पंडित बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों में है, फिर भी जिस उद्देश्य को सामने रखकर वे लिखे गये थे, उसकी पूर्ति अच्छी तरह से हो गई है। यह उद्देश्य मनोरंजनपूर्ण शिक्षा देना तथा हिन्दी की ओर लोगों की अभिरुचि उद्दीप्त करना था।

—'प्रताप-पीयूष', सं० प्रो० रमाकान्त त्रिपाठी (सन् 1933 ई०) से साभार।

ब्राह्मण

डॉ० प्रेमनारायण टण्डन

अपने उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए पं० प्रतापनारायण मिश्र को "ब्राह्मण" नाम का पत्र निकालने की आवश्यकता पड़ी । यों उस समय बाबू हरिश्चन्द्र की "कविवचन सुधा" नाम की पत्रिका भी अच्छी निकल रही थी; पर उससे मिश्र जी का मतलब पूरा होने की सम्भावना न थी । इसका प्रधान कारण उनके और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उद्देश्यों में अन्तर का होना था । एक दूसरा कारण यह भी था कि 'कविवचन सुधा' में प्रायः कविता ही अधिकतर छपा करती थीं ।

"ब्राह्मण" के पहले अंक में पं० प्रतापनारायण मिश्र ने उद्देश्य लिखे थे । वह लेख छोटा ही है, पर उसकी मुख्य बातें हम यहाँ पर देते हैं । उन्होंने लिखा है—

"हम गुणी हैं या औगुणी—यह तो आप लोग कुछ दिन में जान ही लेंगे, पर यह जान रखिए कि भारतवासियों के लिए क्या लौकिक क्या पारलौकिक मार्ग का एक मात्र अगुआ हम और हमारे थोड़े से समाचार पत्र भाई ही बन सकते हैं । कानपुर इतना बड़ा नगर ! सहस्रावधि मनुष्यों की वस्ती !! पर नागरी-पत्र, जो हिन्दी रसिकों का एक मात्र मनबहलाव, देशोन्नति का सर्वोत्तम उपाय, शिक्षक, और सभ्यतादर्शक, अत्युच्च ध्वजा यहाँ एक भी नहीं । भला यह दशा हमसे कब देखी जाती है ।"··· "अंतःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए सदा अपने यजमानों (ग्राहकों) का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्म होगा । हम निरे मत-मतान्तर के झगड़े की बातें कभी नहीं करेंगे कि एक की प्रशंसा हो, दूसरे की निन्दा हो, वरंच यह उपदेश करेंगे, जो हर प्रकार के मनुष्यों को मान्य, सब देश काल में साथ हो, जो किसी के भी विरुद्ध न हो । वह चाल-ढाल, व्यवहार बतावेंगे, जिनसे धन-बल, मान-प्रतिष्ठा में कोई भी बाधा न हो । कभी राज-सम्बन्धी, कभी व्यापार-सम्बन्धी विषय भी सुनावेंगे । कभी-कभी गद्य-पद्य-मय नाटक से भी रिझावेंगे । इधर-उधर के समाचार तो सदा देवेंगे ही ।··हमको निरा ब्राह्मण ही न समझियेगा । जिस तरह सब जहान में कुछ हैं, हम भी अपने गुमान में कुछ हैं ।"

इस अवतरण में मिश्र जी का उद्देश्य प्रकट हो जाता है । "ब्राह्मण" में पहले सामाजिक लेख ही अधिकतर प्रकाशित होते थे । जनसाधारण को समझाने और रिझाने के लिए मिश्र जी अपनी भाषा सरल और साधारण रखते थे । इसमें हास्य की मात्रा कुछ अधिक होती थी । इस समय के लेखों में 'कलिकोष', 'किस पर्व में किसकी बन आती है', 'किस पर्व में किस पर आफत आती है', 'मतवादी अवश्य नरक जायेंगे', 'होली है', 'ककाराष्टक', 'नारी', 'देव मन्दिरों के प्रति हमारा कर्तव्य' आदि प्रसिद्ध हैं ।

आगे चलकर उन्होंने 'ब्राह्मण' की रीति-नीति में कुछ परिवर्तन करना चाहा । "हमारी आवश्यकता"—शीर्षक लेख में उन्होंने एक बार लिखा—

"जी बहलाने के लेख हमारे पाठकों ने बहुत पढ़ लिए । यद्यपि इनमें भी बहुत-सी समयोपयोगी शिक्षा रहती है, पर वाग्-जाल में फँसी हुई ढूँढ़ निकालने योग्य । अतः अब हमारा विचार है कि कभी-कभी ऐसी बातें भी लिखा करें, जो इस काल के लिए प्रयोजनीय हैं, तथा हास्यपूर्ण न होके सीधी-सादी भाषा में हों । हमारे पाठकों का काम है कि उन्हें नीरस समझकर छोड़ न दिया करें तथा केवल पढ़ ही न डाला करें, वरञ्च उनके लिए तन से, धन से, कुछ न हो सके तो वचन ही से यथावकाश कुछ करते भी रहें ।"

इस उद्धरण से प्रकट होता है कि हिन्दू-जनता के हृदय में हिन्दी के लिए कुछ प्रेम अवश्य उत्पन्न हो चुका था और मिश्रजी उसका संस्कार करना चाहते थे । इनका उद्देश्य अब यह नहीं था कि आगे पाठकों को केवल हँसाने और रिझाने की चेष्टा की जाय, वरन वे अब उनका नैतिक और साहित्यिक उत्थान करना चाहते थे ।

यहाँ एक बात समझ लेनी चाहिए । "ब्राह्मण" में कुछ साहित्यिक निबन्ध तो प्रकाशित होने लगे, परन्तु उनकी भाषा में विशेष गम्भीरता न आ सकी । इस समय भी उनकी भाषा हास्य और व्यंग्य से पूर्ण होती थी । उनके साहित्यिक निबन्धों में 'आयु', 'युवावस्था', 'भौं', 'धोखा', 'बातचीत' आदि अधिक प्रसिद्ध हैं ।

इतना होने पर भी जनता ने "ब्राह्मण" का विशेष आदर न किया । यहाँ तक कि उसके सौ ग्राहक भी न रहे और मिश्र जी को लगभग साढ़े सात सौ की हानि उठानी पड़ी । अन्त में उसके बन्द होने की भी नौबत आ गई । अन्तिम अंक में "ब्राह्मण की अंतिम विदा" शीर्षक का एक लेख लिखा । उसमें मिश्र जी लिखते हैं–

"दरो दीवार पे हसरत से नजर करते हैं ।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं ।।"

परम गूढ़ गुण-रूप स्वभावादि सम्पन्न प्रेम देव के पद-पद्म को बारम्बार नमस्कार है, कि अनेकानेक विघ्नों की उपस्थिति में भी उनकी दया से 'ब्राह्मण' ने सात वर्ष तक संसार की सैर कर ली; नहीं तो कानपुर वह नगर है, जहाँ बड़े-बड़े लोग बड़ों की सहायता के आछत भी कभी कोई हिन्दी का पत्र छः महीने भी न चला सके और न आसरा है कि कभी कोई एतद्विषयक कृत-कार्यत्व लाभ कर सकेगा, क्योंकि यहाँ के हिन्दू समुदाय में अपनी भाषा और अपने भाव का ममत्व विधाता ने रखा ही नहीं । फिर हम क्योंकर मान लें कि यहाँ हिन्दी और उसके भक्तजन कभी सहारा पावेंगे ? ऐसे स्थान पर जन्म लेके और खुशामदी तथा हिकमती न बन के 'ब्राह्मण' देवता इतने दिन बने रहे, सो भी एक स्वेच्छाचारी के द्वारा संचालित होके इसे प्रेम-देव की आश्चर्य-लीला के सिवा क्या कहा जा सकता है ?"

इस सूचना के लगभग पाँच महीने पहले उन्होंने "ब्राह्मण" में "तृप्यन्ताम्" शीर्षक एक बहुत लम्बी-चौड़ी कविता लिखी थी । उसके अन्त में ही उन्होंने "ब्राह्मण" को बंद करने का विचार जनता के सामने रख दिया था । उन्हें आशा थी कि सम्भव है, हिन्दी-प्रेमी और कानपुर के सज्जन उसके प्रति कर्तव्य पहचान सकें; पर हिन्दी के दुर्भाग्य से ऐसा न हुआ । लोगों ने उनके कथन को एक कान से सुना और दूसरे कान से निकाल दिया । "ब्राह्मण" की यह सूचना इस प्रकार है–

"जिन्हें "ब्राह्मण" का जीवन न रुचता हो, वे पाँच महीने और राम-राम कहकर काट दें, फिर देख

लेंगे कि हर महीने ऊटपटाँग लेख और हर साल सोलह आने का तकाजा समाप्त हो गया । क्योंकि जब हम सात महीने से देख रहे हैं कि सहायता के नाम बाजे-बाजे बड़े-बड़े लखपतियों से असली दाम भी नहीं मिलते, जो कुछ सहारा देते हैं वह केवल मुख से । जिनसे कुछ आसरा करो वे और कुछ लेके रहते हैं । जो सचमुच सहायक हैं वे गिनती के दस भी नहीं । इसी से कई एक उत्तमोत्तम पत्र बंद हो गये । कई एक आज हैं, तो कल नहीं, कल हैं तो परसों नहीं । कई एक ज्यों के त्यों चले जाते हैं, तो केवल चलाने वाले के माथे । पर अपने राम में अब सामर्थ्य नहीं रही । बरसों से झेलते-झेलते हिम्मत हार गई ।"

इस प्रकार 'ब्राह्मण' ने जन्म लिया, हिंदी की सेवा की और अंत में समाप्त हो गया । यह पत्र मासिक था । इसका पहला अंक 15 मार्च, 1883 में निकला था । इस समय इसमें 12 पृष्ठ थे । सन् 1887 में कुछ दिनों के लिए यह बंद भी हुआ था ।[1] "ब्राह्मण की अंतिम विदा" शीर्षक लेख कदाचित इसी समय प्रकाशित हुआ था ।[2] सन् 1894 में, पं० प्रतापनारायण मिश्र की मृत्यु के उपरांत, बाबू रामदीन सिंह ने इसे फिर निकालने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हुए ।[3] बाबू साहब बाँकीपुर के खड्ग विलास प्रेस के मालिक थे । मिश्र जी पर इनकी विशेष कृपा थी । शायद इसी से पं० प्रतापनारायण ने अपनी कुछ पुस्तकों का अधिकार भी उन्हीं को दे दिया था । 'ब्राह्मण' ने हिंदी की क्या सेवा की—इसका पता हमें मिश्र जी के इस कथन से लगता है—

"यह पत्र अच्छा था अथवा बुरा, अपने कर्तव्य-पालन में योग्य था या अयोग्य—यह कहने का हमें कोई अधिकार नहीं है । न्यायशील, सहृदय लोग अपना विचार आप प्रकट कर चुके हैं और करेंगे । पर हाँ, इसमें संदेह नहीं है कि हिंदी पत्रों की गणना में एक संख्या इसके द्वारा भी पूरित थी और साहित्य (लिटरेचर) को थोड़ा-बहुत सहारा इससे भी मिला रहता था ।"

मिश्र जी के 'ब्राह्मण' ने जो हिंदी-भाषा और साहित्य का काम शुरू किया, वही आगे चलकर पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' ने पूरा किया । दोनों अभिन्न हैं । हम तो यही कहेंगे कि 'ब्राह्मण' के ही कारण पं० प्रतापनारायण मिश्र का जीवन-चरित्र एक साहित्यसेवी की हैसियत से हमारे सामने आ सका । संभव है 'ब्राह्मण' के न होने पर मिश्र जी इतने प्रसिद्ध न होते ।

—'प्रताप-समीक्षा', सं० डॉ० प्रेमनारायण टण्डन (जनवरी, 1939 ई०) से साभार उद्धृत

---

1. पं० प्रतापनारायण जी की अस्वस्थता के कारण मार्च, 1886 से जुलाई, 1887 तक 'ब्राह्मण' बन्द रहा ।
2. 'अंतिम संभाषण' शीर्षक लेख 'ब्राह्मण' के खंड 7, सं० 12, जुलाई, 1891 ई० में प्रकाशित हुआ था ।
3. जुलाई वर्ष 1891 में सातवें वर्ष के अंत में 'ब्राह्मण' का प्रकाशन कानपुर से बंद होने पर अगस्त, 1891 ई० से 'ब्राह्मण' का प्रकाशन बाँकीपुर से होने लगा था । पत्र का सम्पादन मिश्र जी ही करते थे ।

'ब्राह्मण' की कथा

श्री नारायण प्रसाद अरोड़ा

पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म सन् 1857 के प्रथम स्वातन्त्र्य युद्ध से एक वर्ष पूर्व हुआ था। उनके शिक्षा-काल में इसी की भयंकर प्रतिक्रिया भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग में प्रदर्शित हो रही थी। कानपुर इस स्वातन्त्र्य-संग्राम का प्रधान केन्द्र रह चुका था। नाना साहब की राजधानी में युद्ध की असफलता के अनन्तर एक ओर निराशा का ज्वार उमड़ रहा था और दूसरी ओर विजय की ठसक छाई हुई थी। जब प्रतापनारायण ने स्कूल से निकलकर लेखनी उठाई तो उन्हें चारों ओर निरुत्साह, निरुद्योग, अकर्मण्यता और पराजयवादिता का ही वातावरण मिला। उसे मिटाने के सदुद्योग में मिश्र जी ने अपनी ईश्वरदत्त प्रतिभा का उपयोग किया। स्वामी दयानन्द के समयोपयुक्त शंख-नाद ने देश की व्यथित आत्मा को बहुत कुछ सान्त्वना प्रदान की थी। कानपुर भी स्वामी जी के संदेश से प्रभावित हुआ था। उसके जी की कलप को तनिक शान्ति मिली थी। इधर नई तालीम, नई शासन-पद्धति (कम्पनी की हुकूमत समाप्त हो जाने पर) और नई औद्योगिक उन्नति के श्रीगणेश से जनता के ध्यान की दिशा में कुछ परिवर्तन प्रारम्भ हो चला था। इस संक्रान्ति-वेला में कानपुर में उल्लास, मनोरंजन, उत्साह और चहल-पहल के संचार का प्रधान श्रेय पं० प्रतापनारायण मिश्र को है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से गुरु-मन्त्र लेकर उन्होंने अपने नगर को साहित्य-सेवा, नाटक, व्याख्यान, चुहुलबाजी आदि से अनुप्राणित किया। इस सत्कार्य में 'ब्राह्मण' ही उनका प्रधान उपकरण था।[1]

"मिश्र जी के समय का ध्यान करते हुए उन्हें एक क्रान्तिकारी कवि कहा जा सकता है। आज की दृष्टि से तो वे एक सुधारक ही प्रतीत होते हैं। मिश्र जी का समय भारतीय स्वतन्त्रता के आन्दोलन का प्रारम्भिक काल था। अतः उन्हें स्वतन्त्रता का पहला कवि कहना अनुचित न होगा। क्योंकि उनके लेखों और कविताओं से स्पष्ट प्रकट होता है कि उनके दिल में देश-प्रेम की आग थी। उनकी प्रत्येक कविता से समाज-सुधार और जाति-सुधार टपकता है। वे ढकोसलों को मिटाने के पक्षपाती थे।

उनकी भाषा में नदी का-सा प्रवाह है। रोजमर्रा की भाषा में बड़े-बड़े मार्के की बातें कह जाते हैं और देहाती भाषा में भी गूढ़ तत्त्वों का वर्णन कर देते हैं। आजकल तो बनावटी और गढ़ी हुई भाषा का जोर है। मिश्र जी की-सी मुहाविरेदार और चटपटी भाषा तो आज देखने को भी नहीं मिलती। भगवान सुबुद्धि दे कि हम असली मातृभाषा लिखा करें और बनावटी से बचें।"[2]

पं० प्रतापनारायण मिश्र की साहित्य-सेवा का प्रमुख साधन उनका 'ब्राह्मण' मासिक पत्र था। इसमें रायल आठ पेजी साइज के 12 पृष्ठ रहते थे। इसके मुख-पृष्ठ पर सबसे ऊपर एक वक्रचन्द्र और उसके

1. 'प्रतापनारायण मिश्र', सं० ना० प्र० अरोड़ा व ल० कां० त्रिपाठी, 'दो शब्द', पृष्ठ 2
2. 'प्रतापलहरी', सम्पादक ना० प्र० अरोड़ा (प्रकाशित सन् 1949 ई०), 'दो शब्द', पृष्ठ 4

ऊपर '1' का अंक छपा होता था। उसके नीचे 'शत्रोरपि गुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि' यह वाक्य उसके उद्देश्य के रूप में छपता था। बाद के अंकों में एक बड़े चाँद के भीतर ही 'ब्राह्मण' लिखा रहता था, पर कई साल तक पहले पहल 'ब्राह्मण' नाम अंग्रेजी और नागरी लिपियों में छपता रहा। फिर उसके नीचे पहले के अंकों में यह पद्य रहता था :–

> नीति निपुण नर धीर वीर, कछ सुजस करौ किन।
> अथवा निन्दा कोटि कहौ दुर्वचन छिनौछिन ॥
> सम्पितहू चलि जाहु रहौ अथवा अगणित धन।
> अबहि मृत्यु किन होहु होहु अथवा निश्चन्द तन ॥
> पर न्याय पथ को तजत नहिं जे विवेक गुण ज्ञाननिधि।
> यह संग सहायक रहत नित देत लोक परलोक सिध ॥

कई साल तक यही क्रम चला, फिर हिन्दी अनुवाद के स्थान में भर्तृहरि का मूल श्लोक–

"निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वास्तुवन्तु। लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम। अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा। न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदन्नधीराः।" छपने लगा। 'ब्राह्मण' अपने संक्षिप्त जीवन में कई प्रेसों में छपा और मैनेजर भी बदलते रहे। इसका सबसे पहला अंक 15 मार्च सन् 1883 को नामी प्रेस कानपुर से छपा। पर दूसरे अंक को "हरिप्रकाश यन्त्रालय बनारस महल्ला नैंपाली खपरा में बाबू अमीरसिंह ने मालिकों के निमित्त छापा और पं० ईश्वरावलंबित प्रसिद्ध प्रतापनारायण मिश्र ने शहर कानपुर सवाईसिंह हाते से प्रकाशित किया।" इसमें गोपीनाथ खन्ना मैनेजर का नाम छपा हुआ है।

···जुलाई सन् 1890 में मिश्र जी 'हिन्दोस्थान' से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर कानपुर लौट आये। इसी मास से 'ब्राह्मण' का प्रकाशन खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर से होना प्रारम्भ हुआ और अन्त तक वहीं से निकलता रहा।···इस बीच में अर्थ-संकट और घाटे से ऊब कर मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' को बन्द करने की सोची और पाठकों से अन्तिम विदाई तक ले ली, पर खड्ग विलास प्रेस के मालिक की उदारता से वह फिर निकला। उसके बाद जून सन् 1893 तक के अंक हमें मिले हैं और उसमें मैनेजर खड्ग विलास प्रेस का ही नाम मैनेजर की जगह पर है। उसके बाद के कोई अंक हमारे देखने में नहीं आये। मिश्र जी का निधन जुलाई सन् 1894 में हुआ। अनुमान से उनके जीवन काल में तो यह पत्र निकलता ही रहा होगा। खड्ग विलास प्रेस के मालिक महाराज कुमार ठाकुर रामदीन सिंह से बढ़कर और कौन संरक्षक उसे मिल सकता था और विशेष कर जब मिश्र जी ने अपनी समस्त रचनाओं का कापीराइट उन्हें दे रक्खा था? उनकी मृत्यु के बाद भी कुछ काल तक 'ब्राह्मण' को ठाकुर साहब निकालते रहे। पर बिना मिश्र जी के महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व के यह निर्जीव दशा में कब तक चल सकता था?

स्वयं मिश्र जी के जीवन काल में भी कई बार वह लड़खड़ाया था। नादिहन्द ग्राहकों और मुफ्तखोर पाठकों की दया से मिश्र जी ने कई बार उसे बन्द करने का विचार किया, पर कुछ कृपालु मित्रों और संरक्षकों की बदौलत उसका स्वास्थ्य भी उसके सम्पादक के स्वास्थ्य की भाँति औषधोपचार से चलता रहा।[1]

1. 'ब्राह्मण की कथा' शीर्षक लेख, पृष्ठ 6-7, 'प्रतापनारायण मिश्र', सम्पादक श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा व पं० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी (1947 ई०) से साभार

अहर्निश साधना तथा सर्वोत्कृष्ट पत्रकला का प्रतीक

पं० प्रतापनारायण मिश्र

का

'ब्राह्मण'

पं० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म संवत् 1913 (सन् 1856) की आश्विन बदी 9 (मातृनवमी) को हुआ। सन् 1871 तक उन्होंने कानपुर के नयागंज मिडिल स्कूल तथा क्राइस्ट चर्च स्कूल में शिक्षा पाई। पर एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास किये बिना ही उनका पढ़ना समाप्त हो गया।

'ब्राह्मण' का जन्म

पं० प्रतापनारायण ने अपने जीवन के अगले अमूल्य 10-12 वर्षों (1871-83) को सोद्देश्य स्वाध्याय, सजग साधना, गहन अनुशीलन और उत्कृष्ट ऊहापोह में व्यतीत कर, राष्ट्रभाषा हिन्दी, हिन्दू-धर्म एवं समाज और राजनीति के अखाड़ों में सक्रिय भाग लेने का संकल्प कर मार्च सन् 1883 में 'ब्राह्मण' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया। अभी कांग्रेस का जन्म नहीं हुआ था, पर देश में एक सार्वभौम राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की चर्चा थी। समाचार-पत्रों, व्याख्यानों आदि में इसकी चख-चख थी। अंग्रेजी शासन-चक्र वेग से चल रहा था। लिटन के शासन-काल (1876-80) में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पास हुआ। लंकाशायर के कपड़े के कारखानों के मालिकों के शोर मचाने से भारतीय मिलों के कपड़े पर उत्पादन-कर लगाया गया। सिविल सर्विस की लंदन वाली परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए उम्र घटा कर भारतीय नवयुवकों को उससे वंचित रखने का उपाय किया गया। द्वितीय अफ़गान युद्ध छेड़कर भारत के धन का अपव्यय किया गया। बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (1848-19...) ने सिविल सर्विस से पृथक किये जाने पर समस्त देश का दौरा किया, जिसमें उन्होंने सिविल सर्विस के भारतीयकरण का आन्दोलन किया। कानपुर में भी 1877 में उनका व्याख्यान हुआ। लार्ड रिपिन (शासन काल 1880-84) ने इन सभी विषयों पर सरकारी नीति को कुछ बदलकर भारतीय जनता के आँसू पौंछे। प्रेस एक्ट रद्द हुआ (सन् 1881)। 'ब्राह्मण' ने इसी रिपिन-कालीन स्वच्छन्द और स्वतन्त्र वातावरण में जन्म ग्रहण किया। प्रथम अंक के प्रथम लेख 'प्रस्तावना' में मिश्र जी उसके उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—"हम वह ब्राह्मण नहीं कि केवल दक्षिणा के लिए निरी ठकुरसुहाती बातें करें। अपने काम से काम कोई बने या बिगड़े, प्रसन्न रहे या अप्रसन्न।...हम निरे मतमतान्तर के झगड़े की बातें कभी न करेंगे कि एक की प्रशंसा, दूसरे की निन्दा, वरंच वह उपदेश

करेंगे, जो हर प्रकार के मनुष्यों को मान्य सब देश-काल में साथ हों, जो किसी के विरुद्ध न हो। वह चाल-ढाल, व्यवहार बतावेंगे, जिनसे धन, बल, मान, प्रतिष्ठा में कोई बाधा न हो। कभी राज-सम्बन्धी, कभी व्यापार-सम्बन्धी विषय भी सुनावेंगे; कभी-कभी गद्य-पद्य-मय नाटक से भी रिझावेंगे। इधर-उधर के समाचार तो सदा देंगे ही।...यदि निर्वाह-मात्र भी होता रहेगा, तो हम जो हो अपने वचन निबाहे जायँगे।...हाँ एक बात रह जाती है कि हममें कुछ अवगुण भी हैं। सो सुनिए। जन्म हमारा फागुन में हुआ है और होली की पैदाइश प्रसिद्ध है। कभी कोई हँसी कर बैठें, तो क्षमा कीजिएगा। सभ्यता के विरुद्ध न होने पावेगा। वास्तविक बैर हमको किसी से भी नहीं है, पर अपने करम लेख से लाचार हैं। सच-सच कह देने में हमको कुछ संकोच न होगा!"

इस विशद नीति को सामने रखकर मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' का प्रकाशन स्वयं अपने बल पर जून 1891 तक किया। ग्राहकों की संख्या 200 से अधिक कभी नहीं हुई। इनमें से भी बहुत से ऐसे नादिहन्द निकले कि साल भर में एक रुपया चन्दा भी घोट गये। इस विषय पर मिश्र जी के रोचक लेख व कवितायें प्रसिद्ध हैं। अन्त में सैकड़ों रुपयों का घाटा सहकर उन्होंने 'ब्राह्मण' को बन्द करने का निश्चय किया। पर अगले अंक से ही बाँकीपुर के खड्गविलास प्रेस के मालिक महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह ने इसके प्रकाशन का भार अपने ऊपर लेकर इसे चलाया और सम्भवतः वह उनके जीवन-काल में और उसके अनन्तर कुछ वर्ष और निकलता रहा।

देश-दर्पण

'ब्राह्मण' कलेवर में मासिक था, पर वास्तव में साप्ताहिक पत्रों से उसकी समता करनी चाहिए; क्योंकि सामयिक घटनाओं की चर्चा और उन पर टीका-टिप्पणी और आलोचना उसमें उसी प्रकार होती थी, जैसी साप्ताहिक पत्रों में प्रायः रहती है। भारतेन्दु जी के मासिक पत्र समाचार-पत्र कम थे, साहित्यिक अधिक थे; यही हाल पं० बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी-प्रदीप' का था। पर उन दिनों कानपुर में हिन्दी का कोई पत्र नहीं था—न मासिक और न साप्ताहिक। दैनिक का तो वह युग भी नहीं था। एकाध पत्र बीच-बीच में निकलकर कुछ काल तक टिमटिमाकर अस्त हो जाते थे। इसीलिए 'ब्राह्मण' कानपुर की इस कमी को मासिक रूप में ही पूरा करता था और इतिहास के विद्यार्थी के दृष्टिकोण से यह बहुत ही अच्छा हुआ। सन् 1883 से 1891 तक अर्थात् रिपन, डफरिन और लैंस डाउन के शासन-काल के अध्ययन की बहुमूल्य सामग्री जितनी 'ब्राह्मण' की जीर्ण-शीर्ण फाइलों से उपलब्ध हो सकती है, उतनी उस युग के अन्य मासिकों अथवा ऐतिहासिक ग्रन्थों से नहीं। उस युग की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक चहल-पहल का जीता-जागता बहुरंगी चित्र 'ब्राह्मण' में मिश्र जी जैसे चतुर-चितेरे द्वारा खींचा हुआ इतना सच्चा और रोचक है कि उसकी तुलना करना कठिन है। मिश्र जी का दृष्टिकोण भी इतना उदार और व्यापक था, उनकी बुद्धि इतनी पैनी थी, उनके पर्यवेक्षण की शक्ति इतनी प्रखर थी, उनकी आलोचना इतनी खरी होती थी और उनकी वर्णन-शैली इतनी गुदगुदी पैदा करने वाली होती थी कि यद्यपि आज लगभग 70-75 वर्ष बाद, जब उनके वर्णित विषयों में से कुछ तो इतिहास की सामग्री के रूप में ही अवशिष्ट हैं और कुछ केवल व्यक्तिगत अथवा स्थानीय सन्दर्भ के हैं और इसलिए आशा नहीं की जाती कि किसी वाचक के हृदय में आज वे उल्लास की एक लहर भी उत्पन्न कर सकेंगे, तथापि आज भी 'ब्राह्मण' की फाइलों के पढ़ने वालों को वही आनन्द आता है, जो 'फसायने-आजाद' के पाठकों

को । दोनों अपने युग की लौकिक बोलियों में लिखे गये हैं ।

लखनवी रंग

पं० रतननाथ सरशार (1846-1902) पं० प्रतापनारायण मिश्र से उम्र में केवल 10 वर्ष बड़े थे । सन् 1878 में वे लखनऊ के "अवध-अखबार" के सम्पादक नियुक्त हुए । उसमें लखनऊ के नवाबों, मध्यवर्गीय व्यक्तियों, पुलिस अफसरों, बंगाली बाबू थियासोफिष्ट आदि पर लखनवी भाषा में व्यंग्य-प्रहार किया गया है । 'फसायने-आजाद' का पुस्तक रूप में प्रकाशन 1880 में हुआ । उसी युग में मुंशी सज्जादहुसेन का "अवध पंच" भी अपनी व्यंग्य-पूर्ण सामग्री में कोई सानी नहीं रखता था । 3 वर्ष बाद 'ब्राह्मण' का प्रकाशन शुरू हुआ । मिश्र जी ने अपनी प्रिय चिर-सहचरी कानपुरी भाषा में उसी कानपुर का चल-चित्र 'ब्राह्मण' में खींचना शुरू किया, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है । पर सरशार और प्रतापनारायण के आदर्श भिन्न-भिन्न थे । 'ब्राह्मण' कानपुरी होते हुए भी राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधि-पत्र था । बीस वर्ष बाद मिश्र जी के शिष्य बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारत-मित्र' में 'शिवशम्भू के चिट्ठे' उसी शैली में प्रकाशित किये । हाँ, गुप्त जी की भाषा मिश्र जी की भाषा से प्रेरणा लेती हुई भी अपनी अलग छटा रखती है ।

'ब्राह्मण' की परम्परा

'ब्राह्मण' ही के माध्यम से पं० प्रतापनारायण ने अपने विकसित व्यक्तित्व का प्रकाश किया । उनकी साहित्यिक देन 'ब्राह्मण' ही है और वही उनके हृदय, मनोवृत्ति और मन्तव्यामन्तव्य का निर्मल मुकुर है । 15 मार्च, 1883 को 'ब्राह्मण' का पहला अंक निकला । 5 मई, 1883 को 'बंगाली' के सम्पादक बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को कलकत्ता हाईकोर्ट की फुल बेंच ने दो मास की जेल की सजा दी थी; क्योंकि उन्होंने अपने पत्र में जस्टिस मोरिस की उस आशा का कड़े शब्दों में विरोध किया था, जिसके अनुसार अदालत के सामने शालिग्राम की मूर्ति की पेशी की गई थी । इस प्रकार अदालत का अपमान करने के परिणामस्वरूप सुरेन्द्र बाबू को दो मास की जेल हुई । उनके दण्डित होने पर 'ब्राह्मण' में कड़ी आलोचना छपी । 30 अक्टूबर को उसी वर्ष (1883) ऋषि दयानन्द का अजमेर में देहावसान हुआ । पं० प्रतापनारायण मिश्र पर स्वामीजी का गहरा प्रभाव पड़ा था । पर स्वामी जी के सदा प्रशंसक होते हुए भी मिश्र जी की आर्य-समाज से बहुत दिन न निभी । आर्य-समाजियों की गतिविधि पर उनके अनेक व्यंग्य समय-समय पर 'ब्राह्मण' में छपे, जिसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

"स्वामी दयानन्द मनैं बिसूरे, हम सब करिबे देस-सुधार ।
मूड़ मुड़ाओ उन भारत हित, विद्या पढ़ी छोड़ि घर-बार ।।
धनि-धनि कहिए उनका जियरा, सब तजि कीन वेद परचार ।
कहुँ हरवाहन संध्या सीखी, कहुँ-कहुँ बैठ गई चटसार ।।
एक न चली हियाँ उनहूँ की, औते आवत भौ सत्कार ।
कतहूँ ईंटन की बरखा भई, कतहूँ गारिन की बौछार ।।
सब सहि लीन्हीं अपने ऊपर, धनि-धनि स्वामी जी महाराज ।
सम्वत् उनइस सौ छत्तिस मा, कायम करिगे अपनि समाज ।।

(पर)

हाल समाजिन को का कहिए, बातन छप्पर देहिं उड़ाय ।
पै दुई चारि जनेन को तजिकै, कुछ करतूत न देखी जाय ।।
सगे समाजिन ते नित ऐंठे, राँध परोसिन का धरि खायँ ।
मुख ते बेद-बेद गुहरावैं, लच्छन सबै कुलच्छन आयँ ।।
आँकु न जानैं संसकीरति को, लेइं न गायत्री को नाउँ ।
तिनका आरज कैसे कहिए, मैं तो हिन्दू कहत लजाउँ ।।

महर्षि के स्वर्गारोहण पर उनके उद्गार उनकी हार्दिक-वेदना का परिचय देते हैं :—

"गारी खाय अनादर सहि कै विद्या धर्म प्रचारे ।
ऐसो कोउ न दिखाय हाय, स्वामी स्वर्ग सिधारे ।।
कहँ लगि कोउ आँसुन को रोकै, कहँ लगि मन समुझावै ।
ऐसी कठिन पीर में कैसहू, धीरज हाथ न आवै ।।

2 नवम्बर, 1883 को कानपुर के स्टेशन थियेटर में कर्नल आलकाट का भाषण हुआ । उसी वर्ष के प्रारम्भ से इलबर्ट बिल सम्बन्धी वाद-विवाद ने भयंकर जातिगत-विद्वेष की अग्नि देश-भर में फैला दी । पं० प्रतापनारायण ने उस पर जोरदार लेख लिखे । 6 जनवरी, 1885 को 'ब्राह्मण' के इष्टदेव प्रेम-मार्ग के महर्षि भारतभूषण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का देहान्त हुआ । मिश्र जी एक प्रकार से अनाथ हो गये । 'ब्राह्मण' में फरवरी, 1885 के अंक से सन् ईसवी के स्थान में हरिश्चन्द्राब्द छपने लगा । उसी वर्ष के अन्त में बम्बई में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ । उसका मिश्र जी ने सोत्साह स्वागत किया । अगले वर्षों के कलकत्ता, मद्रास और इलाहाबाद के अधिवेशनों पर 'ब्राह्मण' में उत्तम लेख हैं । मिश्र जी भी इनमें सम्मिलित हुए । जब सन् 1888 में इंगलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और विवेकवादी विद्वान चार्ल्स ब्राडला का भारत में पदार्पण हुआ, तो मिश्र जी ने 'ब्राडला-स्वागत' नामक कविता प्रकाशित की, जिसे फ्रेडरिक पिनकाट ने अंग्रेजी में अनूदित कर इंगलैण्ड में प्रकाशित कराया । सन् 1891 में ब्राडला के निधन पर मिश्र जी ने कविता द्वारा शोकाश्रु बहाये । उस युग की समस्त राष्ट्रीय महत्त्व की घटनाओं पर 'ब्राह्मण' में लेख अथवा कवितायें प्रकाशित हुईं । प्रायः सभी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा राजनीतिक प्रश्नों पर मिश्र जी ने स्वच्छन्दता, निर्भीकता एवं विवेकपूर्णता के साथ विचार प्रदर्शित किये । आर्यसमाज, गोरक्षा, हिन्दी-उर्दू-विवाद, विद्या-प्रसार, विधवा-विवाह, स्वदेशी उद्योग-धन्धों की उन्नति, जातिगत विद्वेष, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, भारत धर्म महामण्डल की स्थापना आदि सभी विषयों पर 'ब्राह्मण' के कालम भरे पड़े हैं । शीर्षक कोई भी हो, देखने में आकर्षक अथवा अनाकर्षक, निबन्ध के अन्तर्गत मिश्र जी अपने अभीष्ट स्थान पर उसी प्रकार बार-बार लौट आते हैं, जैसे मधुमक्खी चारों ओर मधु एकत्र कर अपने छत्ते में । उदीयमान भारतीय राष्ट्रवाद की जैसी सुन्दर और सच्ची झाँकी 'ब्राह्मण' के पृष्ठों में मिलेगी, वैसी शायद अन्यत्र नहीं । जुलाई 1889 से जून 90 तक मिश्र जी राजा रामपालसिंह के हिन्दी दैनिक 'हिन्दोस्थान' के सहकारी सम्पादक के रूप में कालाकाँकर में रहे । उस समय उसके प्रधान सम्पादक पं० मदनमोहन मालवीय थे । सम्पादक-मंडली में शशिभूषण

चटर्जी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त (1865-1907), श्री बचनेश जी (जन्म 1874), श्री गोपालराम गहमरी आदि थे। गुप्त जी ने अपने एक निबन्ध में इसका विस्तृत वर्णन किया है। मिश्र जी से गुप्त जी ने हिन्दी के गद्य-पद्य-लेखन और सम्पादन-कला की दीक्षा ली। पूरे एक वर्ष कालाकाँकर में प्रवासित रहकर मिश्र जी ने 'ब्राह्मण' का सम्पादन भी वहीं से किया। कालाकाँकर में किस प्रकार मिश्र जी ने अकस्मात् पद-त्याग दिया, इसकी कथा गहमरी जी तथा बचनेश जी ने लिखी हैं। बचनेश जी ने 1 अक्टूबर, 1956 के "रामराज्य" में लिखा है—"मैं राजा रामपालसिंह को उनकी कविता के संशोधन और छन्दशास्त्र की शिक्षा देने के लिए नियुक्त हुआ था। मुझसे पहले इसी काम पर मिश्र जी नियुक्त थे। एक बार वह राजा साहब की कविता में कुछ संशोधन कर रहे थे। राजा साहब उसे मान नहीं रहे थे। इस पर खिन्न होकर मिश्र जी ने कहा कि 'पहले आप इस शराब के प्याले को हाथ से अलग कीजिए, तब आपकी समझ में आवेगा।' राजा साहब ने कहा 'आप हमारा अपमान करते हैं, जानते हैं मैं कौन हूँ ?' यह सुनते ही उसी समय कवि जी ने इस्तीफा लिखकर मेज पर रख दिया और घर का रास्ता लिया।" इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें आत्माभिमान की मात्रा कितनी अधिक थी।

सन् 1883 और 92 के बीच के युग का अर्थात् इलवर्ट बिल के पेश होने और सन् 92 के लार्ड क्रास के इंडियन कौंसिल ऐक्ट के बीच का काल भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रथम चरण है। सन् 1891 के सहवास बिल से राष्ट्रीयता में उस कटुता और उग्रता के दर्शन होने लगे थे, जिसका निरूपण आगे आने वाले युग में लोकमान्य तिलक ने किया। तिलक का जन्म भी 1856 में ही हुआ था। 'ब्राह्मण' पर भी भारतीय राष्ट्रवाद के इस अग्रिम अध्याय की स्पष्ट झलक विद्यमान है।

कानपुर का जनरव

कानपुर नगर की पूरी चहल-पहल का चित्र भी 'ब्राह्मण' के प्रत्येक अंक की सामग्री में मिलता है। यहाँ के आर्य-समाजियों और सनातन-धर्मियों के शास्त्रार्थ, मन्दिरों के ट्रस्टियों की अन्धेर, कट्टरपन्थियों की धर्मान्धता और अनुदारता, ईसाई पादरियों के धर्म-प्रचार की उग्रता, गोरक्षिणी सभा की स्थापना का निष्फल प्रयास, मनोरंजक दंगल और नाटक, ख्याल तथा अन्य लोकगीतों की धूम, वेश्याओं के नाच, अमीरों के दुर्व्यसन व दुराचार, घी में मिलावट, विलायती चीनी, नवयुवकों की उच्छृंखलता, नये फैशन का समाज पर आक्रमण, खान-पान में ढिलाई का प्रारम्भ, सभा-संगठन और उसका अनिवार्य सहचर चन्दा—आदि-आदि प्रायः सभी की 'ब्राह्मण' में चर्चा है। कानपुर अपने नवयुग पर पदार्पण कर रहा था। 'ब्राह्मण' के कालमों में तत्कालीन कानपुर के सजग जन-रव का सजीव चित्र दृष्टिगत होता है। अपने कानपुर को भी मिश्र जी ने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया। उसका विशद वर्णन कानपुर-माहात्म्य नामक आल्हा में है। अपने जीवन के अधिकांश वर्ष मिश्र जी ने कानपुर में ही व्यतीत किये। रुग्ण रहते हुए भी वे मौजी बने रहे और साहित्य-सेवा ही उनका व्यसन रहा। "ब्राह्मण" के प्रकाशन का भार "खड्ग विलास प्रेस" को सुपुर्द करने के बाद मिश्र जी ने जो पत्र बाबू बालमुकुन्द गुप्त को 5 जनवरी, 1892 को लिखा था उसमें वे कहते हैं :—

"ब्राह्मण" स्वर्ग तो नहीं गया, पर बाँकीपुर खड्ग विलास प्रेस चला गया। यह उसका सौभाग्य है। एडीटर हमीं हैं, पर और सब झंझट से पाक।...अवकाश दिन रात है, गुजारे का बन्दोबस्त पिता जी खुद ही कर गये हैं, ऊपर से दो घण्टे मात्र मिहनत पर एक अंग्रेज बहादुर पन्द्रह रुपया महीना देते

हैं—निदान सब मजा है, केवल शरीर गड़बड़ रहता है । सो उसका नाम ही शरीर (फारसी वाला) है, किन्तु डाक्टर भोलानाथ की जै हो । उनकी दया से उसकी भी शरारत दबी रहती है ।···हम तो 'ब्राह्मण' सम्पादन, बंगभाषा पुस्तकानुवाद तथा कविता की मौज में रहते हैं । यदि दुनिया के झमेलों ने सताया, इकतारा ले बैठे । उसमें भी जी न जमा तो एक माहरू भी है, बस ! इधर कई किताबों का अनुवाद भी कर डाला है, छप रही हैं । देवी चौधरानी का अनुवाद इन दिनों कर रहा हूँ । अच्छा नावेल है ।"

व्यक्तित्व की झाँकी

'ब्राह्मण' के किसी अंक को पढ़िए, पं० प्रतापनारायण के युग के कानपुर और देश का चित्र तो मिलेगा ही । किन्तु जो बात उससे अधिक महत्त्वपूर्ण मिलेगी, वह है मिश्र जी के विचित्र व्यक्तित्व की झाँकी । उनकी भाषा में निस्संदेह ग्रामीणता की झलक है, जिसकी विवेचना ऊपर की जा चुकी है, और उसमें स्वाभाविक चुलबुलापन, अल्हड़पन अथवा फक्कड़पन है । पर उसमें विद्या की सी तरलता, शीतलता और निर्मलता भी है । वह इठलाती तो है, पर कभी इतराती नहीं । उसमें लोच है और सरसता है । उनकी वाणी सरवर भी है और सुकोमल भी । उनकी वाग्धारा में विचारशीलता की गहराई है, पर उसका अवगाहन सुखकर और आनन्दप्रद है । उससे हास्य के सुन्दर शीतल फुहारे छूटते हैं, उससे व्यंग्य के वाण निकलते हैं, किन्तु इनमें चोट करने की भावना नहीं है तथा व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा की कामना भी नहीं है । मिश्र जी "सरल सुभाव छुओ छल नाहीं" की साक्षात मूर्ति थे । कपट और वाक्छल उनके पास नहीं फटक पाये । गुप्त जी का कथन है कि "वह बातें करते-करते कविता करते थे, चलते-चलते गीत बना डालते थे । सीधी-सीधी बातों में दिल्लगी पैदा कर देते थे···उतने गुणों से युक्त और हिन्दी साहित्य-सेवी देखने में नहीं आया । हमने उनके मुँह से उनके लड़कपन की कितनी ही बातें सुनी हैं । सुनकर बड़ी हँसी आती थी; बड़ा आनन्द आता था । उनके कहने का ढंग बड़ा बाँका था । बात करते समय सबका ध्यान अपनी ओर खींच लेने की शक्ति उनमें विलक्षण थी···दूसरे वे मन के बड़े साफ थे । अपने किसी दोष को छिपाना भी दोष समझते थे । सच कह डालते थे ।" वे सुधारक होते हुए भी क्रान्तिकारी थे । आस्तिक सनातनी होते हुए भी धर्मान्धिता से कोसों दूर । धर्मभीरु हिन्दू होते हुए भी मुसलमानों, ईसाइयों आदि के गुणों के सच्चे शुभैषी और प्रशंसक थे । "प्रताप झगड़ा, मतवाद, परनिन्दा और द्वेष बढ़ाने के लिए किसी के साथ कभी नहीं हो सकता ।···उसके हिसाब हिन्दू, जैन, मुसलमान, क्रिस्तान, नास्तिक सब आदरणीय हैं ।" एक अन्य स्थान में वे कहते हैं—"हम एक सच्चे दृढ़ नास्तिक की प्रतिष्ठा असंख्य कृत्रिम आस्तिकों से अधिक करते हैं ।" शायद यह लिखते समय उनके सामने चार्ल्स ब्राडला का आदर्श होगा । स्वामी दयानन्द के भक्त होते हुए भी वे आर्यसमाज की असहिष्णुता के विरोधी थे । मिश्र जी हिन्दी के जबर्दस्त हिमायती थे । पर उर्दू कविता के प्रेमी और रचयिता थे । उनकी लिखी हुई उर्दू व फारसी की अनेक गजलें, मरसिये और कसीदे हैं । "दीवाने-बरहमन" भी उन्होंने लिखा । संस्कृतज्ञ होते हुए भी वे लोकप्रिय सरल हिन्दी के संदेशवाहक थे । वे थे फक्कड़, पर सहज शिष्टता और सदाचार के पक्षपाती । उनके हृदय में ज्वलन्त देश-प्रेम था और कांग्रेस के प्रति पूर्ण आस्था थी ।

वे उस युग में भी ब्रिटिश शासन के उग्र आलोचक थे । फिर भी उनमें ब्रिटिश रानी विक्टोरिया के प्रति श्रद्धा एवं आदरभाव थे । किन्तु 'जी हुजूरी' से वे कोसों दूर थे । वे हिन्दू जाति प्रथा के हिमायती

थे किन्तु जातियों के विशिष्ट दुर्गुणों के विदूषक थे । कनौजियों को खरी-खोटी सुनाने वाला उनसे बढ़कर और शायद कोई नहीं हुआ । पर क्षत्रिय, खत्री, मारवाड़ी, कायस्थ, बनिया, कलवार आदि को भी वे प्रेम की गाली सुनाने में नहीं चूकते थे । प्राचीनता और नवीनता का उनमें सुन्दर सामन्जस्य था । चारों ओर व्याप्त अनैतिकता के वे घोर विरोधी थे । 420-पन, स्वार्थपरता, भौतिकवाद और भ्रष्टाचार की उन्होंने बार-बार भर्त्सना की है । वे नवीन शिक्षा के पक्षपाती होते हुए भी, प्राचीन समीचीन परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने के उत्सुक थे । रुग्ण होते हुए भी मल्लविद्या से उन्हें विशेष प्रेम था और आत्मबल एवं निर्भीकता की मात्रा उनमें उच्चकोटि की थी । वे नाटक के उत्कृष्ट प्रेमी और सफल अभिनेता थे । पर उनकी चलाई हुई नाटक-परम्परा कानपुर में लुप्त हो गई । यह कानपुर के लिए कलंक की बात है, आधुनिक हिन्दी के निर्माताओं में उनकी गणना होती है । यह उचित ही है । पर वे आधुनिक युग के निर्माताओं में भी हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं । अपने अल्पकालीन समुज्ज्वल जीवन में पं० प्रतापनारायण मिश्र ने अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व कर राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्र को उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर किया । श्री बालमुकुन्द गुप्त के शब्दों में—

"हिन्दी-साहित्य के आकाश में हरिश्चन्द्र के उदय होने के थोड़े ही दिन पश्चात् एक ऐसा चमकता हुआ तारा उदय हुआ था, जिसकी चमक-दमक देखकर लोग उसे दूसरा चन्द्र कहने लगे थे । उस चन्द्र के अस्त हो जाने के पश्चात् इस तारे की ज्योति और बढ़ी । बड़े हर्ष के साथ कितनों ही के मुख से यह धवनि निकलने लगी कि यही उस चन्द्र की जगह लेगा । पर दुःख की बात है कि वैसा होने से पहले ही कुछ दिन बाद वह उज्ज्वल नक्षत्र भी अस्त हो गया ।"

बेन जान्सन की अमर पंक्तियों के अनुसार—

"In small proportion we just beauty see.
And in short measure life may perfect be."

12 वर्षों के अत्यल्प साहित्यिक जीवन में ही प्रतापनारायण मिश्र ने अपनी दिव्य-ज्योति से हिन्दी जगत को आलोकित कर उसको गौरवान्वित किया । आधुनिक कानपुर के निर्माता पथ-प्रदर्शक के रूप में हम उनका नाम गर्व से लेते हैं । 'ब्राह्मण' के जीर्ण-शीर्ण पृष्ठों के रूप में वे हमारे लिए अपनी अमूल्य निधि छोड़ गये हैं, जिसका इतिहास के विद्यार्थियों के लिए विशेष महत्त्व है । उनके जन्म के पूरे सौ वर्ष उपरान्त आज भी उनकी उत्कृष्ट साहित्य-साधना तथा उनके अनुपम व्यक्तित्व के प्रति कृतज्ञता-पूर्वक पुष्पांजलि अर्पित करने में हम अपने को धन्य मानते हैं ।

—'रामराज्य' साप्ताहिक (सम्पादक—श्री रामनाथ गुप्त व श्री नरेशचन्द्र चतुर्वेदी) के 1 अक्टूबर, 12 नवम्बर, 26 नवम्बर व 3 दिसम्बर, 1956 के अंकों से साभार ।

ब्राह्मण : काव्य साधना

आचार्य डॉ० मुंशीराम शर्मा 'सोम' डी०लिट०

स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्र कानपुर ही नहीं, युक्त प्रान्त की विभूति थे । उनके व्यक्तित्व में एक अद्‌भुत आकर्षण था । वे आकर्षित होते भी थे और आकर्षित करते भी थे । जहाँ उन्हें कोई सत् अंश दिखलाई दे जाता, उसकी ओर वे स्वाभाविक रूप से आकर्षित हो उठते थे । धर्म-सुधार, समाज-सुधार देश-सुधार आदि से सम्बन्ध रखने वाली पूत भावनायें, व्यक्तित्व अथवा संस्थायें उन्हें विशेष रूप से आकर्षित करती थीं । उन्हीं के वैयक्तिक प्रभाव से कानपुर-रसिक-समाज उन दिनों साहित्यिक गोष्ठियों का केन्द्र बन गया था । जो उनके सम्पर्क में आता वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रहता ।

भारतेन्दु जी की हिन्दी के प्रति अनन्य निष्ठा देखकर वे उनके परम प्रशंसक बन गये थे । उनकी परलोक-प्रयाण-वेला पर मिश्र जी के हृदय से जो शोकोद्‌गार निकले वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं । मिश्र जी को जब-जब भारतेन्दु जी की याद आती, उनकी आँखें सजल हो उठतीं और भावावेश में आकर वे अपने उद्‌गार कविताबद्ध कर देते । नीचे के छन्द से उनकी भावनाओं का कुछ परिचय अवश्य हो जायेगा :—

कौन के भरोसे पै चलेंगे समाचार पत्र ।
कविता बिचारी हा ! सुहाग कहाँ पावैगी ?
कासिकादि रसिक-समाजन में पुनि पुनि
रसना रसीली काकी रस बरसावैगी ?
तेरे मुखचन्द्र की चकोरी हरिचन्द्र प्यारे,
कौन के सहारे दुखी जीवन बितावैगी ?
साजि के सिंगार दरबार में प्रविशि लाय,
कौन के सुफल हिन्दी नागरी कहावैगी ?

('ब्राह्मण'—अप्रैल, 1892 ई०)

मिश्र जी ने बहुत लिखा । 'ब्राह्मण' पत्र का वे सम्पादन करते ही थे, साथ ही गद्य भी उच्चकोटि का लिखते थे । पद-रचना में तो वे जन्मजात कवि ही प्रतीत होते थे । जिस प्रकार का मस्तानापन, कल्पना-प्रवणता, सजीवता तथा भावुकता एक कवि में होनी चाहिए, वैसी सबकी सब प्रभूत मात्रा में स्वर्गीय मिश्र जी के अन्दर विद्यमान थी । वे गुणी और गुण-ग्राहक दोनों ही थे ।

खड़ी बोली का वह प्रारम्भिक युग कैसे हँसते-खेलते रूप में आविर्भूत हुआ और स्वर्गीय मिश्र जी ने अपनी विनोद-प्रियता, व्यंग्यपूर्ण वक्रता, लौकोक्ति निबन्धता तथा भाव-प्रवणता द्वारा उसे किस प्रकार

आगे बढ़ाया, इसे हिन्दी-साहित्य का अध्येता भली-भाँति जानता है। उस युग का साहित्यिक हिन्दी, फारसी, बँगला, अंग्रेजी आदि कई भाषाओं का ज्ञान रखता था। वह नवीन और प्राचीन का संधि-युग था। उसमें प्राचीन रूढ़ियाँ त्याज्य समझी जाने लगी थीं और नवीन भावनाओं के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो रहा था। पं० प्रतापनारायण मिश्र प्राचीन और नवीन दोनों को साथ लेकर चले।

प्राचीनता के क्षेत्र में जहाँ वे देवी की आराधना करते हुए यह पद लिखते थे :—

जय-जय त्रिभवन महरानी।
विवुध-वृन्द-पूजित पद पंकज नेहमयी जननी जगजानी।

('ब्राह्मण'—15 नव०, 1887 ई०)

वहाँ नवीनता के क्षेत्र में कांग्रेस की जयजयकार करते हुये वे यह भी लिखते थे :—

जय जय राज प्रबन्ध शोधन हेतु वरु वपु धारिनी।
जय जयति भारत की प्रजा उर एकता संचारिनी॥
जय जयति सागर पार लों निज रूप गुन विस्तारिनी।
जय जयति भगवति कांग्रेस असेस मंगलकारिनी॥

('ब्राह्मण'—15 फरवरी, 1891 ई०)

उन दिनों का कांग्रेस-भक्त अपनी पूत पद्धतियों से घृणा नहीं करता था। उसे अपने सम्वत के प्रति ममता थी, अपनी भाषा से अनुराग था, अपने प्राचीन वीर पुरुषों से श्रद्धा थी। इन सबको वह अपनी थाती समझता था, पर कुछ ऐसे भी परकीयता-प्रेमी थे, जो अपनी बातों से विरक्ति और विदेशी तत्त्वों में आसक्ति रखते थे। तभी तो 'नव संवत्सर' पर लिखते हुए मिश्र जी कहते हैं :—

उनहीं के नव वर्ष हर्ष में हमहुँ धाय मिलि जाहीं।
हमरो सम्बत कब आवत कब जात जानियत नाहीं॥

× × ×

पै जो हमरो सम्बत है, जेहि हमरे पुरिखन थाप्यो।
जेहि महँ सहजहि जगत रहत है, नव शोभा सुख व्याप्यो॥

('ब्राह्मण'—15 मार्च, 1890 ई०)

इसी प्रकार उर्दू के विदेशी ढंग को अनुभव करके वे कहने लगते थे :—

छोड़िहि उर्दू राक्षसी अब तो पिंड हमार।
दिन हिन्दी के फिरहिंगे भयो जु उचित विचार॥

('ब्राह्मण'—15 जनवरी, 1884 ई०)

पर शिक्षा कमीशन ने उर्दू की स्थापना कर ही दी तो वे कह उठे :—

धर्म गयो धन बल गयो, गई विद्या अरु मान।
रही सही भाषा हती, सोऊ चाहत जान॥

साँचेहु अरबी अरब की, फारसि फारस केर :
अंग्रेजी इङ्गलैंड की, यामे हेर न फेर ॥
आर्य देश की नागरी, सब गुणागरी आय।
यामें कछु सन्देह नहिं, पै न सुनत कोउ हाय ॥

('ब्राह्मण'–15 जनवरी, 1884 ई०)

प्राचीनता के प्रेमी होते हुए भी मिश्र जी नवीनता से नाक-भौं सिकोड़ने वाले नहीं थे। स्त्री-शिक्षा, अछूतोद्धार, सामाजिक सुधार आदि विषयों पर उन्होंने अत्यन्त उदारता-पूर्वक अपनी लेखनी चलाई है। 'बेगारी विलाप' लिखते हुये वे कितनी सहृदयता से श्रमजीवी के जीवन का चित्र खींचते हैं :—

कहि न जाय कैसे कहें, कौन सुनै मम हाल।
दुखियन हीं को देत दुख, हाय दैव चण्डाल ॥
बोझ धरत खैंचत लढ़ा, बीतत दिन चहुँ याम।
मानुस ह्वै करनो परै, हमें बैल को काम ॥

('ब्राह्मण'–15 अप्रैल, 1883 ई०)

'ककाराष्टक' और 'तृप्यन्ताम' शीर्षक कविताओं में उन्होंने देश की सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था पर अपने उन्मुक्त विचार प्रकट किये हैं :—

कर के मिस दीन प्रजान कर, सब प्रकार सरबस हरन।
कलिराज कपट मय जयति जय, भारत कहँ गारत करन ॥
× × ×
का खा गा घा हू बिन पढ़े तिरवेदी पदवी-धरन।
कलहप्रिय जयति कनौजिया, भारत कहँ गारत करन ॥

('ककाराष्टक', ब्राह्मण–15 मई, 1888 ई०)

जब लगि हरि अवतार लेत नहिं, तब लग सुरकुल निबल निकाम।
तब लगि सुबरनपुर सुख सम्पति, तुम्हरे ही आधीन तमाम ॥
× × ×
तुम बूढ़े ह्वै गए कहा अब, चंगुल चोंच करैं नहिं काम।
नतु उन अहिन भखत नहिं काहे, जे अन्तरविष चिक्कन चाम[3] ॥

('तृप्यन्ताम', ब्राह्मण—अक्टूबर, 1890 ई०)

मिश्र जी उद्भट प्रेम-पुजारी थे। प्रेम का प्रभाव उनकी रग-रग में व्याप्त था। 'श्री प्रेमपुराण' लिखते हुए वह कहते हैं :—

अति दुर्लभहू सुलभतम, जेहि प्रभाव ते होय।
नौमि प्रेममय देवता, अकथ अनूपम दोय ॥

'लोकोक्ति शतक' में 'प्रेम' का परिचय उन्होंने इस प्रकार दिया है :—

भजहु प्रेममय देवता, तजहु शंक समुदाय ।
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।।
चारि वेद कर सार यह, सुनि राखहु सब कोय ।
ढाई अक्षर प्रेम के पढ़े सो पण्डित होय ।।

('ब्राह्मण'—15 सितम्बर, 1884 ई०)

प्रेम सिद्धान्त', 'प्रेम स्तोत्र' तथा 'प्रेम प्रमाद' में भी इसी प्रकार उन्होंने प्रेम की प्रशंसा की है । मिश्र जी कई भाषाओं पर आधिपत्य रखते थे । उन्होंने संस्कृत, फारसी, उर्दू, ब्रज, बैसवाड़ी आदि कई भाषाओं में कविता की है । कबीर आदि निर्गुणिये सन्त जिस प्रकार के वैराग्योत्पादक भजन बनाकर गाया करते थे, वैसे ही कुछ भजन मिश्र जी ने भी बनाये हैं । **'साधो मनुआ अजब दिवाना', 'जागो भाई जागो'** आदि भजन इसी प्रकार के हैं । 'बुढ़ापा' शीर्षक कविता बैसवाड़ी में लिखी गई है । 'कानपुर माहात्म्य' और 'दंगल खण्ड' उन्होंने आल्हा छन्द में लिखे हैं । 'लोकोक्ति शतक' में लोकोक्तियों का बहुत सुन्दर प्रयोग किया गया है । वैसे भी वे वैसवाड़े की ग्राम्य कहावतों और शब्दों का अपनी रचनाओं में बेधड़क प्रयोग किया करते थे और इसी कारण कभी-कभी उनकी रचनाओं में आधुनिक सभ्यता और शिष्टता का अभाव खटकने लगता है; पर मिश्र जी अपने विनोद की तरंग में इस अभाव की तनिक भी चिन्ता नहीं करते थे । पुराने ढंग की समस्या-पूर्ति और शृंगार रस की कविता वे बहुत अच्छी करते थे । 'पपिहा जब पूछि है, पीव कहाँ'—इस समस्या पूर्ति पर उन्होंने बहुत ही भाव-गर्भित छन्द लिखा है :—

बनि बैठी है मान की मूरति सी, मुख खोलत बोले न नाहीं न हाँ ।
तुमहीं मनुहारि कै हारि परे, सखियान की कौन चलाई तहाँ ।।
बरसा है 'प्रताप' जू धीर धरौ, अबलों मन को समझायो जहाँ ।
यह ब्यारि तबै बदलैगी कछू, 'पपिहा ? जब पूछिहै पीव कहाँ ।'

ऐसे प्रेमी भावुक, सजीव कवि की अमर रचनाओं को पढ़ने के लिए कौन प्रेमी पाठक लालायित न होगा ।

['प्रताप लहरी'—(प्रकाशित 1949 ई०) सम्पादक—श्रीनारायण प्रसाद अरोड़ा एवं श्री सत्यभक्त, की भूमिका से साभार उद्धृत ।]

बैजेगाँव
पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्मस्थान

बैसाख आधा बीत गया है । सड़क के किनारे पीपल के पेड़ों के पत्ते गहरी हरीतिमा धारण कर चुके हैं । पाकड़ के गुलाबी टूस कोमल-कोमल पत्तों का स्वरूप ले चुके हैं । आमों की डालियाँ आमियों के गुच्छों के कारण नीचे की ओर झुकी जा रही हैं । खलियानों में मड़नी शुरू हो गई है । उत्तर प्रदेश परिवहन निगम की खटारा बस भड़भड़ाती हुई उन्नाव-रायबरेली मार्ग पर रेंगती हुई चल रही है । सवारियों को चढ़ाते-उतारते, किराया वसूलते, टिकट न देते हुए, अपनी ऊपर की आमदनी पर मुसकाते, पान की पीक सड़क पर छोड़ते हुए कंडक्टर नोटें बार-बार गिन रहा है । 'आ गया बेथर—उतरिए ।' कई सवारियों के साथ मैं यहीं उतर पड़ता हूँ ।

यह बैजेगाँव, बेथर है । पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म इसी गाँव में 24 सितम्बर सन् 1856 ई० को हुआ था । कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का गढ़ है यह गाँव । मिश्रजी के पिता कानपुर में रहते थे । मिश्र जी भी कानपुर में पढ़ने लगे । पिता उन्हें ज्योतिषी बनाना चाहते थे । पर वे पिता की इच्छा न पूरी कर सके । वे कवि, नाटककार और निबन्धकार बने । भारतेन्दु युग के वे प्रभावान् नक्षत्र थे । कानपुर में रहते हुए वे अपने गाँव से अपना नाता बराबर बनाए रहे । 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका के खंड 5 में सन् 1888 ई० में उन्होंने 'प्रताप चरित्र' शीर्षक से अपनी आत्मकथा लिखना प्रारम्भ किया था । उसमें वे अपने गाँव और पूर्वजों के विषय में लिखते हैं :

"उन्नाव के जिले में पूर्व की ओर से पाँच कोस बैजेगाँव नाम का स्थान है, वहाँ के हम मिश्र हैं । यद्यपि अब बैजेगाँव एक साधारण-सा गाँव है, पर अनुमान होता है, किसी समय वह बड़ा दर्शनीय स्थान, विद्वानों का गाँव रहा होगा । उसके निकट वृहत्-स्थल (बेथर) और उससे कुछ ही दूर पर विग्रहपुर (बिगहपुर) गाँव है । इन विजयग्राम (बैजेगाँव), वृहत्-स्थल और विग्रह्पुर नामक गाँवों से प्रगट होता है कि इस प्रांत में किसी वीर पुरुष ने अपना पराक्रम दिखाया होगा । पर ये बातें अभी तो अनुमान मात्र हैं । कोई भाई पुष्ट प्रमाण सहित लिखे तो बड़ा उपकार होगा ।

हमारी कुलदेवी गार्गी, कुलदेवता बूढ़े बाबा, कुलपुरोहित सत्य शुक्ल, यजुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद, शिव इष्ट देवता हैं । हमारे पिता श्री संकटाप्रसाद मिश्र, पितामह श्री रामदयाल मिश्र, प्रपितामह श्री सेवकनाथ मिश्र, वृद्ध पितामह श्री सबसुख मिश्र हैं । इनके आगे कौन महात्मा थे, यह नहीं मालूम । हम समझते हैं कि बहुत ही कम लोग होंगे जो वृद्ध पितामह के पितामह का नाम जानते होंगे । फिर हमारा ही क्या दोष है, जो न लिख सके ।"

मैं श्री सबसुख मिश्र के वंशजों के गाँव, बैजेगाँव की सड़क पर खड़ा हूँ । दो-चार छोटी-छोटी मिठाई की दुकानें, चाय और पान की गुमटियाँ—उन पर हाहा-हूहू करते, चाँदी की मूठ वाली तेलवाई

झखरा की लाठियाँ लिए कुछ लोग चाय पी रहे हैं और पान खा रहे हैं । दुकान के मटमैले शीशे में चेहरा देख-देख मुस्करा रहे हैं और मूछों पर हाथ फेर रहे हैं । कुछ दूर पर दो-तीन लोग कन्धे पर दोनली बंदूक लटकाए बतिया रहे हैं । यहाँ के सामाजिक वातावरण से अपरिचित व्यक्ति तो यह सब देखकर भयभीत ही हो जाए । पर अपना बचपना यहाँ से चार कोस की दूरी पर ही तो बीता है । सब राव-चाव, घाट-पानी जानता हूँ ।

मैं सड़क से उतरकर घुर्री-घुर्री थोड़ी दूर चलता हूँ । एक लम्बा-चौड़ा परिसर, पीछे बहुत बड़े आँगन वाली बैठक, वहीं बैठे हैं श्री हरिसहाय मिश्र । कोई चालीस के आसपास उम्र होगी । पैंट-कमीज पहने, सुशिक्षित और संभ्रात । श्री हरिसहाय मिश्र के गाँव का नाम है मदन । बैसवाड़ा तथा उसके आसपास के गाँवों में कान्यकुब्जों में प्रायः सबके दो नाम होते हैं । एक गाँव-घर का पुकारने का नाम और दूसरा स्कूल वाला, खसरा-खतैनी में दर्ज होने वाला नाम ।

मदन एक काठ की कुर्सी पर आसीन हैं । तीन-चार लोग अगल-बगल में हैं । मैं पं० प्रतापनारायण मिश्र के विषय में उनसे जानकारी लेता हूँ । वह धीरे-धीरे बताते हैं—

"हम लोग पं० प्रतापनारायण मिश्र के वंशज हैं । उनके निधन को 98 वर्ष हो गए पर यदा-कदा उनके जन्मस्थान को देखने बाहर से साहित्यकार-पत्रकार हमारे गाँव आया करते हैं । उनकी स्मृति को बनाए रखने के लिए गाँव के लोगों ने 'पं० प्रतापनारायण मिश्र स्मारक ट्रस्ट समिति' बनाई है । इस समिति के अध्यक्ष पं० शंकर प्रसाद शुक्ल हैं और मंत्री श्री शिवसहाय मिश्र । हम लोग इस समिति द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रथम राष्ट्रकवि, ब्राह्मण-पत्र के सम्पादक अमर साहित्यकार पं० प्रतापनारायण मिश्र की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के प्रयास में रत हैं ।"

अब हम बैठक के भीतर जाते हैं । एक दालान में दो सोफे पड़े हैं । कई कुर्सियाँ, मेजें, स्टूल आदि रखे हैं । बगल में कई पैरा के बेड़रा पड़े हैं । सामने की दालान में पूजाघर है । एक लम्बे साफ-सुथरे कमरेनुमा बरोठे में एक मोटे गुलगुल गद्दे पर पं० रामकुमार मिश्र विराजमान हैं । ये हनुमान जी के उपासक हैं । शुक्ल जी के चेहरे पर लम्बी श्वेत दाढ़ी फब रही है । माथे पर चंदन लगा हुआ है । शीस की तरफ हनुमान जी का चित्रा टँगा है । दूध और मिठाई के प्रेमी पं० रामकुमार जी अन्न बहुत कम लेते हैं । उनसे मैं बात शुरू करता हूँ पर वे कहते हैं— 'पहिले भाई, पेड़ा खाव ।' मैं उनका प्रसाद ग्रहण करता हूँ । वे बताते हैं :

"पं० प्रतापनारायण मिश्र हमरे खानदान के रहैं । बचपने माँ उनकी कविता बहुत यादि करित रही । हम उनका नहीं दीख । उई अँगरेजी राजिके खिलाफ रहैं । अँगरेजन के खिलाफ तमाम कविता लिखेनि है उइ । अब उमरि ज्यादा होइ गई, कुछु यादि-वादी नहीं है । उइ तौ लावनी गावत रहैं । उनकी लावनी हम पंच गाइत रहै । अब कुछु खयाल नहीं । दिमाकु अब फेल रहत है ।"

इसी बीच वे एक सेवक को रु० देकर रात के खाने के लिए पेड़े मँगवाते हैं । मैं उन्हें नमन कर मदन जी के साथ उस पावन स्थल विशेष को देखने चलता हूँ जहाँ पं० प्रतापनारायण मिश्र का जन्म हुआ था । यह क्या ? मदन जी के साथ एक लम्बे सज्जन राइफल लेकर चलते हैं । मैं चकित ! मदनजी बता रहे हैं—"हमारे गाँव में पुश्तैनी लागडाट चली आ रही है । आपस में रंजिश रहती है । मेरे पिता जी पं० लल्लन मिश्र का मर्डर सन् 1960 में हुआ था । थानेदार भी इस गाँव में आने में घबराता है । यहाँ आए दिन मर्डर हुआ करते हैं ।"

मैं सोचने लगता हूँ कि कितनी विसंगति है यहाँ ! एक ओर इस क्षेत्र में हिन्दी के प्रतिष्ठित विद्वानों ने जन्म लिया और दूसरी ओर यहाँ प्रायः हत्याएँ होती रहती हैं । निराला, सनेही, नन्ददुलारे वाजपेयी, बलदेव प्रसाद मिश्र और डॉ० रामविलास शर्मा के जन्म का गौरव इसी क्षेत्र को प्राप्त है और यहीं का अचलगंज थाना हत्याओं के कारण समाचार पत्रों की सुर्खियों में रहता है ।"

आखिर ऐसा क्यों है ? आन-बान-शान के कारण ? पर ठीक-ठीक कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता । यह अध्ययन कोई समाजशास्त्री ही कर सकता है । मैं तो मात्र साहित्य का विद्यार्थी हूँ ।

अब मैं उस स्थान विशेष पर आ जाता हूँ जहाँ पं० प्रतापनारायण का जन्म हुआ था । इस चौरस स्थान पर कई जगह पुरानी लखौरी ईंटें नींव में दिखाई दे रही हैं । एक पत्थर लगा है, जिस पर 'पं० प्रतापनारायण स्मारक' लिखा है । बगल में 'प्रताप-क्रीड़ा केंद्र' का मैदान है । मैदान के बीचोबीच एक मलखम्भ खड़ा किया गया है । सायँकाल गाँव के बच्चे यहीं खेलते हैं । इसी स्थल पर उन्नाव शहर में स्नातक कक्षा में पढ़ने वाले दो छात्रों से भेंट होती है । मैं उनसे प्रतापनारायण के बारे में पूछता हूँ तो एक लड़का तो तड़ाक से कहता है– 'मैंने हिन्दी नहीं ली है ।' इतना कहकर वह अपनी साफ बचत पर प्रसन्न है पर दूसरे लड़के में साहित्य के प्रति रुचि है । वह कहता है– 'मिश्रजी प्रथम राष्ट्रीय-काव्य के रचनाकार हैं । उनका राष्ट्रीय गीत मैंने कक्षा चार में याद किया था । सुनाता हूँ । यह कहते-कहते वह गीत सुनाने लगता है :

> जय जय जगत शिरोमनि भारत ।
> निज गौरव हित जासु बदन विधु, सब संसार निहारत ।।
> बुधि विद्या वीरता बड़ाई, जासों रहहिं सदा रत ।

अब मैं गाँव के प्रतिष्ठित डाक्टर श्री काली प्रसाद शुक्ल के पास पहुँचता हूँ । पक्की ईंटों का सुन्दर मकान है, चूने की सफेदी चमक रही है । एक टीन के बोर्ड पर लिखा है– 'पं० प्रतापनारायण मिश्र स्मारक पुस्तकालय एवं वाचनालय' । कमरे के अंदर प्रवेश करता हूँ—आधे हिस्से में शुक्ल जी का क्लीनिक है और आधे में पुस्तकालय । कई आल्मारियाँ रखी हैं । उनमें तरतीब से पुस्तकें सजी हैं । बकौल शुक्ल जी, पुस्तकालय में दो हजार पुस्तकें हैं । पं० प्रतापनारायण द्वारा रचित पूरा साहित्य वहाँ सुरक्षित है ।

पुस्तकालय भवन के लिए शासन से तीस हजार रु० मिले थे । सड़क के किनारे भवन भी बन गया है । अब पुस्तकालय उसी भवन में जाएगा । पं० प्रतापनारायण मिश्र स्मारक के लिए चकबंदी में 402 नं० की जमीन रकबा 15 बिस्वा छोड़ी गई है । इसी से सटी हुई 15 बिस्वा जमीन खेल के मैदान के लिए भी छोड़ी गई है ।

मैं गाँव की अड्डम-डोड्डम गलियों में घूमता, कहीं उखड़े हुए खड़ंजे से अभिटता, कहीं नाबदानों के गंदे अशुद्ध जल से बचता चल रहा हूँ । तभी एक घर के अंदर से ढोलक-मँजीरे के साथ एक लोकगीत के बोल सुनाई दे रहे हैं–

> आजु जसुदा के लाल होई हैं ।
> आसू जो अई हैं, अरुआ चढ़इहैं,
> आजु मोतियन के नेग होइ हैं ।।

ननदी जो आई हैं, अँखिया रँजिहैं,
आजु तिलरिन के नेग होई हैं !!

गीत के सुरीले स्वरों के साथ-साथ घुँघरू भी छम-छम छमाछम बोल रहे हैं। नाच भी हो रहा है। प्रतीत होता है कि इस गाँव में लोक-संस्कृति जीवित है।

बेथर गाँव की जनसंख्या सात हजार के आसपास है। लोगों का मुख्य पेशा खेती है। गाँव के बहुत से लोग कानपुर शहर की मिलों, कारखानों, दुकानों और दफ्तरों में काम करते हैं। यहाँ जूनियर हाईस्कूल तक ही शिक्षा की व्यवस्था है। हाईस्कूल की शिक्षा के लिए अचलगंज जाना पड़ता है। गाँव में एक विशाल अधबना महल है। इसका निर्माण पं० शंभूरत्न मिश्र ने करवाया था। अब इस महल में एक 'आदर्श बाल विद्या मंदिर' चल रहा है। गाँव में एक राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय भी है। पर लोगों का कहना है कि यहाँ दवाओं का हमेशा टोटा बना रहा है। गाँव में जल की व्यवस्था की गई है। एक बड़ी-सी टंकी से जल-सप्लाई होती है। लोगों के घरों में बल्ब लगे हैं पर बिजली यदा-कदा ही आती है।

मैं गाँव के मध्य भाग में एक नीम के पेड़ की छाया में खड़ा हूँ। अँगौछों से पसीना पोंछते हुए बेथर के एक अध्यापक उधर से आ रहे हैं। वे भी नीम की छाया में ठिठुक जाते हैं। कुर्ते की जेब से चुनौटी निकालते हैं। एक ढकनी खोलकर थोड़ी सी तम्बाकू गदोरी पर धरते हैं। चुनौटी की दूसरी ढकनी खोलकर नाखून की सहायता से चूना खोदकर तम्बाकू में मिलाते है। अँगूठे से खूब रगड़-रगड़कर दो-चार फटकी देते हैं और मेरी ओर बढ़ा देते हैं। मैं लेने से इन्कार करता हूँ। वे हँसकर कहते हैं—'भैया, यह तमाखू चैतन्य चूरन है। ओंठ पर थोड़ी-सी धर लो, बड़ी ताजगी आ जाती है।'

पं० प्रतापनारायण के विषय में वे ठेठ बैसवाड़ी में बताते हैं—'हमारे बाबा परताप नारायन का नीकी तना देखिनि रहै। लरिकई म उइ बतावा करत रहैं कि परताप बाबा बड़े परताबी जीव रहैं। और द्याखौ भइय्या परताबी न होतीं तौ बी०ए०, एम०ए० तक के दर्जन में पढ़ाए जातीं। उनके निबंध पढ़त-पढ़त हँसी के मारे पेटे म बल पड़ि जात हैं। उन कै बुढ़ापा वाली कविता तौ गाँव म सबका यादि हवै। यह कहकर वे टहंकारे स्वर में कविता सुनाने लगते हैं :

हाए बुढ़ापा, तोरे मारे, अब तो हम नकुन्याय गएन।
करत धरत कुछ बनतै नाहीं, कहाँ जान औ कइस करन।
अस कुछु उतरि जात है जीते, बाजी बेरिया बाजी बात।
कइस्यौ सुधि ही नाहीं आवत, मूँड़ी काहे न दै मारन।
कहा चहौं कुछु, निकरत कुछु है, जीभ राँड का है यहु हाल।
दाढ़ी नाक याक मा मिलि गए, बिनु दाँतन मुँहु अस पोपलान।
दाढ़िहि तक बहि-बहि आवति है, कबौं तमाखू जो फकान।
बार पाकि गे, रीरौ झुकि गै, मूड़ौ हालत लाग।
हाथ पॉय कुछु रहे न आपन, केहिके आगे दुखु र्वावन।
यही लगुठिया के बूते अब, जस-तस डोलित-डालित है॥

इसी बीच नीम के नीचे और कई सुशिक्षित सज्जन आ जाते हैं। सभी लोग मिश्र जी के साहित्य के विषय में थोड़ी-थोड़ी जानकारी रखते हैं। एक सज्जन टेरीकाट की लकालक धोती-कुर्ता पहने, सोने के बटन लगाए, कान में फुलेहरी खोंसे विशेष जानकारी दे रहे हैं—'पं० प्रतापनारायण जी नाटक खेलने में विशेष रुचि लेते थे। एक बार उन्होंने 'उर्दू बीबी' का पार्ट लिया। उस समय, बताते हैं, वे बिलकुल मुसलमान वेश्या के वेश में थे। दर्शकों में, आगे की पंक्ति में एक प्रसिद्ध वेश्या भी बैठी थी। उससे मिश्र जी ने झुककर—'बुआ सलाम' कहा। उसने उत्तर में कहा—'जीती रहौ बेटी।' वास्तव में मिश्रजी बड़े दिल्लगीबाज थे।

एक अन्य सज्जन जो कपड़े की दुकान करते हैं, पर साहित्य प्रेमी हैं, कहते हैं—'मिश्रजी की कविता अगर पढ़ना है तो 'मन की लहर' पढ़िए। सचमुच मन लहरा उठता है। 'ब्राह्मण' पत्रिका में उन्होंने सैकड़ों कविताएँ लिखी हैं। मेरे पास काफी संग्रह हैं। अरे 'ब्राह्मण' के लिए उन्हें बहुत आर्थिक तंगी झेलनी पड़ी थी। ग्राहक मासिक चंदा नहीं भेजते थे। एक बार तो उन्होंने 'हरिगंगा' तर्ज पर एक कविता भी छापी थी। सुनिए :

आठ मास बीते जजमान, अब तौ करौ दक्षिणा दान ॥ हरिगंगा ॥
आज-काल्हि जौ रुपिया देव, मानो कोटि यज्ञ कइ लेव ॥ हरिगंगा ॥
माँगत हम का लागै लाज, पर रुपया बिन चलै न काज ॥ हरिगंगा ॥
तुम अधीन 'ब्राह्मण' के प्रान, ज्यादा कौन बकै जजमान ॥ हरिगंगा ॥
हँसी-खुशी से रुपिया देव, दूधु-पूतु सब हम ते लेव ॥ हरिगंगा ॥

पं० प्रतापनारायण के गाँव में उनका कोई स्मारक भले न हो, उनकी कोई प्रतिमा भले न लगी हो, उनके नाम पर कोई विद्यालय भले न बना हो पर जन-जन के कंठ में उनकी पंक्तियाँ जो बैठी हुई हैं उनके समक्ष सैकड़ों स्मारक धूल चाटें। जीवंतता इसी को तो कहते हैं कि लोक उनको अपनी छाती से चिपकाए है और चिपकाए रहेगा। उनके साहित्य के अवदान का स्मारक कालजयी है। उसे नष्ट करने की क्षमता किसमें है ?

अब मेरी भेंट होती है श्री लउआ नाई से। लहीमशहीम शरीर पर दोहरी धोती की लुंगी लगाए, लम्बा कुर्ता पहने एक बैसाखी के सहारे वे चल रहे हैं। एक पैर बेकार हो गया है। एक हाथ से बैसाखी पकड़े और दूसरे से बार-बार गलमुच्छें सँवारते हुए वे मेरे समीप ठिठक जाते हैं। अपने गाँव की दयनीय दशा पर वे बहुत दुःखी हैं। वे कहते हैं—"गाँव में है क्या, साहब ! अगर उन्नाव और कानपुर पास न हों तो लोग भूखों मर जाएँ। यहाँ न कोई कारखाना है और न कोई धंधा। खेती अब बहुत महँगी हो गई है। खाद और बीज के दाम आसमान छू रहे हैं। बस, कट रही है किसी तरह से।" वे और आगे कुछ बताना चाहते हैं पर मैं टोक देता हूँ—'प्रतापनारायण मिश्र के बारे में कुछ जानते हो ?'...'हाँ साहब'। कहकर वे कहते हैं—'वे हमारे गाँव के नामी-गरामी पुरिखा थे। उनकी टाँकी किताबें बड़ी मजेदार हैं। उनके लिखे फाग हमें याद हैं। देखिए सुनाता हूँ। सुनिए :

अब तो चेत करो रे भाई।
जब सबसु कढ़ि गयो हाथ ते तब न उचित हुरिहाई।

उपज घटै धरती को दिन-दिन नाज नितहि महँगाई ।
कहा खाए त्यौहार मनावैं भूखे लोग लुगाई ।
सब धन ढोयो जात बिलायत रह्यो दलिद्दर छाई ।
अन्न वस्त्र कहँ सब जन तरसैं होरी कहाँ सोहाई ।
वन कटि गए लकरिया महँगी तहूँ टिकस अधिकाई ।
जहँ ईंधन की आफत है तहँ सकै को ढेर लगाई ।

बैजेगाँव से दो-तीन कि०मी० पर रेलवे स्टेशन है । इस स्टेशन का नाम बंडहमीरपुर स्टेशन है । गाँव के लोगों की बहुत इच्छा है कि इस स्टेशन का नाम पं० प्रतापनारायण मिश्र के नाम पर हो जाए । स्मारक ट्रस्ट के मंत्री श्री शिव सहाय मिश्र ने काफी लिखा-पढ़ी की है, पर शासन के कान पर अभी जूँ नहीं रेंगी । बैजेगाँव का जन-जीवन दुखों से सराबोर है । कुहासे में डूबे इस गाँव के दिन कब बहुरेंगे ?

पं० प्रतापनारायण मिश्र

"प्रतापनारायण जी में विनोदप्रियता विशेष थी, इससे उनकी वाणी में व्यंग्यपूर्ण वक्रता की मात्रा प्रायः रहती है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

जीवन-परिचय

सम्पूर्ण हिन्दी-क्षेत्र में उन्नाव जनपद की माटी ने जितने अधिक विद्वानों को जन्म दिया है उतने अधिक विद्वान अन्य किसी भी जनपद में नहीं संभूत हुए। यशस्वी निबन्धकार पं० प्रतापनारायण मिश्र के जन्म का गौरव भी उन्नाव जनपद के बैजे गाँव को प्राप्त है। वहीं पर सन् 1856 ई० में आप एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। आपके पिता पं० संकटा प्रसाद मिश्र अपने समय के विख्यात ज्योतिषी थे। वे प्रायः कानपुर में रहा करते थे। उनके पास लोग दूर-दूर से सलाह लेने आया करते थे। उनका विचार था कि वे अपने पुत्र को भी सुयोग्य ज्योतिषी बनावेंगे। किन्तु प्रतापनारायण जी का मन ज्योतिष पढ़ने में बिल्कुल न लगता था। हार कर पिता जी ने उन्हें अंग्रेजी पढ़ानी चाही, पर वहाँ भी उन्हें निराश ही होना पड़ा।

पं० प्रतापनारायण धीरे-धीरे स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति हो गये और अपने मित्रों के बीच ढोल-मंजीरे के साथ 'लावनी' और 'आल्हा' गाया करते थे। गाने बजाने से इन्हें इतना प्रेम हो गया कि कई-कई दिन तक ये घर भी न जाते थे। इस बीच इनमें साहित्य के प्रति प्रेम जागृत हुआ और इन्होंने घर पर ही संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी और फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। मिश्र जी एक कट्टर ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे, किन्तु इनके अन्दर भेद-भाव और पाखंड बिल्कुल न था। इनके कई मित्र तो निम्न समाज के थे जिनके साथ उठने-बैठने में ये कोई भेद-भाव नहीं रखते थे।

मिश्र जी बड़े विनोदी स्वभाव के व्यक्ति थे। हँसी का ठहाका लगाने में वे बड़े प्रसिद्ध थे। मस्तानापन उनमें कूट-कूटकर भरा था। वे प्रायः गंगा स्नान करने जाते थे और नौका विहार करते थे। धीरे-धीरे उनकी साहित्यिक अभिरुचि अधिक बढ़ती गयी और उन्होंने 'ब्राह्मण' नामक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। यह पत्र चार वर्षों तक चलता रहा। इस पत्र में मिश्र जी के हास्य एवं विनोद प्रधान निबन्धों की पाठक बड़ी उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करते रहते थे। जीवन पर्यन्त हिन्दी की सेवा करते हुए आप सन् 1894 ई० में परलोक वासी हुए। हिन्दी का एक सितारा टूट गया।

रचनाएँ

कविता संग्रह—1. मन की लहर, 2. प्रताप लहरी, 3. संगीत शकुन्तला।

मौलिक रचनाएँ—1. काल प्रभाव, 2. हठी हमीर, 3. भारत दुर्दशा, 4. जुआरी-खुआरी,

5. गो संकट, 6. कलि कौतुक ।

अनूदित रचनाएँ—1. राजसिंह, 2. संगीत शकुन्तला ।

साहित्य-साधना

मिश्र जी भारतेन्दु युग के श्रेष्ठ निबन्धकार थे । उनके निबन्धों के चुटकुले और व्यंग्य पाठकों को बहुत भाते हैं । मिश्र जी के निबन्धों की सबसे बड़ी विशेषता है हास्य एवं व्यंग्य । वे अपने पाठकों को जी भरकर हँसाते हैं । पाठकों को क्षण भर के लिए ऐसा लगता है कि मानो लेखक उनके समक्ष बैठा बातें कर रहा है । उनके निबन्धों में किसी प्रकार की प्रस्तावना नहीं रहती । वे सीधे विषय का वर्णन करना प्रारम्भ कर देते हैं । उनके व्यंग्य में बैसवाड़ी कहावतों एवं उक्तियों की भरमार है । उनके निबन्ध पढ़ते समय जी नहीं ऊबता ।

1. सम्पादक का रूप— मिश्र जी एक सफल सम्पादक थे । 'ब्राह्मण' पत्र के लिए पाठकगण उस समय प्रतीक्षा किया करते थे । हिन्दी भाषा के प्रचार, प्रसार और विकास के लिए मिश्र जी ने बड़ा यत्न किया । 'ब्राह्मण' पत्र के अतिरिक्त आपने 'हिन्दी हिन्दुस्तान' पत्र का भी सम्पादन किया । आप अपने पत्र में नये लेखकों को बड़ा प्रोत्साहन देते रहते थे । वे नव लेखकों की रचनाओं में पर्याप्त संशोधन, परिवर्धन एवं परिवर्तन करके उनको छापते थे ।

2. निबन्धकार का रूप— मिश्र जी के निबन्धों में सुधारवादी तत्त्व अधिक हैं । उनके निबन्धों में जो व्यंग्य किये गये हैं वे सामाजिक कुरीतियों को हटाने के लिए किये गये हैं । उनके हास्य में भोंडापन नहीं है और वह निष्प्रयोजन भी नहीं है । उसमें सुधार करने की भावना निहित है । उनका व्यंग्य तिलमिला देने वाला नहीं होता । उनका व्यंग्य सुधार की भावना से लिखा गया है । वह पाठक को आनन्द प्रदान करता है ।

3. कवि का रूप— एक कवि के रूप में आप बड़े प्रसिद्ध थे । आप अवधी में कविता करते थे । "अरे बुढ़ापा तोरे कारन अब तो हम नकुन्याय गयन ।" पंक्ति बड़ी ही लोकप्रिय है । उनकी कविताएँ उन्नाव जनपद में बड़ी लोकप्रिय हैं ।

भाषा तथा शैली

भाषा—मिश्र जी के निबन्धों की भाषा खड़ी बोली है । उसमें तद्भव शब्दों का आधिक्य है । फारसी और अरबी के शब्दों का प्रयोग आपने किया है । अंग्रेजी के भी कुछ शब्दों को आपने प्रयुक्त किया है, जैसे—नेचर, डिग्री, लेक्चर आदि ।

संस्कृत शब्दों का प्रयोग भी मिश्र जी के निबन्धों में हुआ है, जैसे प्रत्यक्षयता, अन्ततोगत्वा, सर्वभावेन, अतएव आदि । कई स्थानों पर आपने ग्रामीण शब्दों का प्रयोग भी किया है, जैसे गोड़, मुँह, चाहो, सेंत-मेंत आदि । आपने मुहावरों और कहावतों का प्रयोग खूब किया है । इनकी भाषा बोलचाल की भाषा है ।

मिश्र जी के निबन्धों के शीर्षक बड़े विचित्र हैं, यथा—'घूरे के लता बिनै कनातन का डौल बाँधे', 'समझदार की मौत है', 'भौं', 'दाँत' तथा 'आँख' आदि । मिश्र जी के निबन्धों की भाषा में तुकदार शब्द

अधिक प्रयुक्त हुए हैं । भाषा में प्रवाह की कमी कहीं नहीं है । अस्वाभाविकता एवं कृत्रिमता आपके निबन्धों में नहीं आने पाई है । यद्यपि मिश्र जी की भाषा परिष्कृत एवं परिमार्जित नहीं है तथापि उसमें शिथिलता और नीरसता कहीं नहीं है । पंडिताऊपन आपके निबन्धों में अधिक है । व्याकरण की कुछ त्रुटियाँ आपकी भाषा में हो गई हैं ।

भाषा का नमूना

'डाकखाने अथवा तारघर के सहारे से बात की बात में चाहे जहाँ की जो बात जान सकते हैं । इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती रहती है ।'

शैली के रूप

1. व्याख्यात्मक शैली– मिश्र जी ने कुछ लेख व्याख्यात्मक शैली में रचे हैं । ऐसे निबन्धों में लेखक ने पाठकों को बार-बार विषय को समझाने का प्रयत्न किया है । विषय की व्याख्या प्रस्तुत की गई है ।

2. व्यंग्यात्मक शैली– मिश्र जी के अधिकांश निबन्धों की शैली व्यंग्यात्मक है । ये निबन्ध पाठकों को अधिक रुचिकर लगते हैं ।

3. विवरणात्मक शैली– मिश्र जी ने अपने कुछ निबन्ध विवरणात्मक शैली में रचे हैं । ऐसे निबन्धों की संख्या अधिक नहीं है ।

4. वर्णनात्मक शैली– मिश्र जी वर्णनात्मक शैली के कुशल निबन्धकार हैं । आपकी वर्णन पद्धति बड़ी रुचिकर है ।

5. विनोदात्मक शैली– मिश्र जी विनोदात्मक शैली के अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखक थे । वे स्वयं विनोदप्रिय व्यक्ति थे । इस कारण उनके निबन्धों की शैली मुख्यतः विनोदात्मक ही है ।

शैली का नमूना

"मजे से पराई जमा गपक बैठना, खुशामदियों से गप मारा करना, जो कोई तिथि-त्यौहार पड़े त गंगा में बदन धो आना, गंगापुत्र को चार पैसे देकर सेंत-मेंत में धरम-मूरत, धरम औतार का खिताब पाना, संसार और परमार्थ दोनों तो बन गए, अब काहे की है-है काहे की खै-खै ।"

भारतेन्दु द्वारा रचित 'भारतदुर्दशा' रूपक

(यह सन् 1875 में छपा दुखान्त रूपक है, जिसे भारतेन्दु नाट्य रासक या लास्य रूपक कहते हैं। प्रतापनारायण मिश्र को यह रूपक अत्यधिक पसंद था। इससे उन्हें बहुत प्रेरणा मिली थी।)

भारतदुर्दशा

(मंगलाचरण)

जय सतजुग-थापन-करन, नासन म्लेच्छ-आचार ।
कठिन धार तरवार कर, कृष्ण कल्कि अवतार ।।

पहला अंक

स्थान—बीथी

(एक योगी गाता है)

लावनी

रोवहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ।।ध्रुव।।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनों ।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।।
सबके पहिले जो रूप रंग रस भीनो ।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनों ।।
अब सबके पीछे सोई परत लखाई ।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।
जहँ भए शाक्य हरिचंदरु नहुष ययाति ।
तहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती ।।
जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती ।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ।।

अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी ।
करि कलह बुलाई जवनसैन पुनि भारी ॥
तिन नासी बुधि बल बिद्या धन बहु बारी ।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी ॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥
अँगरेजराज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन बिदेश चलि जात इहै अति ख्वारी ॥
ताहू पै महँगी काल रोग बिस्तारी ।
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री ॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा हा ! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥

(पटोत्तोलन)

●

दूसरा अंक

स्थान–श्मशान, टूटे-फूटे मंदिर, कौआ, कुत्ता, स्यार घूमते हुए, अस्थि इधर-उधर पड़ी हैं ।

(भारत[1] का प्रवेश)

भारत– हा ! यह वही भूमि है जहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णचंद्र के दूतत्व करने पर भी वीरोत्तम दुर्योधन न कहा था, 'सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव' और आज हम उसी को देखते हैं कि शमशान हो रही है । अरे यहाँ की योग्यता, विद्या, सभ्यता, उद्योग, उदारता, धन, बल, मान, दृढ़चित्तता, सत्य सब कहाँ गए ? अरे पामर जयचन्द्र ! तेरे उत्पन्न हुए बिना मेरा क्या डूबा जाता था ? हाय ! अब मुझे कोई शरण देने वाला नहीं । (रोता है) मात; राजराजेश्वरी बिजयिनी ! मुझे बचाओ । अपनाए की लाज रक्खो । अरे दैव ने सब कुछ मेरा नाश कर दिया पर अभी संतुष्ट नहीं हुआ । हाय ! मैंने जाना था कि अँगरेजों के हाथ में आकर हम अपने दुखी मन को पुस्तकों से बहलावेंगे और सुख मानकर जन्म बितावेंगे पर दैव से वह भी न सहा गया । हाय ! कोई बचाने वाला नहीं ।

---

1. फटे कपड़े पहिने, सिर पर अर्ध किरीट, हाथ में टेकने की छड़ी, शिथिल अंग ।

(गीत)

कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ ।।
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुखगाथ ।
दीन बन्यौ इस सों उत डोलत टकरावत निज माथ ।।
दिन दिन बिपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ ।
सब बिधि दुख सागर मैं डूबत धाइ उबारौ नाथ ।।

(नेपथ्य में गंभीर और कठोर स्वर से)

(अब भी तुझको अपने साथ का भरोसा है ! खड़ा तो रह ! अभी मैंने तेरी आशा की जड़ न खोद डाली तो मेरा नाम नहीं ।)

भारत—(डरता और काँपता हुआ रोकर) अरे यह विकराल वदन कौन मुँह बाए मेरी ओर दौड़ता चला आता है ? हाय-हाय, इससे कैसे बचेंगे ? अरे यह तो मेरा एक ही कौर कर जाएगा ! हाय ! परमेश्वर बैकुंठ में और राजराजेश्वरी सात समुद्र पार, अब मेरी कौन दशा होगी ? हाय, अब मेरे प्राण कौन बचावेगा ? अब कोई उपाय नहीं । अब मरा, अब मरा । (मूर्छा खाकर गिरता है)

(निर्लज्जता[1] आती है)

निर्लज्जता—मेरे आछत तुमको अपने प्राण की फिक्र । छिःछिः ! जीओगे तो भीख माँग खाओगे। प्राण देना तो कायरों का काम है । क्या हुआ जो धनमान सब गया । एक जिंदगी हजार नेआमत है । (देखकर) अरे सचमुच बेहोश हो गया तो उठा ले चलें । नहीं नहीं मुझसे अकेले न उठेगा । (नेपथ्य की ओर) आशा ! आशा ! जल्दी आओ ।

(आशा[2] आती है)

निर्लज्जता—यह देखो भारत मरता है, जल्दी इसे घर उठा ले चलो ।

आशा—मेरे आछत किसी ने भी प्राण दिया है ? ले चलो : अभी जिलाती हूँ ।

(दोनों उठाकर भारत को ले जाती हैं)

●

1. जाँघिया—सिर खुला—ऊँची चोली—दुपट्टा ऐसा गिरता पड़ता कि अंग खुले, सिर खुला, खानगियों का सा वेष ।
3. लड़की के वेष में ।

तीसरा अंक

स्थान—मैदान

(फौज के डेरे दिखाई पड़ते हैं ! भारतदुर्दैव[1] आता है ।)

भारतदु०—कहाँ गया भारत मूर्ख ! जिसको अब भी परमेश्वर और राजराजेश्वरी का भरोसा है ? देखो तो अभी इसकी क्या क्या दुर्दशा होती है ।

(नाचता और गाता हुआ)

अरे !
उपजा ईश्वर कोप से और आया भारत बीच ।
छार खार सब हिंद करूँ मैं, तो उत्तम नहिं नीच ।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी ।
कौड़ी कौड़ी को करूँ मैं सबको मुहताज ।
भूखे प्रान निकालूँ इनका, तो मैं सच्चा राज । मुझे०
काल भी लाऊँ महँगी लाऊँ, और बुलाऊँ रोग ।
पानी उलटा कर बरसाऊँ, छाऊँ जग में सोग । मुझे०
फूट बैर और कलह बुलाऊँ, ल्याऊँ सुस्ती जोर ।
घर-घर में आलस फैलाऊँ, छाऊँ दुख घनघोर । मुझे०
काफर काला नीच पुकारूँ, तोड़ूँ पैर और हाथ ।
दूँ इनको संतोष खुशामद, कायरता भी साथ । मुझे०
मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ, महँगा करके अन्न ।
सबके ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्न ।
मुझे तुम सहज न जानो जी, मुझे इक राक्षस मानो जी ।

(नाचता है)

अब भारत कहाँ जाता है, ले लिया है । एक तस्सा बाकी है, अबकी हाथ में वह भी साफ है । भला हमारे बिना और ऐसा कौन कर सकता है कि अँगरेजी अमलदारी में भी हिंदू न सुधरें ! लिया भी तो अँगरेजों से औगुन ! हा हाहा ! कुछ पढ़े लिखे मिलकर देश सुधारा चाहते हैं ? हहा हहा ! एक चने से भाड़ फोड़ेंगे । ऐसे लोगों को दमन करने को मैं जिले के हाकिमों को न हुक्म दूँगा कि इनको डिसलायल्टी में पकड़ो और ऐसे लोगों को हर तरह से खारिज करके जितना जो बड़ा मेरा मित्र हो उसको उतना बड़ा मेडल और खिताब दो । हैं ! हमारी पालिसी के विरुद्ध उद्योग करते हैं, मूर्ख ! यह क्यों ? मैं अपनी फौज ही भेज के न सब चौपट करता हूँ । (नेपथ्य की ओर देखकर) अरे कोई है ? सत्यानाश फौजदार को तो भेजो ।

---

1. क्रूर, आधा क्रिस्तानी आधा मुसलमानी वेष, हाथ में नंगी तलवार लिए ।

(नेपथ्य में से 'जो आज्ञा' का शब्द सुनाई पड़ता है)

देखो मैं क्या करता हूँ। किधर किधर भागेंगे।

(सत्यानाश फौजदार आते हैं)

(नाचता हुआ)

सत्या०फौ०—

हमारा नाम है सत्यानास। आए हैं राजा के हम पास।
धरके हम लाखों ही भेस। किया चौपट यह सारा देस।
बहु हमने फैलाए धर्म। बड़ाया छुआछूत का कर्म।
होके जयचंद हमने एक बार। खोल ही दिया हिंद का द्वार।
हलाकू चंगेजो तैमूर। हमारे अदना अदना सूर।
दुरानी अहमद नादिरसाह। फौज के मेरे तुच्छ सिपाह।
हैं हममें तीनों कल बल छल। इसी से कुछ नहिं सकती चल।
पिलावैंगे हम खूब शराब। करैंगे सबको आज खराब।

भारतदु०—अहा सत्यानाशजी आए। आओ, देखो अभी फौज को हुक्म दो कि सब लोग मिल के चारों ओर से हिंदुस्तान को घेर ले। जो पहले से घेरे हैं उनके सिवा औरों को भी आज्ञा दो कि बढ़ चले।

सत्या०फौ०—महाराज 'इंद्रजीत सन जो कछु भाखा, सो सब जनु पहिलहिं करि राखा।' जिनको आज्ञा हो चुकी है वे तो अपना काम कर ही चुके हैं और जिनको जो हुक्त हो, कर दिया जाय।

भारतदु०—किसने किसने क्या क्या किया है ?

सत्या०फौ०—महाराज ! धर्म ने सबके पहिले सेवा की।

रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माँहि घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगटि चलाए॥
जाति अनेकन करी नीच अरु ऊँच बनायो।
खान पान संबंध सबन सों बरजि छुड़ायो॥
जन्मपत्र बिधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब॥
करि कुलान के बहुत ब्याह बल बीरज मारयो।
बिधवा ब्याह निषेध कियो बिभिचार प्रचारयो॥
रोकि बिलायतगमन कूपमंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाई प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सो सब बिमुख किए हिंदू घबराई॥

भारतदु०—आहा ! हाहा ! शाबाश ! शाबाश ! हाँ और भी कुछ धर्म्म ने किया ?

सत्या०फौ०—हाँ महाराज ।

अपरस सोल्हा छूत रचि, भोजनप्रीति छुड़ाय ।
किए तीन तेरह सबै, चौका चौका छाय ।।

भारतदु०—और भी कुछ ?

सत्या०फौ०—हाँ ।

रचिकै मत वेदांत को, सबको ब्रह्म बनाय ।
हिंदुन पुरुषोत्तम कियो, तोरि हाथ अरु पाय ।।

महाराज, वेदांत ने बड़ा ही उपकार किय । सब हिंदू ब्रह्म हो गए । किसी को इतिकर्त्तव्यता बाकी ही न रही । ज्ञानी बनकर ईश्वर से विमुख हुए, रूक्ष हुए, अभिमानी हुए और इसी से स्नेहशून्य हो गए । जब स्नेह ही नहीं तब देशोद्धार का प्रयत्न कहाँ ! बस, जय शंकर की ।

भारतदु०—अच्छा, और किसने किसने क्या किया ?

सत्या०फौ०—महाराज, फिर संतोष ने भी बड़ा काम किया । राजा प्रजा सबको अपना चेला बना लिया । अब हिंदुओं को खाने मात्र से काम, देश से कुछ काम नहीं । राज न रहा, पेनसन ही सही । रोजगार न रहा, सूद ही सही । वह भी नहीं, तो घर ही का सही, 'संतोषं परमं सुखं' रोटी ही को सराह सराह के खाते हैं । उद्यम की ओर देखते ही नहीं । निरुद्यमता ने भी संतोष को बड़ी सहायता दी । इन दोनों को बहादुरी का मेडल जरूर मिले । व्यापार को इन्हीं ने मार गिराया ।

भारतदु०—और किसने क्या किया ?

सत्या०फौ०—फिर महाराज जो धन की सेना बची थी उसको जीतने को भी मैंने बड़े बाँके वीर भेजे । अपव्यय, अदालत, फैशन और सिफारिश इन चारों ने सारी दुश्मन की फौज तितर बितर कर दी । अपव्यय ने खूब लूट मचाई । अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किए । फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि अंटाधार कर दिया और शिफारिश ने भी खूब ही छकाया । पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब तक पीछा करके खूब भगाया । तुहफे, घूस और चंदे के ऐसे बम के गोले चलाए कि 'बम बोल गई बाबा की चारों दिसा' घूम निकल पड़ी । मोटा भाई बना बनाकर मूँड़ लिया । एक तो खुद ही यह सब पँडिया के ताऊ, उस पर चुटकी बजी, खुशामद हुई, डर दिखाया गया, बराबरी का झगड़ा उठा, धाँय धाँय गिनी गई[1], वर्णमाला कंठ कराई[2], बस हाथी के खाए कैथ हो गए । धन की सेना ऐसी भागी कि कब्रों में भी न बची, समुद्र के पार ही शरण मिली ।

भारतदु०—और भला कुछ लोग छिपाकर भी दुश्मनों की ओर भेजे थे ?

सत्या०फौ०—हाँ, सुनिए । फूट, डाह, लोभ, भय, उपेक्षा, स्वार्थपरता, पक्षपात, हठ, शोक, अश्रुमार्जन और निर्बलता इन एक दरजन दूती और दूतों को शत्रुओं की फौज में हिला मिलाकर ऐसा पंचामृत बनाया कि सारे शत्रु बिना मारे घंटा पर के गरुड़ हो गए । फिर अंत में भिन्नता गई । इसने ऐसा सबको काई की तरह फाड़ा कि भाषा, धर्म, चाल, व्यवहार, खाना, पीना सब एक एक योजन पर अलग

---

1. सलामी मिली ।
2. पी०आई०ई० आदि उपाधियाँ मिलीं ।

अलग कर दिया । अब आवें बचा ऐक्य ! देखें आर्हीं के क्या करते हैं !

भारतदु०—भला भारत का शस्य नामक फौजदार अभी जीता है कि मर गया ? उसकी पलटन कैसी है ?

सत्या०फौ०—महाराज ! उसका बल तो आपकी अतिवृष्टि और अनावृष्टि नामक फौजों ने बिलकुल तोड़ दिया । लाही, कीड़े, टिड्डी और पाला इत्यादि सिपाहियों ने खूब ही सहायता की । बीच में नील ने भी नील बनकर अच्छा लंकादहन किया ।

भारतदु०—वाह ! वाह ! बड़े आनन्द की बात सुनाई । तो अच्छा तुम जाओ । कुछ परवाह नहीं, अब ले लिया है । बाकी साकी अभी सपराए डालता हूँ । अब भारत कहाँ जाता है । तुम होशियार रहना और रोग, महर्घ, कर, मद्य, आलस और अंधकार को जरा क्रम से मेरे पास भेज दो ।

सत्या०फौ०—जो आज्ञा । (जाता है)

भारतदु०—अब उसको कहीं शरण न मिलेगी । धन, बल और विद्या तीनों गई । अब किसके बल कूदेगा ?

(जवनिका गिरती है)

पटोत्तोलन

●

चौथा अंक

(कमरा अंग्रेजी ढंग से सजा हुआ । मेज-कुरसी लगी हुई । कुरसी पर भारत दुदैव बैठा है)

(रोग का प्रवेश)

रोग—(गाता हुआ)

जगत सब मानत मेरी आन ।
जगत सब मानत मेरी आन ।
मेरी ही टट्टी रचि खेलत नित सिकार भगवान ।
मृत्यु कलंक मिटावत मैं ही मो सम और न आन ।
परम पिता हम हीं वैद्यन के अत्तारन के प्रान ॥

मेरा प्रभाव जगत विदित है । कुपथ्य का मित्र और पथ्य का शत्रु मैं ही हूँ । तैलोक्य में ऐसा कौन है जिस पर मेरा प्रभुत्व नहीं । नजर, श्राप, भूत, प्रेत, टोना, टनमन, देवी, देवता सब मेरे ही नामांतर हैं । मेरी ही बदौलत ओझा, दरसनिए, सयाने पंडित, सिद्ध लोगों को ठगते हैं । (आतंक से) भला मेरे प्रबल प्रताप को ऐसा कौन है जो निवारण करे । हह ! चुंगी की कमेटी सफाई करके मेरा निवारण करना चाहती है, यह नहीं जानती कि जितनी सड़क चौड़ी होगी उतने ही हम भी 'जस जस सुरसा वदन

बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा' । (भारतदुर्दैव को देखकर) महाराज ! क्या आज्ञा है ?

भारतदु०–आज्ञा क्या है, भारत को चारों ओर से घेर लो ।

रोग–महाराज ! भारत तो अब मेरे प्रवेशमात्र से मर जायगा । घेरने का कौन काम है ? धन्वंतरि और काशिराज दिवोदास का अब समय नहीं है । और न सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक ही हैं । वैदगी अब केवल जीविका के हेतु बची है । काल के बल से औषधों के गुणों और लोगों की प्रकृति में भी भेद पड़ गया । बस अब हमें कौन जीतेगा और फिर हम ऐसी सेना भेजेंगे जिनका भारतवासियों ने कभी नाम तो सुना ही न होगा; तब भला वे उसका प्रतिकार क्या करेंगे ! हम भेजेंगे विस्फोटक, हैजा, डेंगू, अपाप्लेक्सी । भला इनको हिंदू लोग क्या रोकेंगे ? ये किधर से चढ़ाई करते हैं और कैसे लड़ते हैं जानेंगे तो हई नहीं, फिर छुट्टी हुई वरंच महाराज, इन्हीं से मारे जायँगे और इन्हीं को देवता करके पूजेंगे, यहाँ तक कि मेरे शत्रु डाक्टर और विद्वान इसी विस्फोटक के नास का उपाय टीका लगाना इत्यादि कहैंगे तो भी ये सब उसको शीतला के डर से न मानेंगे और उपाय आछत अपने हाथ प्यारे बच्चों की जान लेंगे ।

भारतदु०–तो अच्छा तुम जाओ । महर्घ और टिकस भी यहाँ आते होंगे सो उनको साथ लिए जाओ । अतिवृष्टि, अनावृष्टि की सेना भी वहाँ जा चुकी है । अनक्य और अंधकार की सहायता से तुम्हें कोई भी रोक न सकेगा । यह लो पान का बीड़ा लो । (बीड़ा देता है)

(रोग बीड़ा लेकर प्रणाम करके जाता है)

भारतदु०–बस, अब कुछ चिंता नहीं, चारों ओर से तो मेरी सेना ने उसको घेर लिया, अब कहाँ बच सकता है ।

(आलस्य का प्रवेश[1])

आलस्य–हहा ! एक पोस्ती ने कहा : पोस्ती ने पी पोस्त नौ दिन चले अढ़ाई कोस । दूसरे ने जवाब दिया, अरे वह पोस्ती न होगा डाक का हरकारा होगा । पोस्ती ने जब पोस्त पी तो या कूँड़ी के उस पार या इस पार ठीक है । एक बारी में हमारे दो चेले लेटे थे और उसी राह से एक सवार जाता था । पहिले ने पुकारा, "भाई सवार, सवार, यह पक्का आम टपककर मेरी छाती पर पड़ा है, जरा मेरे मुँह में तो डाल ।" सवार ने कहा "अजी तुम बड़े आलसी हो । तुम्हारी छाती पर आन पड़ा है सिर्फ हाथ से उठाकर मुँह में डालने में यह आलस है !" दूसरा बोला "ठीक है साहब, यह बड़ा ही आलसी है । रात भर कुत्ता मेरा मुँह चाटा किया और यह पास ही पड़ा था पर इसने न हाँका ।" सच है किस जिंदगी के वास्ते तकलीफ उठाना; मजे में हालमस्त पड़े रहना । सुख केवल हम में है 'आलसी पड़े कुएँ में वहीं चैन है ।'

---

1. मोटा आदमी जँभाई लेता हुआ धीरे-धीरे आवेगा ।

(गाता है)

गजल

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।
मर जाना पै उठके कहीं जाना नहीं अच्छा ॥
बिस्तर प मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ॥
"रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है।"
छेड़ो न नक्शेपा हैं मिटाना नहीं अच्छा ॥
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक।
"मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा ॥"
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ पैर चलाना नहीं अच्छा ॥
सिर भारी चीज है इसे तकलीफ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा ॥
फाकों से मरिए पर न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है जमाना नहीं अच्छा ॥
सिजदे से गर बिहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा ॥
मिल जाय हिंद खाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ मीरे फर्श रंज उठाना नहीं अच्छा ॥

और क्या। काजी जी दुबले क्यों, कहैं शहर के अंदेशे से। अरे 'कोउ नृप होउ हमें का हानी, चेरि छाँड़ि नहिं होउब रानी।' आनंद से जन्म बिताना। 'अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम। दास मलूका कह गए, सबके दाता राम ॥' 'जो पड़तव्यं सो मरतव्यं, जो न पढ़तव्यं सो भी मरतव्यं, तब फिर दंतकटाकट किं कर्तव्यं ?' भई जात में ब्राह्मण, धर्म में वैरागी, रोजगार में सूद और दिल्लगी में गप सबसे अच्छी। घर बैठे जन्म बिताना, न कहीं जाना न कहीं आना सब खाना, हगना, मूतना, सोना, बात बनाना, तान मारना और मस्त रहना। अमीर के सर पर और क्या सुरखाब का पर होता है, जो कोई काम न करे वही अमीर। 'तवंगरी बदिलस्त न बमाल।'[1] दोई तो मस्त हैं मालमस्त या हालमस्त। (भारतदुदैव को देखकर उसके पास जाकर प्रणाम करके) महाराज ! मैं सुख से सोया था कि आपकी आज्ञा पहुँची ज्यों त्यों कर यहाँ हाजिर हुआ। अब हुक्म ?

भारतदु०—तुम्हारे और साथी सब हिंदुस्तान की ओर भेजे गए हैं, तुम भी वहीं जाओ और अपनी जोगनिंद्रा से सबको अपने वश में करो।

आलस्य—बहुत अच्छा। (आप ही आप) आह रे बप्पा ! अब हिंदुस्तान में जाना पड़ा। तब चलो

---

1. अमीरी हृदय से है, धन से नहीं है।

धीरे धीरे चलें। हुक्म न मानेंगे तो लोग कहेंगे 'सरबस खाइ भोग करि नाना, समरभूमि भा दुरलभ प्राना।' अरे करने को दैव आप ही करैगा, हमारा कौन काम है, पर चलें।

(यही सब बुड़बुड़ाता हुआ जाता है)

(मदिरा[1] आती है।)

मदिरा—भगवान सोम की मैं कन्या हूँ। प्रथम वेदों ने मधु नाम से मुझे आदर दिया। फिर देवताओं की प्रिया होने से मैं सुरा कहलाई और मेरे प्रचार के हेतु श्रौत्रामणि यज्ञ की सृष्टि हुई। स्मृति और पुराणों में भी प्रवृत्ति मेरी नित्य कही गई। तंत्र तो केवल मेरी ही हेतु बने। संसार में चार मत बहुत प्रबल हैं, हिंदू, बौद्ध, मुसलमान और क्रिस्तान। इन चारों में मेरी चार पवित्र प्रेममूर्ति विराजमान हैं। सोमपान, बीराचमन, शराबुन्तहूरा और बापटैजिग वाईन। भला कोई कहे तो इनको अशुद्ध ? या जो पशु हैं उन्होंने अशुद्ध कहा ही तो क्या हमारे चाहने वालों के आगे वे लोग बहुत होंगे तो फी सैकड़े दस होंगे, जगत में तो हम व्याप्त हैं। हमारे चेले लोग सदा यही कहा करते हैं। और फिर सरकार के राज्य के तो हम एकमात्र भूषण हैं।

दूध सुरा दधिहू सुरा, सुरा अन्न धन धाम।
वेद सुरा ईश्वर सुरा, सुरा स्वर्ग को नाम॥
जाति सुरा विद्या सुरा, बिन मद रहै न कोय।
सुधरी आजादी सुरा, जगत सुरामय होय॥
ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अरु, शैयद सेख पठान।
दै बताइ मोहि कौन जो, करत न मदिरा पान॥
पियत भट्ट के ठट्ट अरु, गुजरातिन के वृंद।
गौतम पियत अनंद सों, पियत अग्र के नंद॥
होटल में मदिरा पिएँ, चोट लगे नहिं लाज।
लोट लए ठाढ़े रहत, टोटल दैवे काज॥
कोउ कहत मद नहिं पिएँ, जो कुछ लिख्यो न जाय।
कोउ कहत हम मद्य बल, करत वकीली आय॥
मद्यहि के परभाव सों, रचत अनेकन ग्रंथ।
मद्यहि के परकास सों, लखत धरम को पंथ॥
मद पी विधिजग को करत, पालत हरि करि पान।
मद्यहि पी कै नाश सब, करत शंभु भगवान॥
विष्णु बारुणी, पोर्ट पुरुषोत्तम, मद्य मुरारि।
शांपिन शिव गौड़ी गिरिश, ब्रांडी ब्रह्म बिचारि॥
मेरी तो धन बुद्धि बल, कुल लज्जा पति गेह।
माय बाप सुत धर्म सब, मदिरा ही न सँदेह॥

1. साँवली-सी स्त्री, लाल कपड़ा, सोने का गहना, पैर में घुँघरू।

सोक हरन आनँद करन, उमगावन सब गात ।
हरि मैं तपबिनु लय करनि, केवल मद्य लखात ।।
सरकारहि मंजूर जो मेरा होत उपाय ।
तो सब सों बढ़ि मद्य पै देती कर बैठाय ।।
हमहीं कों या राज की, परम निसानी जान ।
कीर्ति खंभ सी जग गड़ी, जबलौं थिर ससि भान ।।
राजमहल के चिन्ह नहिं, मिलिहैं जग इत कोय ।
तबहू बोतल ट्रक बहु, मिलिहैं कीरति होय ।।

हमारी प्रवृत्ति के हेतु कुछ यत्न करने की आवश्यकता नहीं । मनु पुकारते हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां' और भागवत में कहा है 'लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्ययास्ति जंतोः ।' उस पर भी वर्तमान समय की सभ्यता की तो मैं मुख्यमूलसूत्र हूँ । विषयेंद्रियों के सुखानुभव मेरे कारण द्विगुणित हो जाते हैं । संगीत साहित्य की तो एकमात्र जननी हूँ । फिर ऐसा कौन है जो मुझसे विमुख हो ?

(गाती है)

(राग काफी, धनाश्री का मेल, ताल धमार)

मदवा पीले पागल जोबन बीत्यौ जात ।
बिनु मद जगत सार कछु नाहीं मान हमारी बात ।।
पी प्याला छक छक आनँद से नितहि साँझ और प्रात ।
झूमत चल डगमगी चाल से मारि लाज को लात ।।
हाथी मच्छड़, सूरज जुगुनू जाके पिए लखात ।
ऐसी सिद्धि छोड़ि मन मूरख काहे ठोकर खात ।।

(राजा को देखकर) महाराज ! कहिए क्या हुक्म है ?

भारतदु०—हमने बहुत से अपने वीर हिंदुस्तान में भेजे हैं । परंतु मुझको तुमसे जितनी आशा है उतनी और किसी से नहीं है । जरा तुम भी हिंदुस्तान की तरफ जाओ और हिंदुओं से समझो तो ।

मदिरा—हिंदुओं के तो मैं मुद्दत से मुँहलगी हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अपना जाल फैलाऊँगी और छोटे बड़े सबके गले का हार बन जाऊँगी । (जाती है)

(रंगशाला के दीपों में से अनेक बुझा दिए जायँगे)

(अंधकार का प्रवेश)

(आँधी आने की भाँति शब्द सुनाई पड़ता है)

अंधकार—(गाता हुआ स्खलित नृत्य करता है)

(राग काफी)

जै जै कलियुग राज की, जै महामोह महाराज की ।
अटल छत्र सिर फिरत थाप जग मानत जाके काज की ।।
कलह अविद्या मोह मूढ़ता सबै नास के साज की ।।

हमारा सृष्टि संहार कारक भगवान तमोगुण जी से जन्म है । चोर, उलूक और लंपटों के हम एकमात्र जीवन हैं । पर्वतों की गुहा, शोकितों के नेत्र, मूर्खों के मस्तिष्क और खलों के चित्त में हमारा निवास है । हृदय के और प्रत्यक्ष, चारों नेत्र हमारे प्रताप से बेकाम हो जाते हैं । हमारे दो स्वरूप हैं, एक आध्यात्मिक और एक आधिभौतिक, जो लोक में अज्ञान और अँधेरे के नाम से प्रसिद्ध हैं । सुनते हैं कि भारतवर्ष में भेजने को मुझे मेरे परम पूज्य मित्र दुर्दैव महाराज ने आज बुलाया है । चलें देखें क्या कहते हैं (आगे बढ़कर) महाराज की जय हो, कहिए, क्या अनुमति है ?

भारतदु०—आओ मित्र ! तुम्हारे बिना तो सब सूना था । यद्यपि मैंने अपने बहुत से लोग भारतविजय को भेजे हैं पर तुम्हारे बिना सब निर्बल हैं । मुझको तुम्हारा बड़ा भरोसा है, अब तुमको भी वहाँ जाना होगा ।

अंध०—आपके काम के वास्ते भारत क्या वस्तु है, कहिए मैं विलायत जाऊँ ।

भारतदु०—नहीं, विलायत जाने का अभी समय नहीं, अभी वहाँ त्रेता, द्वापर है ।

अंध०—नहीं, मैंने एक बात कही । भला जब तक वहाँ दुष्टा विद्या का प्राबल्य है, मैं वहाँ जाही के क्या करूँगा ? गैस और मैगनीशिया से मेरी प्रतिष्ठा भंग न हो जाएगी ।

भारतदु०—हाँ, तो तुम हिंदुस्तान में जाओ और जिसमें हमारा हित हो सो करो । बस 'बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊँ, परम चतुर मैं जानत अहऊँ ।'

अंध०—बहुत अच्छा, मैं चला । बस जाते ही देखिए क्या करता हूँ । (नेपथ्य में बैतालिक गान और गीत की समाप्ति में क्रम से पूर्ण अंधकार और पटाक्षेप)

निहचै भारत को अब नास ।
जब महाराज विमुख उनसों तुम निज मति करी प्रकास ।।
अब कहुँ सरन तिन्हैं नहिं मिलिहैं ह्वैहै सब बल चूर ।
बुधि विद्या धन धान सबै अब तिनको मिलिहै धूर ।।
अब नहिं राम धर्म अर्जुन नहिं शाक्यसिंह अरु व्यास ।
करिहै कौन पराक्रम इनमें को दैहे अब आस ।।
सेवाजी रनजीतसिंह हू अब नहिं बाकी जौन ।
करिहैं कछू नाम भारत को अब तो नृप मौन ।।
वही उदैपुर जैपुर रीवाँ पन्ना आदिक राज ।
परबस भए न सोच सकहिं कछु करि निज बल बेकाज ।।
अँगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़ ।
स्वारथपर विभिन्न-मति-भूले हिंदू सबै ह्वै मूढ़ ।।
जग के देस बढ़त बदि बदि के सब बाजी जेहि काल ।
ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल ।।
छोटे चित अति भीरू बुद्धि मन चंचल बिगत उछाह ।
उदर-भरन-रत, ईसबिमुख सब भए प्रजा नरनाह ।।

इनसों कछू आस नहिं ये तो सब बिधि बुधि-बल-हीन ।
बिना एकता-बुद्धि-कला के भए सबहि बिधि दीन ।।
बोझ लादि कै पैर छानि कै निज सुख करहु प्रहार ।
ये रासभ से कछु नहिं कहिहैं मानहु छमा अगार ।।
हित अनहित पशु पक्षी जाना पै ये जानहिं नाहिं ।
भूले रहत आपूने रँग में फँसे मूढ़ता माहिं ।।
जे न सुनहिं हित, भलो करहिं नहिं तिनसों आसा कौन ।
डंका दै दिज सैन साजि अब करहु उतै सब गौन ।।

(जवनिका गिरती है)

●

पाँचवाँ अंक

स्थान—किताबखाना

(सात सभ्यों की एक छोटी सी कमेटी; सभापति चक्करदार टोपी पहने, चश्मा लगाए, छड़ी लिए; छह सभ्यों में एक बंगाली, एक महाराष्ट्र, एक अखबार हाथ में लिए एडिटर, एक कवि और दो देशी महाशय)

सभापति—(खड़े होकर) सभ्यगण ! आज की कमेटी का मुख्य उद्देश्य यह है कि भारतदुदैव की, सुना है कि हम लोगों पर चढ़ाई है । इस हेतु आप लोगों को उचित है कि मिलकर ऐसा उपाय सोचिए कि जिससे कि हम लोग इस भावी आपत्ति से बचें । जहाँ तक हो सके अपने देश की रक्षा करना ही हम लोगों का मुख्य धर्म है । आशा है कि आप सब लोग अपनी अपनी अनुमति प्रकट करेंगे । (बैठ गए, करतलध्वनि)

बंगाली—(खड़े होकर) सभापति साहब जो बात बोला सो बहुत ठीक है । इसका पेशतर कि भारतदुदैव हम लोगों का शिर पर आ पड़े कोई उसके परिहार का उपाय सोचना अत्यंत आवश्यक है किंतु प्रश्न एई है जे हम लोग उसका दमन करने शाकता कि हमारा बोर्ज्जोबल के बाहर का बात है । क्यों नहीं शाकता ? अलबत्त शकैगा, परंतु जो सब लोग एक मत्त होगा । (करतलध्वनि) देखो हमारा बंगाल में इसका अनेक उपाय शाधन होते हैं । ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन लीग इत्यादि अनेक शभा भी होते हैं । कोई थोड़ा बी बात होता तो हम लोग मिल के बड़ा गोल करते । गवर्नमेंट तो केवल गोलमाल से भय खाता । और कोई तरह नहीं शोनता । ओ हुँआ का अखबार वाला सब एक बार ऐसा शोर करता कि गवर्नमेंट को अलबत्त शुनने होता । किंतु हेंयाँ, हम देखते हैं कोई कुछ नहीं बोलता । आज शब आप सभ्य लोग एकत्र हैं, कुछ उपाय इसका अवश्य शोचना चाहिए । (उपवेशन) ।

प०देशी–(धीरे से) यहीं, मगर अब तक कमेटी में हैं तभी तक। बाहर निकले कि फिर कुछ नहीं।

दू०देशी–(धीरे से) क्यों भाई साहब; इस कमेटी में आने से कमिश्नर हमारा नाम तो दरबार से खारिज न कर देंगे ?

एडिटर–(खड़े होकर) हम अपने प्राणपण से भारत दुदैव को हटाने को तैयार हैं। हमने पहिले भी इस विषय में एक बार अपने पत्र में लिखा था परंतु यहाँ तो कोई सुनता ही नहीं। अब जब सिर पर आफत आ गई सो आप लोग उपाय सोचने लगे। भला अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है जो कुछ सोचना हो जल्द सोचिए। (उपवेशन)

कवि–(खड़े होकर) मुहम्मदशाह ने भाँड़ों ने दुश्मन को फौज से बचने का एक बहुत उत्तम उपाय कहा था। उन्होंने बतलाया कि नादिरशाह के मुकाबले में फौज न भेजी जाय। जमना किनारे कनात खड़ी कर दी जायँ, कुछ लोग चूड़ी पहने कनात के पीछे खड़े रहें। जब फौज इस पार उतरने लगे, कनात के बाहर हाथ निकालकर उँगली चमकाकर कहें "मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं"। बस सब दुश्मन हट जायँगे। यही उपाय भारतदुदैव से बचने को क्यों न किया जाय।

बंगाली–(खड़े होकर) अलबत्त, यह भी एक उपाय है किंतु असभ्यगण आकर जो स्त्री लोगों का विचार न करके सहसा कनात को आक्रमण करेगा तो ? (उपवेशन)

एडि०–(खड़े होकर) हमने एक दूसरा उपाय सोचा है, एडूकेशन की एक सेना बनाई जाय। कमेटी की फौज। अखबारों के शस्त्र और स्पीचों के गोले मार जायँ। आप लोग क्या कहते हैं ? (उपवेशन)

दू०देशी–मगर जो हाकिम लोग इससे नाराज हों तो ? (उपवेशन)

बंगाली–हाकिम लोग काहे को नाराज होगा। हम लोग शदा चाहता है कि अँगरेजों का राज्य उत्पन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता। (उपवेशन)

महा०–परंतु इसके पूर्व यह होना अवश्य है कि गुप्त रीति से यह बात जाननी कि हाकिम लोग भारतदुदैव की सैन्य से मिल तो नहीं जायँगे।

दू०देशी–इस बात पर बहस करना ठीक नहीं। नाहक कहीं लेने के देने न पड़ें, अपना काम देखिए (उपवेशन और आप ही आप) हाँ, नहीं तो अभी कल ही झाड़बाजी होय।

महा०–तो सार्वजनिक सभा का स्थापन करना। कपड़ा बीनने की कल मँगानी। हिंदुस्तानी कपड़ा पहिनना। यह भी सब उपाय है।

दू०देशी–(धीरे से) बनात छोड़कर गंजी पहिरेंगे, हें हें।

एडि०–परंतु अब समय थोड़ा है जल्दी उपाय सोचना चाहिए।

कवि–अच्छा तो एक उपाय यह सोचो कि सब हिंदू मात्र अपना फैशन छोड़कर कोट पतलून इत्यादि पहिरें जिसमें सब दुदैव की फौज आवे तो हम लोगों को योरोपियन जानकर छोड़ दें।

प०देशी–पर रंग गोरा कहाँ से लावेंगे ?

बंगाली–हमारा देश में भारत उद्धार नामक एक नाटक बना है। उसमें अँगरेजों को निकाल देने का जो उपाय लिखा, सोई हम लोग दुदैव का वास्ते काहे न अवलंबन करें। ओ लिखता पाँच जन बंगाली मिल के अँगरेजों को निकाल देगा। उसमें एक तो पिशान लेकर स्वेज का नहर पाट देगा। दूसरा

बाँस काट के पिवरी नामक जलयंत्र विशेष बनावेगा । तीसरा उस जलयंत्र से अँगरेजों की आँख से धूर और पानी डालेगा ।

महा०—नहीं नहीं, इस व्यर्थ की बात से क्या होना है । ऐसा उपाय करना जिससे फल सिद्धि हो ।

प०देशी—(आप ही आप) हाय ! यह कोई नहीं कहता कि सब लोग मिलकर एक चित्त हो विद्या की उन्नति करो, कला सीखो जिससे वास्तविक कुछ उन्नति हो । क्रमशः सब कुछ हो जायगा ।

एडि०—आप लोग नाहक इतना सोच करते है, हम ऐसे ऐसे आर्टिकिल लिखेंगे कि उसके देखते ही दुदैव भागेगा ।

कवि—और हम ऐसी ही ऐसी कविता करेंगे ।

प०देशी—पर उनके पढ़ने का और समझने का अभी संस्कार किसको है ?

(नेपथ्य में से)

भागना मत, अभी मैं आती हूँ

(सब डरके चौकन्ने से होकर इधर उधर देखते हैं)

दू०देशी—(बहुत डरकर) बाबा रे, जब हम कमेटी में चले थे तब पहिले ही छींक हुई थी । अब क्या करें । (टेबुल के नीचे छिपने का उद्योग करता है)

(डिसलायलटी[1] का प्रवेश)

सभापति—(आगे से ले आकर बड़े शिष्टाचार से) आप क्यों यहाँ तशरीफ लाई हैं ? कुछ हम लोग सरकार के विरुद्ध किसी प्रकार की सम्मति करने को नहीं एकत्र हुए हैं । हम लोग अपने देश की भलाई करने को एकत्र हुए हैं ।

डिसलायलटी—नहीं, नहीं, तुम सब सरकार के विरुद्ध एकत्र हुए हो, हम तुमको पकड़ेंगे ।

बंगाली—(आगे बढ़कर क्रोध से) काहे को पकड़ेगा, कानून कोई वस्तु नहीं है । सरकार के विरुद्ध कौन बात हम लोग बोला ? व्यर्थ का विभीषिका !

डिस०—हम क्या करें, गवर्नमेंट की पालिसी यही है । कवि वचन सुधा नामक पत्र में गवर्नमेंट के विरुद्ध कौन बात थी ? फिर क्यों उसे पकड़ने को हम भेजे गए ? हम लाचार हैं ।

दू० देशी—(टेबुल के नीचे से रोकर) हम नहीं, हम नहीं, तमाशा देखने आये थे ?

महा०—हाय हाय ! यहाँ के लोग बड़े भीरू और कापुरुष हैं । इसमें भय की कौन बात है ! कानूनी है ।

सभा०—तो पकड़ने का आपको किस कानून से अधिकार है ?

डिस०—इँगलिश पालिसी नामक ऐक्ट के हाकिमेच्छा नामक दफा से ।

महा०—परंतु तुम ?

दू०देशी—(रोकर) हाय हाय ! भटवा तुम कहता है अब मरे ।

महा०—पकड़ नहीं सकतीं, हमको भी दो हाथ दो पैर हैं । चलो हम लोग तुम्हारे संग चलते हैं,

---

1. पुलिस की वर्दी पहिने ।

सवाल जवाब करेंगे ।

बंगाली—हाँ चलो, ओ का बात—पकड़ने नहीं शेकता ।

सभा०—(स्वगत) चेयरमैन होने से पहिले हमी को उत्तर देना पड़ेगा, इसी से किसी बात में हम अगुआ नहीं होते ।

डिस०—अच्छा चलो । (सब चलने की चेष्टा करते हैं)

(जवनिका गिरती है)

●

छठा अंक

स्थान—गंभीर वन का मध्यभाग

(भारत एक वृक्ष के नीचे अचेत पड़ा है)

(भारतभाग्य का प्रवेश)

भारतभाग्य—(गाता हुआ-राग चैती गौरी)

जागो जागो रे भाई ।
सोअत निसि बैस गँवाई जागो जागो रे भाई ।।
निसि की कौन कहै दिन बीत्यो काल राति चलि आई ।
देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस जाई ।।
निज उद्धार पंथ नहिं सूझत सी धुनत पछिताई ।
अबहूँ चेति, पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई ।।
फिर पछिताए कछु नहिं ह्वैहै रहि जैहौ मुँह बाई ।।
जागो जागो रे भाई ।।

(भारत को जगाता है और भारत जब नहीं जागता तब अनेक यत्न से फिर जगाता है, अंत में हारकर उदास होकर)

हाय ! भारत को आज क्या हो गया है ? क्या निस्संदेह परमेश्वर इससे ऐसा ही रूठा है ? हाय क्या अब भारत के फिर से वे दिन न आवेंगे ? हाय यह वही भारत है जो किसी समय सारी पृथ्वी का शिरोमणि गिना जाता था ?

भारत के भुजबल जग रक्षित ।
भारतविद्या लहि जग सिच्छित ।।
भारततेज जगत बिस्तारा ।
भारतभय कंपत संसारा ।।

जाके तनिकहिं भौंह हिलाए ।
थर थर कंपत नृप डरपाए ।।
जाके जय की उज्ज्वल गाथा ।
गावत सब महि मंगल साथा ।।
भारत किरिन जगत उँजियारा ।
भारतजीव जिअत संसारा ।।
भारतवेद कथा इतिहासा ।
भारत वेदप्रथा परकासा ।।
फिनिक मिसिर सीरीय युनाना ।
भे पंडित नहि भारत दाना ।।
रह्यौ रुधिर जब आरज सीसा ।
ज्वलित अनल समान अवनीसा ।।
साहस बल इन सम कोउ नाहीं ।
तबै रह्यौ महिमंडल माहीं ।।
कहा करी तकसीर तिहारी ।
रे बिधि रुष्ट याहि की बारी ।।
सबै सुखी जग के नर नारी ।
रे बिधना भारत हि दुखारी ।।
हाय रोम तू अति बड़भागी ।
बर्बर तोहि नास्यो जय लागी ।।
तोडे की रतिथंभ अनेकन ।
ढाहे गढ़ बहु करि प्रण टेकन ।।
मंदिर महलनि तोरि गिराए ।
सबै चिन्ह तुव धूरि मिलाए ।।
कछु न बची तुव भूमि निसानी ।
सो बरु मेरे मन अति मानी ।।
भारत भाग न जात निहारे ।
थाप्यो पग ता सीस उधारे ।।
तोरयो दुर्गन महल ढहायो ।
तिनहीं में निज गेह बनायो ।।
ते कलंक सब भारत केरे ।
ठाढ़े अजहुँ लखो घनेरे ।।
काशी प्राग अयोध्या नगरी ।
दीन रूप सम ठाढ़ी सगरी ।।

चंडालहु जेहि निरखि घिनाई ।
रही सबै भुव मुँह मसि लाई ।।
हाय पंचनद हा पानीपत ।
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत ।।
हाय चितौर निलज तू भारी ।
अजहुँ खरौ भारतहि मँझारी ।।
जा दिन तुव अधिकार नसायो ।
जो दिन क्यों नहिं धरनि समायो ।।
रह्यो कलंक न भारत नामा ।
क्यों रे तू बारानसि धामा ।।
सब तजि कै भजि कै दुखभारी ।
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो ।।
अरे अग्रवन तीरथराजा ।
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा ।।
पापिनि सरजू नाम धराई ।
अजहूँ बहत अवधतट जाई ।।
तुम में जल नहिं जमुना गंगा ।
बढ़हु बेग करि तरल तरंगा ।।
धोवहु यह कलंक की रासी ।
बोरहु किन झट मथुरा कासी ।।
कुस कन्नौज अंग अरु बंगहि ।
बोरहु किन निज कठिन तरंगहि ।।
बोरहु भारत भूमि सबेरे ।
मिटै करक जिय की तब मेरे ।।
अहो भयानक भ्राता सागर ।
तुम तरंगनिधि अतिबल आगर ।।
बौरे बहु गिरि बन अस्थाना ।
पै बिसरे भारत हित जाना ।।
बढ़हु न बेगि धाई क्यों भाई ।
देहु भारत भुव तुरत डुबाई ।।
घेरि छिपावहु विंध्य हिमालय ।
करहु सफल भीतर तुम लय ।।
धोवहु भारत अपजस पंका ।
मेटहु भारतभूमि कलंका ।।

हाय ! यहीं के लोग किसी काल में जगन्मान्य थे ।

जेहि छिन बलभारे हे सबै तेग धारे ।
तब सब जग धाई फेरते हे दुहाई ।
जग सिर पग धारे धावते रोस भारे ।
बिपुल अवनि जीती पालते राजनीती ।
जग इन बल काँपे देखिकै चंड दापै ।
सोह यह हिय मेरे ह्वै रहे आज चेरे ।।

ये कृष्ण बरन जब मधुर तान ।
करते अमृतोपम वेद गान ।।
तब मोहन सब नर नारि वृंद ।
सुनि मधुर बरन सज्जित सुछंद ।।
जग के सबही जन धारि स्वाद ।
सुनते इनहीं को बीन नाद ।।
इनके गुन होतो सबहि चैन ।
इनहीं कुल नारद तानसैन ।।
इनहीं के क्रोध किए प्रकास ।
सब काँपत भूमंडल अकास ।।
इन्हीं के हुंकति शब्द घोर ।
गिरि काँपत हे सुनि चारु ओर ।।
जब लेत रहे कर में कृपान ।
इनहीं कहँ हो जग तृन समान ।।
सुनि कै रनबाजन खेत माहिं ।
इनहीं कहँ हो जिय सक नाहिं ।।

याही भुव महँ होत है हीरक आम कपास ।
इतही हिमगिरि गंगाजल काव्य गीत परकास ।।
जाबाली जैमिनि गरग पातंजलि सुकदेव ।
रहे भारतहि अंक में कबहि सबै भुवदेव ।।
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिनके भारतगान सों भारतबदन प्रकास ।।
याही भारत में रहे कपिल सूत दुरवास ।
याही भारत में भए शाक्य सिंह संन्यास ।।
याही भारत में भए मनु भृगु आदिक होय ।
तब तिनसी जग में रह्यो घ़ना करत नहिं कोय ।।

जासु काव्य सों जगत मधि अब ल ऊँचो सीस ।
जासु राज बल धर्म की तृषा करहिं अवनीस ॥
साई व्यास अरु राम के बंस सबै संतान ।
ये मेरे भारत भरे सोइ गुन रूप समान ॥
सो बंस रुधिर वही सोई मन बिस्वास ।
वही वासना चित वही आसय यही विलास ॥
कोटि कोटि ऋषि पुन्य तन कोटि कोटि अति सूर ।
कोटि कोटि जन मधुर कवि मिले यहाँ की धूर ॥
सोइ भारत की आज यह भई दुरदसा हाय ।
कहा करे कित जायँ नहिं सूक्षत कछू उपाय ॥

(भारत को फिर उठाने की अनेक चेष्टा करके उपाय निष्फल होने पर रोकर)

हा ! भारतवर्ष को ऐसी मोहनिद्रा ने घेरा है कि अब इसके उठने की आशा नहीं । सच है, जो जान बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टाँका उधार लगवाता है । कल जो हाथी पर सवार फिरते थे आज नंगे पाँव बन बन की धूल उड़ाते फिरते हैं । कल जिनके घर लड़के लड़कियों के कोलाहल से कान नहीं दिया जाता था आज उसका नाम लेवा और पानी देवा कोई नहीं बचा और कल जो घर अन्न धन पूत लक्ष्मी हर तरह से भरे पूरे थे आज उन घरों में तूने दिया बोलने वाला भी नहीं छोड़ा ।

हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट, प्रभृति कवियों के नाममात्र से अब भी सारे संसार में ऊँचा है, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारतवर्ष के राजा चन्द्रगुप्त और अशोक का शासन रूम रूस तक माना जाता था, उस भारत की यह दुर्दशा ! जिस भारत में राम, युधिष्ठर, नल, हरिश्चंद्र, रतिदेव, शिवि इत्यादि पवित्र चरित्र के लोग हो गए हैं उसकी यह दशा ! हाय, भारत भैया, उठो ! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है । अब सोने का समय नहीं है । अँगरेज का राज्य पाकर भी न जगे तो कब जागोगे । मूर्खों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना । विद्या की चरचा फैल चली, सबको सब कुछ कहने सुनने का अधिकार मिला, देश विदेश से नई विद्या और कारीगरी आई । तुमको उस पर भी वही सीधी बातें, भाँग के गोले, ग्रामगीत, वही बाल्यविवाह, भूत प्रेत की पूजा, जन्मपत्री की विधि ! वही थोड़े में संतोष, गप हाँकने में प्रीति और सत्यानाशी चालें । हाय अब भी भारत की यह दुर्दशा ! अरे अब क्या चिता पर सम्हलेगा ।

भारत भाई ! उठो, देखो अब दुःख नहीं सहा जाता, अरे कब तक बेसुध रहोगे? उठो, देखो, तुम्हारी संतानों का नाश हो गया । छिन्न-भिन्न होकर सब नरक की यातना भोगते हैं, उस पर भी नहीं चेतते । हाय ! मुझसे तो अब यह दशा नहीं देखी जाती । प्यारे जागो । (जगाकर और नाड़ी देखकर) हाय इसे तो बड़ा ही ज्वर चढ़ा है ! किसी तरह होश में नहीं आता । हा भारत ! तेरी क्या दशा हो गई !

हे करुणासागर भगवान इधर भी दृष्टि कर । हे भगवती राज-राजेश्वरी, इसका हाथ पकड़ो ।

(रोकर) अरे कोई नहीं जो इस समय अवलंब दे । हा ! अब मैं जी के क्या करूँगा ! जब भारत ऐसा मेरा मित्र इस दुर्दशा में पड़ा है और उसका उद्धार नहीं कर सकता, तो मेरे जीने पर धिक्कार है ! जिस भारत का मेरे साथ अब तक इतना संबंध था उसकी ऐसी दशा देखकर भी मैं जीता रहूँ तो बड़ा कृतघ्न हूँ ! (रोता है) हा विधाता, तुझे यही करना था ! (आतंक से) छिः छिः इतना क्लैव्य क्यों ? इस समय यह अधीरजपना ! बस, अब धैर्य ! (कमर से कटार निकालकर) भाई भारत ! मैं तुम्हारे ऋण से छूटता हूँ ! मुझसे वीरों का कर्म नहीं हो सकता । इसी से कातर की भाँति प्राण देकर उऋण होता हूँ । (ऊपर हाथ उठाकर) हे सर्व्वांतर्यामी ! हे परमेश्वर ! जन्म-जन्म मुझे भारत सा भाई मिलै । जन्म जन्म गंगा जमुना के किनारे मेरा निवास हो ।

(भारत का मुँह चूमकर और गले लगाकर)

भैया, मिल लो, अब मैं बिदा होता हूँ । भैया, हाथ क्यों नहीं उठाते ? मैं ऐसा बुरा हो गया कि जन्म भर के वास्ते मैं बिदा होता हूँ तब भी ललककर मुझसे नहीं मिलते । मैं ऐसा ही अभागा हूँ तो ऐसे अभागे जीवन ही से क्या; बस यह लो ।

(कटार का छाती में आघात और साथ ही जवनिका पतन)

□□

प्रतापनारायण मिश्र रचनावली : 4

जिस जमाने में प्रतापनारायण स्कूल में थे, बाबू हरिश्चन्द्र का 'कविवचन सुधा' पत्र खूब उन्नत अवस्था में था। उसमें बहुत ही मनोरंजक गद्य-पद्यमय लेख निकलते थे। उसे और बाबू हरिश्चन्द्र की अन्यान्य रचनाओं को भी पढ़कर प्रतापनारायण की प्रवृत्ति कविता की ओर हुई। उस समय कानपुर में लावनीबाजों का बड़ा जोर-शोर था। बाबू सीताराम कहते हैं कि लावनी गाने वालों की कई जमातें थीं। लावनी का प्रसिद्ध कवि बनारसी भी उस समय अक्सर कानपुर में रहा करता था। वे सब अक्सर सर्वसाधारण में लावनी गाया करते थे। उनके दो दल इकट्ठे हो जाते थे और लावनी कहने में एक-दूसरे को परास्त करने की चेष्टा करते थे। उनमें से कोई-कोई आदमी बहुत अच्छी लावनी कहते थे और मौके-मौके पर नयी लावनी बना लेते थे। प्रतापनारायण इन लोगों की जमातों में कभी-कभी जाते थे। इसी समय कानपुर के प्रसिद्ध कवि पंडित ललिताप्रसाद द्विवेदी के धनुषयज्ञ की धूम थी। आप रामलीला—विशेष करके धनुषयज्ञ कराने में बहुत निपुण थे। समयानुकूल अच्छी-अच्छी कविता की रचना करके और उसे लीलागत पात्रों के मुँह से सुनाकर, सुनने वालों के मन को आप मोहित कर लेते थे। प्रतापनारायण भी इस लीला में शामिल होते थे और 'ललितजी' की कविता का पाठ करते थे।

—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

महत्त्वपूर्ण और चर्चित पुस्तकें

दस प्रतिनिधि कहानियाँ सीरीज़ की 22 पुस्तकें *(22 शीर्षस्थ कहानीकारों की चुनिंदा कहानियाँ)*

मेरे साक्षात्कार सीरीज़ की 11 पुस्तकें *(11 शीर्षस्थ साहित्यकारों के साक्षात्कार)*

महावीरप्रसाद द्विवेदी रचनावली

(पहले सेट में 7 खंड, दूसरे सेट में 8 खंड, कुल 15 खंड) — *सं० : भारत यायावर*

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : संपूर्ण गद्य रचनाएँ (चार खंड) — *सं० : विभा व शुभा सक्सेना*

महायात्रा गाथा (अँधेरा रास्ता के दो खंड, रैन और चंदा के दो खंड)

(ऐतिहासिक औपन्यासिक कथा-सृष्टि) — *रांगेय राघव*

समग्र कविताएँ : माखनलाल चतुर्वेदी — *सं० : श्रीकान्त जोशी*

मंटो की कहानियाँ (बृहत् संस्करण) — *सं० : डॉ० नरेन्द्र मोहन*

अपनी धरती अपने लोग (तीन खंड) (आत्मकथा) — *डॉ० रामविलास शर्मा*

रसीदी टिकट (आत्मकथा) — *अमृता प्रीतम*

ख़ानाबदोश (आत्मकथा) — *अजीत कौर*

पार्थ से कहो चढ़ाएं बाण (पाँच खंडों में संपूर्ण महाभारत कथा) — *पन्नालाल पटेल*

तोड़ो, कारा तोड़ो (दो खंडों में स्वामी विवेकानंद की औपन्यासिक जीवनी) — *नरेन्द्र कोहली*

मेरा संघर्ष (हिटलर की आत्मकथा) — *सं० : रामचन्द्र वर्मा शास्त्री*

दिल्ली (उपन्यास) — *खुशवंत सिंह*

इदन्नमम (उपन्यास) — *मैत्रेयी पुष्पा*

संसार की श्रेष्ठ कहानियाँ — *सं० : ज्ञानचन्द जैन*

मेरी इक्यावन कविताएँ, कुछ लेख कुछ भाषण (दो पुस्तकें) — *अटल बिहारी वाजपेयी*

केरल का क्रांतिकारी/*विष्णु प्रभाकर*; रंग दे बसंती चोला/*भीष्म साहनी* (दोनों नाटक)

यात्रा के पन्ने, एशिया के दुर्गम भूखंडों में (दो पुस्तकें) — *राहुल सांकृत्यायन*

नावक के तीर (व्यंग्य) — *शरद जोशी*

चुने हुए निबंध — *हज़ारीप्रसाद द्विवेदी*

हिन्दी भाषा और भारतीय संस्कृति — *डॉ० शंकर दयाल शर्मा*

सचित्र खेल नियम — *अजय भल्ला*

नारी गुणों की गाथाएँ — *ब्रजभूषण*

ग्रेडिड नैतिक अभिनय गान सीरीज़ (11 बाल पुस्तकें) — *धर्मपाल शास्त्री*

आओ बच्चो खेलें सीरीज़ (दस पुस्तकें) — *सुधीर सेन*

व्यक्तित्व-विकास : संघर्ष और सफलता — *क्रांतिकारी लाला हरदयाल*

प्रेमी-प्रेमिका संवाद (उपन्यास) — *शरद देवड़ा*

भारतीय प्रकाशन संस्थान